HSC(N)-121

सामुदायिक पोषण

Community Nutrition

स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

HSC(N)-121

सामुदायिक पोषण

Community Nutrition

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाई पास रोड, ट्रांसपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139

फोन नं. 05946- 261122, 261123

टोल फ्री नं. 18001804025

फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in

http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड

प्रोफेसर पी0 डी0 पंत निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर लता पाण्डे विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर दीक्षा कपूर प्राध्यापक, पोषण विज्ञान विभाग सतत् शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	प्रोफेसर मनीषा गहलौत प्राध्यापक, वस्त्र एवं परिधान विभाग गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड

डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 ज्योति जोशी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 पूजा भट्ट सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संयोजक	**पाठ्यक्रम संपादन**
डॉ0 दीपिका वर्मा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी सहायक प्राध्यापक (ए0सी0) गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**
बी0ए0 गृह विज्ञान HSC-301 से लिया गया।	1, 2, 3, 4, 5,6, 7, 9, 11	बी0 ए0 गृह विज्ञान HSC-301 तथा एम० ए० गृह विज्ञान MAHS-06 का संशोधन एवं रूपांतरण	8, 10, 12

ISBN-

समस्त लेखों/पाठों से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद के लिए जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कॉपीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष: 2024
संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139 (नैनीताल)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सामुदायिक पोषण
Community Nutrition
HSC(N)-121

खण्ड	इकाई	पृष्ठ संख्या
1 पोषण स्थिति का आकलन	इकाई 1: सामुदायिक पोषण का परिचय	2-31
	इकाई 2: प्रत्यक्ष पोषण स्तर	32-62
	इकाई 3: अप्रत्यक्ष पोषण स्तर	63-99
2 सामुदायिक पोषण कार्यक्रम	इकाई 4: राष्ट्रीय सामुदायिक पोषण कार्यक्रम	101-125
	इकाई 5: सामुदायिक पोषण के क्षेत्र में कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां और उनकी भूमिका	126-150
	इकाई 6: भारत में पोषण सम्बन्धी समस्याएं	151-197
	इकाई 7: खाद्य उपभोग स्वरूप एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली	198-224
	इकाई 8: खाद्य विकल्पों को प्रभावित करने वाले कारक	225-249
3 पोषण तथा देखभाल	इकाई 9: पोषण ज्ञान का आकलन	251-280
	इकाई 10: पोषण एवं मातृ देखभाल	281-303
	इकाई 11: बाल्यावस्था और किशोरावस्था के लिए पोषण	304-320
	इकाई 12: प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में पोषण	321-351

खण्ड 1: पोषण स्थिति का मूल्यांकन

इकाई 1: सामुदायिक पोषण का परिचय

1.1 प्रस्तावना
1.2 उददेश्य
1.3 सामुदायिक पोषण का अध्ययन क्षेत्र
1.4 जन स्वास्थ्य पोषण
1.5 पोषाहार कार्यक्रमों के लक्ष्य
1.6 आहारीय दिशा निर्देश
    1.6.1 पोषक तत्वों संबंधी निर्देश
1.7 सामुदायिक पोषण की तत्कालिक स्थिति एवं मुद्दे
    1.7.1 भारत में पोषण की स्थिति
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

सामुदायिक पोषण एवं उसके अध्ययन क्षेत्र के बारे में जानने से पूर्व, समुदाय व पोषण के बारे में जानना जरूरी है। एक निश्चित भू भाग में निवास करने वाले सामाजिक/ आर्थिक/ सांस्कृतिक अथवा धार्मिक समूह जो सभी सदस्यों के सहयोग से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं, समुदाय कहलाते हैं। वास्तव में किसी स्थान विशेष पर रहने वाले लोगों के समूह को समुदाय कहते हैं। समुदाय के अन्तर्गत छोटा समूह या बड़ा समूह दोनों सम्मलित हो सकते हैं। छोटे-बड़े परिवार मिलकर समुदाय बनाते हैं। समुदायों से समाज बनता है। समाज हमारे सर्वांगीण विकास का महत्वपूर्ण घटक है। समाज के विकास हेतु उत्तम स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण माना गया है। यदि समुदाय के सभी व्यक्ति स्वस्थ रहते हैं तो समाज के सभी सदस्यों का सर्वांगीण विकास होता है। स्वस्थ रहने के लिए उचित भोजन व पोषण की आवश्यकता होती है। सामुदायिक स्वास्थ्य के अन्तरिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रयास किये जाते हैं जिनके अन्तर्गत भोजन प्राप्त करने की सुविधा, भोजन उपलब्धता, खाद्य सामग्री वितरण, पोषाहार कार्यक्रमों का संचालन आदि सम्मलित हैं।

प्रस्तुत इकाई में हम सामुदायिक पोषण, समुदाय हेतु निर्मित पोषाहार कार्यक्रम, उनके लक्ष्य तथा सामुदायिक पोषण की तात्कालिक स्थिति के बारे में अध्ययन करेंगे।

1.2 उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- समुदाय एवं सामुदायिक पोषण जैसी शब्दावली से परिचित हो पाएंगे;
- जान पाएंगे कि सामुदायिक पोषण एवं जन स्वास्थ्य पोषण क्या है तथा इनके अध्ययन क्षेत्र की क्या व्यापकता है;
- सामुदायिक पोषण के लिए आहार निर्देश, पोषाहार कार्यक्रम व उनके उद्देश्यों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे; तथा
- भारत में पोषण की तात्कालिक स्थिति व पोषण समस्याओं से संबंधित मुद्दों के विषय में जान पायेंगे।

आइए सामुदायिक पोषण के विषय में जानें तथा सर्वप्रथम इसके अध्ययन क्षेत्र की चर्चा करें।

1.3 सामुदायिक पोषण का अध्ययन क्षेत्र

सामुदायिक पोषण एक आधुनिक तथा व्यापक अध्ययन क्षेत्र है जिसमें जनस्वास्थ्य पोषण एवं पोषण शिक्षा विशेष रूप से सम्मलित होते हैं। इसके अन्तर्गत एक स्थान, भाषा, संस्कृति व स्वास्थ्य के मुद्दों से जुड़े व्यक्ति, परिवार या समूहों के द्वारा खाद्य एवं पोषण से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाता है। यह कहा जा सकता है कि किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले समुदाय के लिए सुरक्षित, पर्याप्त व स्वस्थ आहार प्रदान करने के लिए अपनायी गयी व्यापक गतिविधियों को सामुदायिक पोषण कहते हैं। इन गतिविधियों में पोषण, शिक्षा, पोषण व स्वास्थ्य संवर्धन, भोजन व पोषाहार कार्यक्रम, रोग रोकथाम कार्यक्रम, स्थानीय नीति विश्लेषण व विकास आदि तत्वों को सम्मिलित किया जाता है।

आदर्श रूप से सामुदायिक पोषण में निम्न चार अंतर्संबंधित चरण सम्मिलित हैं:

1. समस्याओं की पहचान करने के लिए आकलन।
2. समुदाय की पोषण जरुरतों को पूरा करने की योजना बनाना।
3. समस्याओं को कम करने के लिए प्रणाली विकसित करना।
4. मूल्यांकन करना कि समस्या कम हुई है या हल कर दी गई है। पुनः बची हुई समस्याओं को पहचानना तथा उनके लिए योजना बनाना, प्रणाली विकसित करना तथा मूल्यांकन करना।

यह एक निरन्तर चलने वाला चक्र है क्योंकि पोषण की स्थिति विभिन्न कारकों जैसे आर्थिक स्थिति, कृषि स्थिति, शिक्षा की स्थिति व शारीरिक श्रम की स्थिति से प्रभावित होती है। समुदाय का पोषण, समुदाय की जानकारी, पोषण कारकों की जानकारी, यह सभी कारक पोषण व स्वास्थ्य से संबंध रखते हैं। सामुदायिक पोषण, भोजन एवं पोषण की समस्याओं की पहचान, रोग कारकों की पहचान, रोगों का निदान व उनकी रोकथाम आदि का अध्ययन है। यह समुदायों में व्यक्तियों की पोषण समस्याओं को पहचानने और उन्हें हल करने के लिए पोषण विज्ञान की जानकारी का प्रयोगात्मक अध्ययन है। सामुदायिक पोषण के माध्यम से समुदाय में उत्तम स्वास्थ्य की कल्पना की जा सकती है। यह मात्र अध्ययन का विषय नहीं अपितु यह एक प्रयोगात्मक पद्धति है जिसका उपयोग समाज के कल्याण हेतु किया जा सकता है।

सामुदायिक पोषण के अध्ययन से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

- जनसंख्या के विभिन्न समूहों में व्याप्त स्वास्थ्य व पोषण समस्याओं का ज्ञान मिलता है।
- स्वास्थ्य समस्याओं के कारण, नियन्त्रण आदि के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।
- सामुदायिक पोषण के अध्ययन से व्यक्ति प्राप्त जानकारी को समुदाय में संप्रेषित करने के योग्य बन जाता है।
- समूहों में पोषण स्तर मापने के विभिन्न तरीकों का प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त होता है तथा पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारणों के बारे में जानकारी भी प्राप्त होती है।
- भारतीय आबादी के लिए आहार निर्देशों व पोषण आवश्यकताओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।
- सामुदायिक पोषण के अध्ययन से स्वास्थ्य व पोषण के विभिन्न सूचकों के बारे में तो जानकारी प्राप्त होती ही है, साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि इन सूचकों का पोषण स्तर व जीवन स्तर पर क्या प्रभाव है।
- इसके अध्ययन से सरकार द्वारा जनलाभ के लिए चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों की उचित जानकारी प्राप्त होती है।
- विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों जैसे डब्लू0एच0ओ0, यूनीसेफ का सामुदायिक पोषण में योगदान, उनका संगठन/संरचना/कार्यप्रणाली आदि सभी के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।
- इस इकाई का अध्ययन मात्र पोषण से सम्बन्धित नहीं है अपितु यह भोजन उपलब्धता तथा अभिगम्यता के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है। इसके अन्तर्गत खाद्य सुरक्षा (Food Safety), सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System), भारतीय खाद्य सुरक्षा बिल (Indian Food Security Bill), भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) आदि की भूमिका पर भी जोर दिया जाता है।

- सामुदायिक पोषण का मुख्य भाग पोषण शिक्षा है। इसके अन्तर्गत समुदायों में पोषण ज्ञान को समुदाय के व्यक्तियों में संप्रेषित करना सिखाया जाता है।
- पोषण शिक्षा के अन्तर्गत महिलाओं, बच्चों, वृद्धों (संवेदनशील वर्ग) की देखभाल तथा उनके पोषण स्तर को बनाए रखने की शिक्षा एवं तकनीक दोनों पर बल दिया जाता है।
- यह पाठ्यक्रम सरकारी और गैर सरकारी क्षेत्रों में पोषण/स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने के इच्छुक लोगों को लाभान्वित करता है।
- सामुदायिक पोषण के अध्ययन द्वारा छात्रों को पोषण व स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान का उपयोग करने का कौशल प्राप्त होता है।

जन स्वास्थ्य पोषण के बारे में जानने से पूर्व आइए निम्न अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास कर अपने ज्ञान का पुनरावलोकन करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. समुदाय किसे कहते हैं?

....

....

2. संवेदनशील वर्ग (Vulnerable group) क्या होता है?

....

....

3. सही या गलत बताइए।
   a. समुदाय का स्वास्थ्य एवं पोषण से घनिष्ठ संबंध है।
   b. सामुदायिक पोषण का अध्ययन पोषण विज्ञान के ज्ञान का उपयोग करता है।
   c. पोषण शिक्षा, सामुदायिक पोषण के अन्तर्गत सम्मिलित नहीं है।

1.4 जन स्वास्थ्य पोषण

जन स्वास्थ्य पोषण, पोषण के माध्यम से अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और आबादी में पोषण संबंधी बीमारियों की प्राथमिक रोकथाम पर केन्द्रित है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार स्वास्थ्य को बढ़ावा देने, बीमारियों को रोकने तथा दीर्घायु जीवनकाल के लिए किया गया कोई भी संगठित उपाय, जन स्वास्थ्य पोषण कहलाता है।

ऐतिहासिक रूप से जन स्वास्थ्य पोषण का प्रयोग स्थानीय, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर स्वास्थ्य विभाग द्वारा दी गयी जिम्मेदारियों के लिए किया जाता रहा है। जन स्वास्थ्य पोषण सम्बन्धित

नीतियों के विकास तथा उनको लागू करने से संबंधित है। इसमें पोषण, सामाजिक तथा व्यवहारिक विज्ञान के सिद्धान्त और प्रथाओं को संयोजित किया जाता है। जन स्वास्थ्य पोषण एक व्यवसायिक पाठ्यक्रम है जिससे व्यवहारिक ज्ञान एवं कौशल प्राप्त होता है।

जन स्वास्थ्य पोषण की परिभाषा

विभिन्न लोगों एवं संगठनों ने जन स्वास्थ्य पोषण की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं प्रदान की हैं। इससे ज्ञात होता है कि जन स्वास्थ्य पोषण की अवधारणा काफी व्यापक है।

पोषण समिति (Nutrition Society) के अनुसार

“जन स्वास्थ्य पोषण” पोषण शिक्षा व ज्ञान के माध्यम से अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और आबादी में आहार संबंधी बीमारीयों के प्राथमिक रोकथाम पर केन्द्रित है।

पोषण गठबंधन (Nutrition Alliance, Australia) के अनुसार

“जन स्वास्थ्य पोषण” सम्पूर्ण आबादी को प्रभावित करने वाले स्वास्थ्य मुददों पर ध्यान केन्द्रित करता है। इसके अन्तर्गत खाद्य पैदावार, वितरण व उपयोग का समुदाय या आबादी के पोषण स्तर एवं पोषण ज्ञान पर प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। इसके साथ-साथ समुदाय के व्यक्तियों के ज्ञान, कौशल व प्रवृति का भी विवरण शामिल किया जाता है।

जन स्वास्थ्य पोषण की परिभाषा चाहे कोई भी हो, निष्कर्ष यह है कि जन स्वास्थ्य पोषण में आबादी के उत्तम पोषण हेतु विभिन्न आयाम अपनाए जाते हैं। यह जनसंख्या के स्वास्थ्य सुधार के लिए भोजन व पोषण ज्ञान, नीति और अनुसंधान पर पूरी तरह बल देता है।

जन स्वास्थ्य पोषण निम्नलिखित आयामों से संबंध रखता है एवं इसके अध्ययन द्वारा जन स्वास्थ्य से संबंधित अनेक प्रश्नों के उत्तर पाये जा सकते हैं। जैसे;

- स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक, व्यवहारिक एवं खाद्य और पोषण सम्बन्धी कारक क्या हैं?
- ऐसे कौन से तरीके हैं जिनसे पोषण कार्यक्रमों की रूपरेखा, क्रियान्वयन और मूल्यांकन द्वारा जनसंख्या या उपसमूहों की पोषण स्थिति में सुधार लाया जा सकता है?
- खाद्य एवं पोषण संबंधित नीतियां विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्ग के स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करती हैं?
- कैसे वैश्विक, राष्ट्रीय, राज्य और स्थानीय सामुदायिक कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाकर सम्पूर्ण जनसंख्या व विशेष रूप से कमजोर वर्ग के पोषण स्तर को बेहतर बनाया जा सकता है।
- यह आहार से संबंधित स्वास्थ्य समस्याओं जैसे अल्पपोषण व अतिपोषण को पहचानना व आकलन करना सिखाता है।

- इसके अन्तर्गत अल्पपोषण व अतिपोषण के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय जोखिम कारकों को पहचानने में मदद मिलती है।
- यह कृषि, भोजन, पोषण व जन स्वास्थ्य के बीच संबंधों को प्रदर्शित करता है।
- खाद्य असुरक्षा व कुपोषण को कम करने के लिए शैक्षिक संस्थागत व जनसंख्या के आधार पर कार्यान्वयन करने वाली रणनीतियों का विकास करना भी जन स्वास्थ्य पोषण के अन्तर्गत सम्मलित आयामों में से एक है।
- पोषण स्तर में सुधार के लिए व खाद्य असुरक्षा की बाधाओं को कम करने के लिए नीतियों का विकास करना भी जन स्वास्थ्य पोषण का कार्यक्षेत्र है।
- सुरक्षित खाद्य उत्पादन, वितरण और भोजन की खपत सुनिश्चित करने के लिए नीतियों को बढ़ावा देना।
- विविध जनसंख्या समूहों के बीच बेहतर पोषण और शारीरिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रभावशाली रणनीतियों का विकास करना।

जन स्वास्थ्य पोषण के अन्तर्गत ऐसी सेवाएं व क्रियाकलाप आते हैं जो जनसंख्या को उत्तम पोषण स्तर व स्वास्थ्य पाने व बनाए रखने में मदद करता है। जन स्वास्थ्य पोषण स्वास्थ्य को बढ़ावा देने, पुराने जटिल रोगों के जोखिम कारकों को कम करने व कुपोषण से लड़ने के लिए शिक्षा और पर्यावरणीय दृष्टिकोण के माध्यम से छात्रों को दक्ष बनाता है।

आगे बढ़ने से पूर्व आइए नीचे दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. जन स्वास्थ्य से क्या अभिप्राय है?

   ....

   ....
2. जन स्वास्थ्य पोषण की क्या परिभाषा है?

   ....

   ....
3. रिक्त स्थान भरिए।

   a. जन स्वास्थ्य पोषण .... विकास व उसको लागू करने से संबंधित है।

   b. जन स्वास्थ्य पोषण एक .... पाठ्यक्रम है।

1.5 पोषाहार कार्यक्रमों के लक्ष्य

किसी भी समुदाय को स्वस्थ तभी कहा जा सकता है जब लम्बे समय तक वहां के ज्यादातर लोगों का पोषण स्तर अच्छा हो और वहाँ के लोग किसी भी बीमारी से ग्रस्त न हों।

कुपोषण के कारण समुदाय विकास के पथ पर अग्रसर नहीं हो पाता है। बच्चों के विषय में यह बात विशेषतः महत्वपूर्ण है। कुपोषित बच्चे भविष्य में स्वस्थ राष्ट्र निर्माण में सहयोग नहीं दे सकते। कुपोषण व भुखमरी की समस्या पर काबू पाने में पोषाहार कार्यक्रमों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत सरकार समुदायों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु विभिन्न अल्पकालिक व दीर्घकालिक पोषाहार कार्यक्रमों व योजनाओं को चलाती आयी है। सरकार द्वारा कुपोषण से निजात पाने के लिए पोषाहार कार्यक्रमों की शुरुआत 1960 से ही कर दी गयी थी। तब से लेकर आज तक विभिन्न कार्यक्रमों को आरम्भ किया जा चुका है। कुछ कार्यक्रमों में समय-समय पर आवश्यकतानुसार बदलाव भी किये गये हैं। भारत सरकार द्वारा कार्यक्रम विभिन्न मंत्रालयों के अन्तर्गत चलाए गये हैं। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत समन्वित बाल विकास सेवा (आई0सी0डी0एस0), किशोरी शक्ति योजना, किशोर बालिकाओं के सशक्तिकरण हेतु राजीव गांधी योजना; सबला (The *Rajiv Gandhi Scheme for Empowerment of Adolescent* Girls (RGSEAG); Sabla) आदि कार्यक्रम आते हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत मध्याहन् भोजन कार्यक्रम और सर्वशिक्षा अभियान आते हैं। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय के पास राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और राष्ट्रीय शहरी स्वास्थ्य मिशन हैं। कृषि मंत्रालय ने राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन तथा राजीव गांधी राष्ट्रीय पेय जल मिशन, संपूर्ण स्वच्छता अभियान, स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना तथा महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (मनरेगा) आदि कार्यक्रमों को प्रारंभ किया। खाद्य मंत्रालय ने लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (सुनियोजित सार्वजनिक वितरण प्रणाली), अन्त्योदय अन्न योजना तथा अन्नपूर्णा अन्न योजना को प्रस्तुत किया है।

पोषाहार कार्यक्रमों के उद्देश्य

विभिन्न पोषाहार कार्यक्रमों को लागू करने का एकमात्र उददेश्य उच्च स्वास्थ्य होता है। अलग-अलग कार्यक्रमों की अलग-अलग पहुंच व कार्यप्रणाली होती है। सभी के लक्ष्य निम्नलिखित हैं:

- बाल एवं मातृ मृत्यु दर में कमी लाना।
- स्वस्थ जीवन शैली को बढ़ावा देना।
- बच्चों, किशोरों एवं किशोरियों के पोषण स्तर को सुधारना व उन्नत बनाए रखना।
- पोषण संबंधी जन समस्याओं की रोकथाम व उपचार करना।

- भुखमरी व अनाज की कमी को कम करना।
- निर्धनता के कारण कुपोषण का बचाव करना।
- जन समुदाय में पूर्ण स्वास्थ्य तथा सर्वोत्तम निष्पादन करने की स्थिति बनाए रखना।
- गर्भवती महिलाओं को उचित स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराना। इसमें प्रसव पूर्व एवं प्रसवोपरान्त देखभाल सम्मलित है।
- नवजात शिशुओं का निःशुल्क टीकाकरण करना।
- धात्री माताओं को शिशु को 6 माह तक मां का दूध पिलाए जाने हेतु जागरुक करना एवं इसका प्रचार करना।
- दिशा निर्देशों के तहत बच्चों की विटामिन ए की आपूर्ति करना।
- माता की क्षमताओं में बढ़ोत्तरी करना जिससे वह समुचित स्वास्थ्य शिक्षा से बच्चे की सेहत तथा पोषण की जरुरतों को पूरा कर सके।
- पर्यावरणीय तथा औद्योगिक, स्वास्थ्यपरक पहलुओं में सुधार करना।
- महामारी, स्थानीय बीमारियों, व्यवसाय से जुड़ी अन्य बीमारियों का निवारण, इलाज तथा नियंत्रण करना।

आइए अब कुछ अभ्यास प्रश्नों के उत्तर देकर अपने ज्ञान का आकलन करें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. प्रचलित पोषाहार कार्यक्रमों के नाम बताइये।

....

....

....

2. पोषाहार कार्यक्रमों की आवश्यकता क्यों है?

....

....

....

3. सही मिलान कीजिए।

	क	ख
i.	मानव संसाधन विकास मंत्रालय	अ. राष्ट्रीय कृषि विकास योजना
ii.	महिला और बाल विकास मंत्रालय	ब. ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन
iii.	परिवार कल्याण मंत्रालय	स. सार्वजनिक वितरण प्रणाली

iv.	कृषि महाविद्यालय	द. सर्व शिक्षा अभियान
v.	खाद्य मंत्रालय	व. समन्वित बाल विकास कार्यक्रम

1.6 पोषण स्तर

हम सभी जानते हैं कि अच्छे स्वास्थ्य एवं स्वस्थ शरीर के लिए हमें उचित पोषण की अवश्यकता होती है। यह पोषण हमें पौष्टिक भोजन से प्राप्त होता है। जब हम सभी पौष्टिक तत्व उचित मात्रा में ग्रहण करते हैं एवं वह तत्व शरीर में जाकर उचित रूप से चयापचित होते हैं, तो हम सुपोषण की अवस्था में होते हैं। अल्पाहार से पोषण का स्तर उपयुक्त नहीं रहता है। जब हमारे भोजन में सभी पोषक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध नहीं होते या सुचारु रूप से शरीर द्वारा ग्रहण नहीं किये जाते तो शरीर में कुपोषण की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कुपोषण निम्न पोषण स्तर का द्योतक है। कुपोषण दो प्रकार का होता है। यदि एक या एक से अधिक पोषक तत्वों की कमी हो जाये तो यह न्यून पोषण की स्थिति कहलाती है। जब शरीर में पोषक तत्वों की अधिकता हो जाये तो यह अतिपोषण की स्थिति कहलाती है।

पोषण स्तर के विषय में जानकारी प्राप्त करने के पश्चात ही समुदाय के लिए स्वास्थ्य एवं पोषण संबंधी कार्यक्रमों की योजनाओं के विषय में सोचा जा सकता है। यदि समुदाय का पोषण स्तर अच्छा है तो उनके विकास से संबंधित योजनाओं पर विचार किया जा सकता है परन्तु यदि समुदाय का या समुदाय के किसी विशेष वर्ग का पोषण स्तर अच्छा नहीं है तो सम्पूर्ण ध्यान इसी समस्या को दूर करने पर केन्द्रित होता है।

पोषण स्तर को ज्ञात करने के निम्न उददेश्य हैं:

- स्वास्थ्य को पोषण की दृष्टि से देखना एवं समझना।
- बच्चों की विकास दर की निगरानी करना एवं उनमें मृत्यु दर को कम करना।
- कुपोषण की रोकथाम के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में योगदान प्रदान करना।
- उच्च पोषण स्तर हेतु विभिन्न योजनाएं बनाना।
- सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पहचानना एवं उनको कम करने के उपायों को ढूंढना।
- पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को खोजना एवं उनका निवारण करना।
- समुदाय में संवेदनशील समूहों (Vulnerable groups) को पहचानना।
- प्रभावी योजनाओं (पोषण सम्बन्धी कार्यक्रमों) की प्रभावशीलता को मापना।

- जनसंख्या समूहों में कुपोषण हेतु संवेदनशील व्यक्तियों को पहचानना।

पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले कारक

पोषण स्तर हमारे स्वास्थ्य का एक बहुआयामी पहलू है। ऊपरी तौर पर इसका संबंध भोजन एवं पोषण से ही दिखता है परंतु वास्तव में इसकी जड़ें काफी गहरी एवं फैली हुई हैं। यह अनेक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होती है।
पोषण को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:

आर्थिक स्थिति

आर्थिक स्थिति पोषण स्तर को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। विशेषकर निम्न आर्थिक वर्ग के समूहों में निर्धनता के कारण आहार में पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन अथवा सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसे लोगों का पोषण स्तर निम्न रह जाता है। यदि आर्थिक स्थिति अच्छी हो तो अतिपोषण के कारण मोटापा जैसी समस्या हो सकती है जिस कारण पोषण स्तर प्रभावित होता है।

अज्ञानता

गरीबी के साथ-साथ अज्ञानता भी पोषण स्तर को प्रभावित करती है। यदि समुदाय के लोगों को पौष्टिक तत्वों तथा उनके खाद्य स्रोतों का उचित ज्ञान है, यह पोषण स्तर पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। दैनिक जीवन में उचित पोषण का ज्ञान, साफ-सफाई की महत्ता पोषण स्तर को उचित बनाने में मददगार होता है। जैसे 6 माह के शिशु को ऊपरी आहार देना शुरु कर देना चाहिए। अगर इस बात को ध्यान में नहीं रखा जाता है तो बच्चे का पोषण स्तर जल्द ही घटने लगता है। यदि गरीबी तथा अज्ञानता साथ में हैं तो स्थिति और गम्भीर हो जाती है तथा कुपोषण के परिणाम दिखने लगते हैं।

बेरोजगारी

जनसंख्या वृद्धि, अशिक्षा के कारण बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है जिससे अप्रत्यक्ष रूप से पोषण स्तर प्रभावित होता है।

भोजन की उपलब्धता

जनसमुदाय में भोजन की आपूर्ति की स्थिति पोषण स्तर को प्रभावित करती है। दूसरी ओर भोजन की आपूर्ति, कृषि स्थिति, वार्षिक पैदावार, महंगाई, भण्डारण एवं परिवहन पर निर्भर करती है। यदि

बाजार में अनाज उचित मात्रा तथा उचित दरों पर उपलब्ध नहीं होता है तो इसका प्रभाव समुदाय के व्यक्तियों के निम्न पोषण स्तर के रूप में देखा जा सकता है।

बीमारी की अवस्था

बीमारी के कारण भी पोषण स्तर प्रभावित हो सकता है। बीमारी में भोज्य तत्वों का शरीर में पूर्णतः पाचन, अवशोषण एवं चयापचय नहीं हो पाता है। इसलिए शरीर में पौष्टिक तत्वों की कमी हो जाती है जिससे पोषण स्तर प्रभावित होता है।

अन्य कारण

पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले अन्य अप्रत्यक्ष कारण भी हैं। इन कारकों में भोजन सम्बन्धी भ्रान्तियां, धर्म, संस्कृति, परिवार का आकार, व्यक्तिगत पसन्द-नापसन्द, आधुनिकता आदि सम्मिलित हैं।

पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों को जानने के बाद आइए पोषण स्तर के आकलन के विषय में जानें।

पोषण स्तर सम्बंधी जानकारी के पश्चात आइए सामुदायिक पोषण की तात्कालिक स्थिति एवं मुद्दों के बारे में जानें।

1.7 सामुदायिक पोषण की तत्कालिक स्थिति एवं मुद्दे

समुदाय के लोगों की पोषण स्थिति को पूरे विश्व में राष्ट्रीय विकास का प्रतीक माना जाता है। भारत में पोषण की स्थिति अधिक प्रभावी नहीं है। विगत दशकों में अर्थव्यवस्था के विकास के बावजूद भी भुखमरी व कुपोषण के मामले में भारतीय प्रगति कमजोर रही है। तात्कालिक स्थिति की बात करें तो नजर सीधे राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (National Family Health Survey, NFHS) के आंकड़ों पर जाती है। आइए इसके बारे में जानें।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण बड़े पैमाने पर किया गया बहुल चक्र सर्वेक्षण है, जो सम्पूर्ण भारत में घरों के प्रतिनिधि सैम्पल पर किया जाता है। यह भारत के लिए प्रजनन, शिशु एवं बाल मृत्यु, बाल स्वास्थ्य, महिलाओं एवं बच्चों का पोषण स्तर, मातृत्व स्वास्थ्य, एनीमिया एवं स्वास्थ्य तथा परिवार कल्याण सेवाओं की गुणवत्ता संबंधित राजकीय और राष्ट्रीय सूचना प्रदान करते हैं। अब तक चार बार (1992-93, 1988-99, 2005-2006, 2015-16) सर्वेक्षण किया गया है ताकि

भारत में व्यापक जनसांख्यिकीय आंकड़ों का सृजन किया जा सके। N.F.H.S. के प्रत्येक अनुवर्ती चक्र के दो विशिष्ट लक्ष्य हैं:

क) उभरते हुए महत्वपूर्ण स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मुद्दों संबंधी सूचना प्रदान करना।

ख) नीति और कार्यक्रम नियोजन के उद्देश्य से मंत्रालयों और एजेंसियों के लिए अपेक्षित स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर अनिवार्य आधारभूत आंकड़े प्रदान करना।

N.F.H.S. प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पिछले 23 वर्षों में अल्पपोषण के प्रसार एवं व्यापकता के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। इनसे महिलाओं एवं बच्चों की पोषण स्थिति के विषय में ठोस जानकारी प्राप्त होती है। इसके अलावा इन सर्वेक्षणों में महिलाओं की आहार विविधता पर भी जानकारी प्रदान की गयी है।

1.7.1 भारत में पोषण की स्थिति

मृत्युदर, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी और कुपोषण कुछ ऐसे सूचक हैं जिनका उपयोग देश की स्वास्थ्य संबंधी स्थिति का मूल्यांकन करने में किया जाता है। भारत में कुपोषण के अधिक मामले हैं जिनका कारण जानकारी और जागरुकता का अभाव, गरीबी तथा पर्याप्त एवं सन्तुलित आहार का सेवन न करना है।

सबसे पहले हम नवजात शिशुओं की चर्चा करते हैं। भारत में जन्मे कुल शिशुओं में से 22.7 प्रतिशत का वजन 2.5 किलो से कम होता है। ऐसे शिशुओं को कम वजन वाले शिशु (Low Birth Weight Baby) कहा जाता है। उनकी शैशवकाल में मृत्यु का जोखिम काफी अधिक होता है। यदि वे जीवित बच भी जाते हैं तो उनकी वृद्धि में हुई कमी पूरी नहीं हो पाती है और वे कई विकास संबंधी कमियों से ग्रस्त रहते हैं।

NFHS-4 सर्वेक्षण के अनुसार भारत में नवजात शिशु मृत्युदर 41 प्रति 1000 जीवित जन्म है जो 2005-06 के सर्वेक्षण (57 प्रति 1000 जीवित जन्म) के मुकाबले कम है। इसका कारण स्वास्थ्य सेवाओं एवं प्रसव में देखभाल में सुधार है। जहाँ 2005-06 के सर्वेक्षण में सिर्फ 34.6% महिलाओं को ही प्रसव के दो दिन के भीतर डॉक्टर, नर्स या किसी स्वास्थ्यकर्मी द्वारा स्वास्थ्य देखभाल/सुविधा मिल पाई वहीं यह प्रतिशत 2015-16 के सर्वेक्षण में बढ़कर 62.4% हो गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पांच साल से कम उम्र के बच्चों में मृत्यु दर में कमी आयी है। NFHS-4 सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि यह दर पहले 74 प्रति 1000 जीवित जन्म थी। 2015-16 के सर्वेक्षण में यह दर गिर कर 50 प्रति 1000 जीवित जन्म पर पहुंच गई है। संपूर्ण रूप से

देखें तो स्थिति प्रगति की ओर दिखाई देती है। परन्तु भारत अभी भी विश्व विकास लक्ष्य के 38 प्रति 1000 जीवित जन्म के आंकड़े से बहुत दूर है।

यूनीसेफ के अनुसार साल 2011 तक भारत में कुपोषण के कारण आयु के अनुसार सामान्य से कम लम्बाई के बच्चों की संख्या लगभग 6.17 करोड़ थी। यानि विश्व में कुपोषण के कारण जिन बच्चों की लम्बाई सामान्य से कम है, उनकी कुल संख्या का 37.9 फीसदी हिस्सा भारत में है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-4 के अनुसार 5 वर्ष से कम उम्र के 38.4 प्रतिशत बच्चे (कुपोषण के कारण) सामान्य से कम लम्बाई (आयु के अनुसार लम्बाई) के हैं। अगर यही स्थिति रही तो अगले 15 वर्षों में सामान्य से कम लम्बाई वाले बच्चों की आबादी 45 करोड़ हो जाएगी। NFHS-3 के आंकड़ों के अनुसार उम्र के अनुसार सामान्य लम्बाई मगर कम वजन के बच्चों की आबादी 19.8 प्रतिशत थी। यह संख्या NFHS-4 मे बढ़कर 21 प्रतिशत हो गई है।

पाँच वर्ष से कम उम्र के 58.4 प्रतिशत बच्चे रक्ताल्पता के शिकार हैं। NFHS-4 के अनुसार केवल 41.6 प्रतिशत बच्चों को ही जन्म के एक घण्टे के भीतर स्तनपान कराया जाता है। 6 से 23 माह के जिन बच्चों को स्तनपान कराया जाता है, उनमें से 9.6 % को ही आवश्यक उचित ठोस आहार उपलब्ध हो पाता है।

बच्चों में टीकाकरण करवाने के प्रतिशत में भी प्रगति हुई है। NFHS-3 के अनुसार 12-23 महीने के नवजात शिशुओं में मात्र 43.5 प्रतिशत को सभी रोग प्रतिरोधी टीके लगाने में सफलता मिली थी, NFHS-4 में यह आंकड़ा बढ़कर 62 प्रतिशत हो गया है।

बच्चों में डायरिया/अतिसार अब भी एक बड़ी चुनौती है। इस स्थिति में मामूली सुधार देखने में आया है। अतिसार की स्थिति में मात्र 67.9 प्रतिशत बच्चों को ही चिकित्सा केन्द्र लेकर जाया जाता है। NFHS-3 में यह आंकड़ा 61.3 प्रतिशत था। NFHS-4 के अनुसार पाँच साल से कम उम्र के 60.2 प्रतिशत बच्चों को विटामिन ए की खुराक मिली। देश के 93 प्रतिशत घरों में आयोडीन नमक का प्रयोग किया जाता है। यह प्रतिशत NFHS-3 में 76 प्रतिशत था।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (2014) के तथ्यों के अनुसार साल 1990 के बाद भारत में स्त्री पुरुष दोनों की आयु संभाविता (जन्म के समय) 57 वर्ष से बढ़कर 66 वर्ष तक पहुंच गयी है। इस बढ़त के बावजूद भारत चीन एवं ब्राजील जैसे देशों से इस मामले में पीछे है। रिपोर्ट में आयु संभाविता में बढ़ोत्तरी के कई कारण बताए गये हैं जिनमें बाल मृत्युदर और मातृ मृत्यु दर अनुपात में कमी आना प्रमुख हैं। अन्य कारणों में बेहतर चिकित्सा सेवा भी सम्मिलित है।

NFHS-4 के आकलन के अनुसार महिलाओं में पोषण की दशा सुधार की तरफ अग्रसर है। भारत में प्रजनन स्वास्थ्य की स्थिति पूर्व की तुलना में सुधरी है। भारत में जनन दर 2.7 से घटकर 2.2 शिशु

के औसत हो गयी है। 1990 में मातृ मृत्यु दर 569 प्रति लाख जीवित जन्म थी। वहीं 2013 में यह आंकड़ा घट कर 190 प्रति लाख जीवित जन्म हो गया है।

NFHS-4 के अनुसार शरीर द्रव्यमान सूचकांक (बी0एम0आई0) के आधार पर 22.9 प्रतिशत महिलाओं एवं 20.2 प्रतिशत पुरुषों का बी0एम0आई0 18.5 से कम है जो उन्हें कुपोषित दर्शाता है। इसके साथ-साथ 20.7 प्रतिशत महिलाएं तथा 18.6 प्रतिशत पुरुष मोटापे से ग्रस्त हैं। लगभग 53 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से ग्रस्त हैं। पुरुषों में यह प्रतिशत 22.7 है। गर्भवती महिलाओं में एनीमिया का प्रतिशत 50.3 है।

सामुदायिक पोषण के मुद्दे

इकाई के इस भाग में हम सामुदायिक पोषण से जुड़े विभिन्न मुद्दों के विषय में चर्चा करेंगे। ज्यादातर मुद्दे पोषण की तात्कालिक स्थिति तथा विशेष रूप से कमजोर वर्ग से संबंधित हैं। पिछले भाग में आपने भारत में पोषण की स्थिति के विषय में जानकारी प्राप्त की। इस स्थिति को ध्यान में रखकर कुछ मुद्दों का विवरण निम्न भाग में दिया गया है।

कुपोषण

भारत में बच्चों की जनसंख्या का एक बड़ा भाग कुपोषित है। ये बच्चे सामान्य से कम वजन के हैं और उनकी लम्बाई भी सामान्य से कम है। भारत में 70 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं और बच्चे गम्भीर पोषण संबंधी कमियों से जूझ रहे हैं जिनमें एनीमिया प्रमुख है। अर्थव्यवस्था की प्रगति के बावजूद भी हमारे देश में कुपोषण गम्भीर रूप धारण किये हुए है। सरकार द्वारा कई योजनाओं के माध्यम से इसे कम करने के प्रयास भी किये जाते हैं परन्तु उन योजनाओं का प्रभाव कारगर रूप से दिखाई नहीं देता है। कुपोषित बालिकाओं के मामले में यह देखा गया है कि भविष्य में उनके कुपोषित मां बनने की आशंका ज्यादा होती है और ऐसी माताओं के बच्चों का वजन जन्म के समय सामान्य से कम होता है। इस तरह यह कुपोषण जनित दुष्चक्र एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के बीच चलता रहता है। भारत में रोगों के उपचार के ऊपर जितना खर्च होता है उसका 22 प्रतिशत हिस्सा बचाया जा सकता है यदि बाल कुपोषण की स्थिति पैदा न हो। भोजन की कमी का प्रभाव बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास पर पड़ता है। कुपोषित बच्चे शिक्षा ग्रहण करने के मामले में भी पिछड़े रह जाते हैं तथा इसका असर उनकी उत्पादकता पर पड़ता है।

भारत में बाल कुपोषण के मुख्य कारण बच्चों में संक्रमण होना तथा उन्हें साफ-सफाई के साथ आहार का उपलब्ध न होना है। भारत के बच्चों में सर्वाधिक कुपोषण जन्म के बाद के पहले तीन वर्षों में होता है। यह एक आम धारणा है कि बच्चों को पर्याप्त मात्रा में आहार नहीं मिलता इसलिए वे कुपोषित रह जाते हैं। बच्चों में यदि कुपोषण को कम करना है तो मात्र आहार की मात्रा पर जोर देकर

इससे लड़ा नहीं जा सकता अपितु समुदाय को बच्चों एवं माताओं की उचित देखभाल एवं स्वच्छता के प्रति जागरुक करना होगा।

अनुसंधानों से पता चलता है कि यदि बच्चों को कुपोषण से बचाया जाए तो वे एक वयस्क के रूप में कहीं ज्यादा कार्यक्षमता के साथ उत्पादक कार्यों में लग सकते हैं और उनकी आय अर्जित करने की क्षमता में 46 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हो सकती है। भारत में कुपोषण के कारण उत्पादकता में अनुमानतया 16 हजार करोड़ रूपये का वार्षिक घाटा होता है। इसलिए देश के विकास के लिए कुपोषण को रोकना आवश्यक है।

मध्याह्न भोजन योजना

शिक्षा के मूलभूत अधिकार को ध्यान में रखते हुए प्राथमिक विद्यालयों में बच्चों की उपस्थिति तथा नामांकन बढ़ाने तथा साथ ही साथ बच्चों के पोषण स्तर में सुधार करने के उद्देश्य से 15 अगस्त, 1995 को मध्याह्न भोजन योजना का शुभारम्भ एक केन्द्रीय प्रायोजित स्कीम के रूप में किया गया। आरंभ में बच्चों को प्रतिदिन 100 ग्राम अनाज मुफ्त दिया जाता था। फिर 2004 में इस योजना में बदलाव करते हुए कक्षा 1 से 5 तक के बच्चों को स्कूल में ही खाना पकाकर खिलाना शुरु किया गया तथा 2007 से कक्षा 1 से 8 तक के बच्चों को मध्याह्न भोजन दिया जाने लगा। इस योजना का उद्देश्य स्कूलों में बच्चों को पोषाहार उपलब्ध कराना, कुपोषण से लड़ना और बच्चों की बीच में ही स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति पर रोक लगाना है। इस योजना के उद्देश्यों एवं लाभों को ध्यान में रखते हुए भोजन को और भी पोषक एवं रुचिकर बनाने की आवश्यकता है। संपूर्ण प्रणाली का सरलीकरण एवं समुदाय की उचित भागीदारी इस योजना को सशक्त एवं सफल बनाने में मदद कर सकती है।

महिला शिक्षा एवं सशक्तिकरण

महिलाओं के सामाजिक सशक्तिकरण में शिक्षा की अहम भूमिका है। यह महिलाओं के सर्वांगीण विकास के लिए प्रथम एवं मूलभूत साधन है क्योंकि महिला के शिक्षित होने पर जागरुकता आती है। शिक्षा के माध्यम से महिलाएं समाज में सशक्त, समान एवं महत्वपूर्ण भूमिका दर्ज करा सकती हैं। शिक्षित महिलाएं न केवल स्वयं आत्मनिर्भर एवं लाभान्वित होती हैं अपितु महिलाओं के शिक्षित होने से उनकी भावी पीढ़ियां भी लाभन्वित होती हैं। 2011 की जनगणना रिपार्ट के अनुसार भारत में महिला साक्षरता मात्र 65.46 प्रतिशत है। शिक्षित महिलाएं स्वास्थ्य के विभिन्न आयामों के प्रति सजग रहती हैं। एक स्वस्थ महिला स्वस्थ बच्चे को जन्म देती है। महिला शिक्षा को प्रोत्साहित कर एक शिक्षित एवं स्वस्थ समाज की कल्पना की जा सकती है।

स्वच्छता

कुपोषण का एक मुख्य कारण अस्वच्छता भी है। व्यक्तिगत तथा पर्यावरणीय दोनों ही प्रकार की स्वच्छता द्वारा संक्रमणों से बचाव होता है। हमारे देश में पर्याप्त साफ-सफाई का परिवेश न होना

बच्चों में कुपोषण का एक बड़ा कारक है। भारत में 50-60 प्रतिशत आबादी खुले में शौच करने के लिए बाध्य है जिससे बच्चों में जीवाणु संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। यूनिसेफ की रिपोर्ट के अनुसार स्वच्छता और कुपोषण के बीच संबंध को व्यापक तौर पर अनदेखा किया जाता है। भारत में पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों के कुपोषित होने की मुख्य वजह अतिसार या डायरिया है। स्वच्छता की कमी, साफ पीने के पानी की अनुपलब्धता, शौचालयों का अभाव एवं मूलभूत स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी भी कुपोषण के कुछ प्रमुख कारक हैं। इसलिए मात्र भोजन सुरक्षा ही उत्तम स्वास्थ्य की गारण्टी नहीं है। समुदाय को स्वच्छता संबंधी आदतों के लिए भी जागरुक करना आवश्यक है।

खाद्य आपूर्ति

अपर्याप्त खाद्यान्न उपलब्धता एवं गरीबी दोनों ही आहार की उपलब्धता को कम करते हैं। देश में अन्न की उचित आपूर्ति बनाए रखने के लिए सरकार द्वारा चलाई जा रही सार्वजनिक वितरण प्रणाली सरकार की नीतियों का महत्वपूर्ण अंग है। खाद्य आपूर्ति को और बेहतर बनाने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली योजना की व्यवस्था को सुधारने की आवश्यकता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को पारदर्शी और मजबूत बनाने के लिए ठोस पहल करनी होगी।

अभ्यास प्रश्न 5

---

1. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (N.F.H.S.) किन मुद्दों से सम्बंधित आंकड़े एकत्रित करते हैं?

   ....

   ....
2. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के लक्ष्य क्या हैं?

   ....

   ....
3. किसी भी देश/समुदाय का स्वास्थ्य सम्बंधी स्थिति का मूल्यांकन किस प्रकार किया जा सकता है?

   ....

   ....
4. समुदाय में पोषण सम्बंधित तत्कालिक मुद्दे कौन-कौन से हैं जिनसे कुपोषण की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है?

   ....

   ....

1.8 सारांश

इकाई के अध्ययन के पश्चात में अन्त में हम कह सकते हैं कि समुदाय की स्वास्थ्य एवं पोषण स्थिति की जानकारी एवं समुदाय की स्वास्थ्य रक्षा के लिए सामुदायिक पोषण जैसे विषय के अध्ययन से लाभ होता है। सामुदायिक पोषण का अध्ययन क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। सामुदायिक पोषण के अन्तर्गत ही जन स्वास्थ्य पोषण आता है। इसका संबंध जनसंख्या एवं नीति निर्माण से है। समुदाय के पोषण स्तर को सुधारने तथा बनाए रखने के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर विभिन्न पोषाहार कार्यक्रमों की शुरुआत की गई। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य कमजोर वर्ग विशेषतः महिलाओं एवं बच्चों को स्वास्थ्य एवं पोषण लाभ पहुँचाना है। अलग-अलग मंत्रालाय एवं विभाग अलग-अलग कार्यक्रमों की देखरेख तथा संचालन करते हैं।

समुदाय एवं सम्पूर्ण जनसंख्या के उत्तम स्वास्थ्य के लिए भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् (आई.सी.एम.आर.) द्वारा अलग-अलग आयु वर्ग हेतु आहारीय निर्देश दिये गए हैं। यदि समुदाय के लोगों को इन निर्देशों के संदर्भ में शिक्षित किया जाए तो पोषण संबंधी अनेक समस्याएं हल हो सकती हैं। आहारीय निर्देशों के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् द्वारा दैनिक पोषक तत्वों की आवश्यकता के बारे में भी मानक दिये गये हैं। भारत में पोषण की स्थिति प्रगति पर है। कुछ आंकड़े अभी भी लक्ष्य से काफी पीछे हैं किन्तु गत वर्षों से आंकड़ों में सुधार हो रहा है। शिशुओं तथा गर्भवती महिलाओं पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है जिससे शिशु मृत्यु दर एवं मातृ मृत्यु दर को नियंत्रित किया जा सके। पोषण की वर्तमान स्थिति से पता चलता है कि कुपोषण अभी भी हमारे देश की महत्वपूर्ण समस्या है। इसके मूल कारण अपर्याप्त भोजन उपलब्धता, गरीबी, महिला अशिक्षा, अस्वच्छता तथा स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि हैं जिन्हें सशक्त करना समय की मांग है तभी कुपोषण से लड़ा जा सकता है।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **समुदाय**: किसी स्थान विशेष में रहने वाले व्यक्तियों का समूह।
- **सामुदायिक पोषण**: समुदाय की पोषण आवश्यकताओं एवं स्थिति के आकलन का अध्ययन क्षेत्र।
- **सन्तुलित आहार**: दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला आहार जिसमें सभी खाद्य समूह उचित मात्रा में उपलब्ध हों।
- **कुपोषण**: असामान्य पोषण की स्थिति, अल्प पोषण अथवा अति पोषण।
- **नवजात मृत्यु दर**: जन्म के पहले महीने में 1000 जीवित जन्म में शिशु की मृत्यु की संभावना।
- **शिशु मृत्यु दर**: 1000 जीवित शिशुओं के जन्म में पहले जन्मदिन से पूर्व मरने की संभावना।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. एक निश्चित भू भाग में निवास करने वाले सामाजिक/ आर्थिक/ सांस्कृतिक अथवा धार्मिक समूह जो सभी सदस्यों के सहयोग से अपने उददेश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करते हैं, समुदाय कहलाता है।
2. समुदाय के अन्तर्गत महिलाएं, बच्चे तथा वृद्धजन संवेदनशील वर्ग या कमजोर वर्ग कहलाते हैं।
3. सही या गलत बताइए।
    a. सही
    b. सही
    c. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1. जनसंख्या में बीमारियों की रोकथाम तथा अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देना जन स्वास्थ्य है।
2. जन स्वास्थ्य पोषण, पोषण शिक्षा एवं ज्ञान के माध्यम से अच्छे स्वास्थ्य को बढ़ावा देने और समुदाय में आहार संबंधी बीमारी के प्राथमिक रोकथाम पर केन्द्रित है।
3. रिक्त स्थान भरिए।
    a. नीति
    b. व्यवसायिक

अभ्यास प्रश्न 3

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली, समन्वित बाल विकास कार्यक्रम, मध्याह्न भोजन कार्यक्रम।
2. पोषाहार कार्यक्रमों की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है:
    - समुदाय के उत्तम स्वास्थ्य हेतु
    - बाल मृत्युदर तथा मातृ मृत्युदर में कमी लाने हेतु
    - पोषण संबंधी जन समस्याओं की रोकथाम एवं उपचार हेतु
3. सही मिलान कीजिए:

क	ख
i.	द
ii.	व
iii.	ब

iv. अ
v. स

अभ्यास प्रश्न 4

1. समूह 1- अनाज- गेहूँ, चावल, मक्का, ज्वार, बाजरा, मंडुवा, कौड़ी, कुट्टू

समूह 2- दालें, फलियां व मांस, मछली, अण्डा समूह - चना, उड़द, मूंग, जानवरों का मांस, मुर्गा, मछली, अण्डे

समूह 3- दूध एवं दूध से बने पदार्थ- दूध, दही, पनीर, खोआ, खोए से बनी मिठाई, मिल्क पाउडर

समूह 4- फल एवं सब्जियां- आम, अमरूद, जामुन, सन्तरा, पपीता, हरी पत्ते वाली सब्जियां, लौकी, तरोई, कद्दू, चिचिन्डा, करेला, मटर

समूह 5- घी, तेल तथा शर्करा- वसा एवं चीनी, मक्खन, घी , हाइड्रोजनेटड वसा, चर्बी तथा वनस्पति तेल

2. समुदाय में सदस्यों की आहार एवं पोषण संबंधी माँगें उनकी आयु, लिंग, विशेष शारीरिक अवस्था एवं क्रियाशीलता पर निर्भर करती है। जन स्वास्थ्य हेतु आहारीय दिशा निर्देश दिये गए हैं जिन्हें अपनाकर समुदाय में सभी का उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।
3. आहार निर्देश पिरामिड या फूड गाइड पिरामिड के अनुसार आहार लेना एक आदर्श एवं सन्तुलित आहार कहलाता है। इस पिरामिड में निचले स्तर में दिये हुए आहार पदार्थों को ज्यादा उपयोग में लाना चाहिए तथा ऊपरी स्तर के खाद्य पदार्थों का प्रयोग कम करना चाहिए।
4. सही या गलत बताइए।
   a. सही
   b. सही
   c. गलत
   d. सही

अभ्यास प्रश्न 5

1. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण प्रजनन, शिशु एवं बाल मृत्यु, बाल स्वास्थ्य, महिलाओं तथा बच्चों का पोषण स्तर, मातृ स्वास्थ्य, एनीमिया एवं स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण सेवाओं की गुणवत्ता संबंधित राजकीय और राष्ट्रीय सूचना प्रदान करते हैं।
2. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के लक्ष्य निम्न हैं:
   - स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों से सम्बंधित सूचनाएं प्रदान करना।

- नीति और कार्यक्रम नियोजन के उद्देश्य से मंत्रालयों और एजेंसियों के लिए अपेक्षित स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर अनिवार्य आधारभूत आंकड़े प्रदान करना।

3. मृत्युदर, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी और कुपोषण कुछ ऐसे सूचक हैं जिनका देश की स्वास्थ्य संबंधी स्थिति का मूल्यांकन करने में उपयोग किया जाता है।
4. समुदाय में पोषण सम्बंधित तत्कालिक मुद्दे अपर्याप्त भोजन उपलब्धता, गरीबी, महिला अशिक्षा, अस्वच्छता तथा स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव आदि हैं जिन्हें सशक्त करना समय की मांग है, तभी कुपोषण से लड़ा जा सकता है।

1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Sehgal S. And Raghuvanshi RS (Eds.) 2007. Text book of community nutrition. ICAR, New Delhi 524 p.
2. Bamji, MS, Rao NP and Reddy, Vinodini, 1998, Text Book of Human Nutrition. Oxford and IBH Publishing Co. Pvt. Ltd.

इंटर्नेट स्रोत

3. www.nfhs.org
4. www.ind.gov.in

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामुदायिक पोषणके अध्ययन क्षेत्र के विषय में उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
2. जनस्वास्थ्य पोषण के विभिन्न आयामों पर टिप्पणी कीजिए।
3. भारत में पोषण की स्थिति पर विवेचना कीजिए।
4. पोषण से संबंधित विभिन्न मुददों पर आपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 2: प्रत्यक्ष पोषण स्तर

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मानव समूहों में प्रत्यक्ष पोषण स्तर का आकलन
    2.3.1 पोषण स्तर
    2.3.2 पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले कारक
    2.3.3 पोषण स्तर का आकलन
2.4 सारांश
2.5 पारिभाषिक शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भोजन या आहार हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। सभी जीव जन्तु जीवित रहने के लिए तथा स्वस्थ और सक्रिय जीवन बिताने के लिए भोजन ग्रहण करते हैं। ग्रहण किया हुआ भोजन शरीर को पोषण प्रदान करता है। उचित पोषण के लिए सभी पोषक तत्व (वसा, कार्बोज, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण, रेशा एवं जल) उचित मात्रा तथा अनुपात में आवश्यक हैं। भोजन प्रत्यक्ष रूप से पोषण स्तर को प्रभावित करता है। पोषण स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य की ऐसी स्थिति है जो शरीर में पोषक तत्वों की उपयोगिता से प्रभावित होती है। दूसरे शब्दों में पोषण स्तर व्यक्ति के स्वास्थ्य की ऐसी स्थिति है जो तत्वों के अंतर्ग्रहण एवं उपयोग के प्रभाव से उत्पन्न होती है।

अत: उपरोक्त की चर्चा से पता चलता है कि भोजन से पोषण स्तर प्रभावित होता है। इस इकाई में हम पोषण स्तर के आकलन के उन विभिन्न तरीकों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे जिनसे यह पता चलता है कि किसी व्यक्ति या समूह का पोषण स्तर अच्छा है या नहीं।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आपः

- पोषण स्तर तथा पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में जानकारी ले सकेंगे;
- पोषण स्तर के आकलन की विविध विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

आइए, इकाई का अध्ययन प्रारंभ करें।

2.3 मानव समूहों में प्रत्यक्ष पोषण स्तर का आकलन

जैसा कि हम जान चुके हैं, किसी भी व्यक्ति के पोषण स्तर को जानने से उसके स्वास्थ्य की स्थिति के बारे में पता चलता है। इकाई के इस भाग में हम पोषण स्तर के आकलन की विविध विधियों के बारे में ज्ञान अर्जित करेंगे। इन विधियों के उपयोग से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी व्यक्ति विशेष अथवा समूह का पोषण स्तर अच्छा है या नहीं। क्योंकि पोषण स्तर बहुआयामी घटक है इसलिए इसके आकलन के लिए भी विभिन्न तरीकों को प्रयोग में लाया जाता है। प्रत्यक्ष रूप से पोषण स्तर को मापने के लिए निम्नलिखित तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है:

(1) आहार सर्वेक्षण (Diet Survey)

(2) पोषण सम्बन्धी मानवमितीय माप (Anthropometric measurements)

(3) नैदानिक लक्षण (Clinical signs and symptoms)

1. आहार सर्वेक्षण

व्यक्तियों या समूहों के खान-पान सम्बन्धी आदतों की विविध रूप से जाँच आहार सर्वेक्षण कहलाती है। इस विधि में पोषण स्तर ज्ञात करने के लिए व्यक्ति/परिवार/समूह द्वारा ग्रहण की गई भोज्य सामग्री की मात्रा को सही-सही ज्ञात किया जाता है। भोजन का सीधा सम्बन्ध पोषण स्तर से होता है। इसलिए भोजन ग्रहण करने का नियम, मात्रा आदि पोषण की प्रत्यक्ष जानकारी प्रदान करता है।

आहार सर्वेक्षण के उद्देश्य

आहार सर्वेक्षण के प्रमुख उद्देश्य निम्नांकित हैं:

1. व्यक्ति/परिवार/समूह विशेष द्वारा उपयोग में लाए गये भोज्य पदार्थ के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त करना तथा भोज्य पदार्थ/भोज्य तत्वों की प्रचुरता को जानना।

2. आहार सर्वेक्षण के माध्यम से व्यक्ति तथा परिवार की आर्थिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय वातावरण संबंधी जानकारी प्राप्त की जा सकती है जैसे,

- किसी क्षेत्र विशेष में किस प्रकार का भोजन खाया जाता है।
- वहां का मुख्य भोजन एवं खान -पान की आदतें क्या हैं।
- परिवार या समूह कौन से भोज्य समूह से भोजन लेता है एवं किस समूह का उपयोग नहीं करता है आदि।

3. आहार सर्वेक्षण द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सकती है कि व्यक्ति प्रतिदिन अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार खाद्य पदार्थों को सेवन कर रहा है या नहीं। इसके अतिरिक्त वह मात्रा कितनी कम या ज्यादा है यह भी आहार सर्वेक्षण से ज्ञात हो सकता है।
4. आहार सर्वेक्षण से भोजन में पौष्टिक तत्वों की उपलब्ध मात्रा की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इससे भोजन में किसी विशेष पौष्टिक तत्व की कमी को आसानी से पता लगाया जा सकता है तथा तदानुसार उस कमी को ठीक करने हेतु उचित कदम उठाए जाते हैं।
5. आहार सर्वेक्षणों से उपलब्ध आंकड़े विभिन्न पोषाहार एवं स्वास्थ्य योजनाओं को बनाने में प्रयोग होते हैं।
6. आहार सर्वेक्षणों द्वारा सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न हुई बीमारियों का पता चलता है।

आहार सर्वेक्षण का वर्गीकरण

आहार सर्वेक्षणों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(1) गुणात्मक सर्वेक्षण (Qualitative survey): इस तरह के सर्वेक्षणों में खाद्य पदार्थों के नाम, व्यंजनों के नाम, अवसर जिनमें विशेष व्यंजन बनाये जाते हों आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। गुणात्मक सर्वेक्षण में विशिष्ट रूप से आहार में प्रयुक्त खाद्य पदार्थों के प्रकार, उनकी आवृत्ति, व्यक्ति/ समूह के खाद्य पदार्थों, भोजन पकाने आदि के विषय में ज्ञान का पता किया जाता है। इसी सर्वेक्षण से स्वास्थ्य एवं विभिन्न रोगों में उपयोग में लाए जाने वाले व्यंजनों तथा आहार की प्रथाओं के बारे में जानकारी एकत्रित की जाती है।

(2) मात्रात्मक सर्वेक्षण (Quantitative survey): इस प्रकार के सर्वेक्षणों में खाद्य पदार्थ विशेष की ग्रहण की गई मात्रा से संबन्धित जानकारी एकत्रित की जाती है। मात्रात्मक सर्वेक्षण में प्रयोग में लाए गये खाद्य पदार्थों की प्रतिदिन ग्रहण की गई मात्रा ग्राम या मिलीलीटर में मापी जाती है। इन खाद्य पदार्थों की मात्रा की गणना की जाती है। इसके लिए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आई.सी.एम.आर.) द्वारा जारी “भारतीय खाद्यान्नों के पोषणमान” में दी गई तालिकाओं की

मदद ली जाती है। फलस्वरूप सर्वेक्षण के आधार पर ग्रहण की गई पोषक तत्वों की मात्रा तय मात्रा (दैनिक अनुशंसित मात्रा) से कितनी कम या अधिक है इसका प्रतिशत ज्ञात कर सुधार करने का प्रयास किया जाता है।

आहार सर्वेक्षण के लिए विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। किस समय किस विधि का उपयोग करना है यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की पोषण सम्बन्धी जानकारी चाहिए।

आहार सर्वेक्षण की प्रमुख विधियां निम्न हैं:

- 24 घण्टे के आहार का स्मरण (24 hour dietary recall)
- आवृत्तित 24 घण्टे के आहार का स्मरण (Repeated 24 hour dietary recall)
- आहार की पूर्वस्थिति (Diet history)
- आहार आवृत्ति प्रश्नावली (Food frequency dietary recall)
- खाद्य तोल विधि (Food weighment method)

आइए इन सभी विधियों पर विस्तृत चर्चा करें।

1. 24 घण्टे के आहार का स्मरण

इस विधि में व्यक्ति या परिवार के सदस्य द्वारा पहले दिन ग्रहण किये गये भोजन का पूरा लेखा-जोखा लिया जाता है। व्यक्ति पिछले 24 घंटों में खाए गये आहार के बारे में स्मरण कर जानकारी देता है। छोटे बच्चों के संदर्भ में यह जानकारी उसकी माँ से ली जा सकती है।

इसमें सभी भोज्य पदार्थों एवं पेय पदार्थों का विस्तृत विवरण तथा भोजन पकाने की विधि भी नोट की जाती है। यदि किसी व्यक्ति ने कोई विटामिन अथवा खनिज लवण की गोली ली है तो वह भी दर्ज की जाती है। भोज्य सामग्री की मात्रा घरेलू नाप तोल में लिखी जाती है, जैसे एक कटोरी, 1/2 प्लेट आदि। यह जानकारी इंटरव्यू या प्रश्न सूची तैयार कर ली जा सकती है। यह विधि किसी प्रशिक्षत व्यक्ति द्वारा भोजन मापक यंत्रों का प्रयोग कर सम्पन्न की जाती है।

एक 24 घंटे के आहार का स्मरण व्यक्तिगत स्तर पर सामान्य आहार का प्रतिनिधि नहीं माना जाता है। परंतु यह विधि बड़े समूह सर्वेक्षण के औसत सेवन के आकलन के लिए पर्याप्त तथा उपयुक्त विधि है।

लाभ

- बड़े समूह या जनसंख्या का आहार सर्वेक्षण करने के लिए यह एक त्वरित तथा उत्तम विधि है।
- इस विधि का उपयोग अशिक्षित जनसंख्या पर भी किया जा सकता है।
- इसके लिए किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- यह आहार सर्वेक्षण की अन्य विधियों से अपेक्षाकृत सस्ती विधि है।

हानियाँ

- किसी एक व्यक्ति के आहार अंतर्ग्रहण को जानने के लिए इसका उपयोग उपयुक्त नहीं होता है।
- पिछले 24 घण्टे में ग्रहण किया गया आहार हमेशा के आहार का प्रतिनिधि नहीं होता है।
- यह विधि स्मरण पर आधारित है, इसलिए बच्चों एवं बूढ़ों के लिए यह विधि उचित नहीं है।
- भोजन की ग्रहण की गई सही मात्रा के आकलन में मुश्किल होती है। जैसे 2 रोटी का अर्थ 50 ग्राम आटा या 80 ग्राम आटा कुछ भी हो सकता है। इसी प्रकार तरी वाली सब्जियों में पानी की मात्रा भिन्न हो सकती है।
- इस विधि के लिए एक प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ता की आवश्यकता होती है।

2. आवृत्तित 24 घण्टे के आहार का स्मरण

भोज्य पदार्थ के लम्बे समय के औसत अंतर्ग्रहण के लिए 24 घण्टे के आहार का स्मरण विधि को दोहरा कर लिया जा सकता है। सटीक परिणामों के लिए इस विधि की आवृत्ति बढ़ायी जा सकती है। इस प्रकार 24 घण्टे के आहार के स्मरण विधि की जो भी कमियाँ हैं, आवृत्ति कर दूर की जा सकती है।

इस विधि को सप्ताह के हर दिन हर महीने में या अलग-अलग मौसम में दोहरा कर परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

इस विधि की कार्यप्रणाली 24 घण्टे के आहार के स्मरण विधि जैसी ही है। इस विधि का उपयोग किसी व्यक्ति के आहार अंतर्ग्रहण को मापने के लिए भी किया जा सकता है।

3. आहार की पूर्वस्थिति

जब आहार के सेवन के बारे में विस्तृत जानकारी की आवश्यकता हो तब इस पद्धति का उपयोग करना चाहिए। इस विधि में व्यक्ति की भोजन ग्रहण की लम्बे समय की आदतें, पसन्द, नापसन्द का अनुमान लगाने का प्रयास किया जाता है। यह एक साक्षात्कार पद्धति है जो आवश्यकतानुसार एक, दो या तीन चरणों में सम्पन्न होती है। आहार की पूर्वस्थिति विधि आमतौर पर मात्रात्मक से अधिक

गुणात्मक है। इसके द्वारा भोजन तैयार करने के तरीके और खाने की आदतों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

प्रथम चरण एक तरह से 24 घण्टे के आहार स्मरण पर आधारित होता है। इस चरण में पिछले 24 घण्टे में खाये गये पदार्थों के बारे में पूर्ण जानकारी ली जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि जहां 24 घण्टे के आहार की स्मरण विधि में खाये गये भोज्य पदार्थों की मात्रा बतानी होती है, इस विधि में सिर्फ यह बताना होता है कि क्या खाया है।

दूसरे चरण में एक खाद्य आवृत्ति प्रश्नावली/चैकलिस्ट का प्रयोग किया जाता है। इसमें खाद्य पदार्थों की एक विस्तृत सूची के साथ व्यक्ति से पूछा जाता है कि वह अमुक खाद्य पदार्थ खाते हैं या नहीं। यदि हाँ तो उसकी आवृत्ति कितनी है। व्यक्ति से उन खाद्य पदार्थों से सम्बन्धित पसन्द, नापसन्द, खरीददारी तथा उपयोग के संबंध में भी प्रश्न पूछे जाते हैं।

यदि आवश्यकता होती है तो तीसरे चरण में पिछले 3 दिनों के भोजन सेवन का रिकॉर्ड लिया जाता है। सामान्यतः तीसरा चरण छोड़ ही दिया जाता है।

लाभ

- इस विधि द्वारा भोजन संबंधी आदतें, पकाने की विधि, रुचिकर एवं अरुचिकर भोज्य पदार्थों की सूची, भोजन की मात्रा आदि पर व्यापक जानकारी प्राप्त की जा सकती है।
- किसी नये समाज विशेष की भोजन संबंधी विशेषता/स्थिति को ज्ञात करने हेतु यह विधि उपयुक्त है।
- यह विधि दीर्घकालिक आदतों को बेहतर रूप से दर्शाती है।
- इस विधि का उपयोग नैदानिक निदान (Clinical Diagnosis) में आवश्यक रूप से किया जाता है।

हानियां

- यह विधि बड़ी जनसंख्या के आहार सर्वेक्षण हेतु उपयोगी नहीं है।
- यह एक महँगी विधि है।
- तीनों चरणों द्वारा जानकारी लेने में काफी समय लगता है।
- प्राप्त जानकारी से निष्कर्ष निकालने में कठिनाई होती है।

4. खाद्य आवृत्ति प्रश्नावली

खाद्य आवृत्ति प्रश्नावली का प्रयोग खाद्य सेवन संबंधी गुणात्मक जानकारी प्राप्त करने हेतु किया जाता है। इसका उपयोग अभ्यस्त आहार का आकलन करने के लिए किया जाता है। इस विधि द्वारा खाद्य पदार्थों तथा पोषक तत्वों की मात्रा के बारे में जानकारी एकत्र करने पर बल नहीं दिया जाता है।

खाद्य आवृत्ति प्रश्नावली में दो घटक होते हैं।
क. खाद्य पदार्थों की सूची
ख. सूचीबद्ध खाद्य पदार्थों की आवृत्ति का प्रकार

खाद्य पदार्थों की सूची बनाते समय यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जिन व्यक्तियों पर इस विधि का उपयोग किया जा रहा है वह लोग उन खाद्य पदार्थों से परिचित हों। खाद्य पदार्थों की सूची में लगभग 20-200 खाद्य पदार्थ हो सकते हैं। सूचीबद्ध खाद्य पदार्थ किन्हीं विशेष पोषक तत्वों का प्रमुख स्रोत हो सकते हैं। जैसे यदि हम जानना चाहते हैं कि समुदाय में विटामिन ए का अंतर्ग्रहण उचित है या नहीं, तो सूची में विटामिन ए के स्रोत वाले खाद्य पदार्थ सूचीबद्ध करने चाहिए। इसके पश्चात् खाद्य पदार्थों या विशिष्ट खाद्य समूहों के अंतर्ग्रहण की आवृत्ति के विषय में पूछा जाता है। इसका आकलन यह पूछकर किया जाता है कि एक विशेष भोजन या पेय पदार्थ का सेवन दिन, हफ्ते, महीने में कितनी बार किया जाता है। इसके अन्तर्गत कभी नहीं या एक महीने में एक बार से कम या दिन में 2-3 या 4-5 बार आदि श्रेणियों में से एक को चुनना होता है।

लाभ

- इस विधि द्वारा मादक पेय पदार्थ, मांस, मछली या अन्य किसी विशिष्ट खाद्य पदार्थ की आवृत्ति का भी पता चल जाता है।
- इस विधि में कम समय लगता है।
- आहार में लिए गए खाद्य समूहों की जानकारी से पोषक तत्वों के सेवन का पता चल जाता है।
- प्राप्त आंकड़ों से निष्कर्ष निकालना अपेक्षाकृत आसान होता है।

हानियां

- इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम अन्य विधियों से कम सटीक होते हैं।
- यह विधि उत्तरदाता की स्मरण शक्ति पर निर्भर करती है।
- पोषक तत्वों की खपत का मात्र अनुमान लगाया जा सकता है।

5. खाद्य तोल विधि

आहार सर्वेक्षण की इस विधि में भोज्य पदार्थों का वास्तविक वजन तराजू से (ग्राम या किलोग्राम में) लेकर प्रारूप में भोज्य पदार्थ के सम्मुख सूचीबद्ध किया जाता है। भोज्य पदार्थों के वजन द्वारा आहार सर्वेक्षण की विधि में कच्चा एवं पका हुआ दोनों प्रकार के भोज्य पदार्थों को तोलकर पोषण स्तर की गणना हेतु प्रयोग में लाया जा सकता है।

परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के बारे में सामान्य जानकारी जैसे आयु, लिंग, क्रियाशीलता, विशेष अवस्था जैसे गर्भावस्था, धात्री अवस्था के बारे में जानकारी एकत्र कर ली जाती है। परिवार के बाहर का कोई व्यक्ति/सदस्य/ मेहमान जिस दिन और समय भोजन में सम्मलित हो रहे होते हैं उनकी भी जानकारी जहाँ तक संभव हो सके (आयु, लिंग, क्रियाशीलता, अवस्था आदि) लिख ली जाती है। इस विधि में सर्वेक्षण कर्ता को इस बात का विशेष ध्यान रखना चहिए कि सभी भोज्य पदार्थों का वजन उसे स्वयं ही करना चाहिए। इस विधि से प्रति व्यक्ति प्रतिदिन भोज्य पदार्थ की कितनी मात्रा ग्रहण कर रहा है, यह जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती है।

$$\text{भोज्य पदार्थ प्रति व्यक्ति प्रतिदिन} = \frac{\text{कच्चे भोज्य पदार्थ की मात्रा (ग्राम)}}{\text{व्यक्तियों की संख्या} \times \text{सर्वेक्षण की अवधि}}$$

परिवार में जहाँ छोटे बड़े सभी व्यक्तियों की आयु अलग-अलग होती है, सर्वेक्षण में प्रतिदिन प्रति भोज्य पदार्थ प्रति उपभोक्ता इकाई की गणना करना अधिक उपयुक्त होता है। प्रति व्यक्ति प्रति उपभोक्ता इकाई प्रतिदिन प्रति भोज्य पदार्थ की मात्रा ग्राम या मिली लीटर में ज्ञात कर लेने से आहार में पोषक तत्वों की मात्रा का ज्ञान हो जाता है।

उपभोक्ता इकाई: परिवार में सभी सदस्यों की आयु भिन्न-भिन्न होती है। अतः भोज्य पदार्थों की प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति औसत मात्रा उचित प्रतीत नहीं होती है। क्योंकि आयु, लिंग तथा क्रियाशीलता के अनुसार व्यक्ति की ऊर्जा की आवश्यकता, शरीर की वृद्धि, टूट-फूट एवं स्वास्थ्य को बनाए रखने हेतु ऊर्जा की आवश्यकता अलग-अलग है, इसलिए उपभोक्ता इकाई प्रति व्यक्ति, आयु, लिंग एवं क्रियाशीलता के अनुरूप निर्धारित की गई है।

		उपभोक्ता इकाई
वयस्क पुरुष	(साधारण क्रिया शील)	1.0
	(मध्यम क्रिया शील)	1.2
	(अधिक क्रिया शील)	1.6

वयस्क महिला	(साधारण क्रिया शील)	0.8
	(मध्यम क्रिया शील)	0.9
	(अधिक क्रिया शील)	1.2
किशोरावस्था	12-21 वर्ष	1.0
	9-12 वर्ष	0.8
	7-9 वर्ष	0.7
	5-7 वर्ष	0.6
	3-5 वर्ष	0.5
	1-3 वर्ष	0.4

शिशुओं को उपभोक्ता इकाई में सम्मलित नहीं किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. पोषण स्तर से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

2. पोषण स्तर किन उद्देश्यों से ज्ञात किया जाता है?

   ....

   ....

3. पोषण स्तर किन कारकों से प्रभावित होता है?

   ....

   ....

4. पोषण स्तर का आकलन किन विधियों द्वारा किया जाता है?

   ....

   ....

5. गुणात्मक सर्वेक्षण की क्या विशेषता है?

....

....

अगले भाग में हम पोषण सम्बन्धी मानवमितीय परीक्षण के विषय में जानेंगे।

2. पोषण सम्बन्धी मानवमितीय परीक्षण

शरीर में वृद्धि तथा विकास अनुवांशिकता पर आधारित होते हैं परन्तु आहार, पोषण, संक्रमण तथा रोग की अवस्था शरीर की वृद्धि दर एवं विकास को समय-समय पर अवरुद्ध कर सकते हैं। शारीरिक वृद्धि एवं विकास अवरुद्ध होने की स्थिति का प्रतिशत, प्रकार एवं देश या स्थान पर कुपोषण की व्यापकता जानने हेतु शरीर की वृद्धि के आधार पर पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है।

विभिन्न आयु और पोषण की स्थिति में मानव शरीर की माप को मानवमितीय परीक्षण कहते हैं। मानवमितीय परीक्षण इस विचारधारा के अन्तर्गत किये जाते हैं कि आहार एवं पोषक तत्वों के प्रभाव से शारीरिक परिवर्तन होते हैं जिसमें शरीर के ऊतकों के आकार/प्रकार में भी परिवर्तन आता है। फलस्वरूप शारीरिक नाप में परिवर्तन आता है, जिसको लम्बाई, वजन तथा परिधि के रूप में मापा जा सकता है।

मानवमितीय परीक्षण में शरीर का वजन, ऊँचाई, बाँह, कमर तथा नितम्बों की परिधि आदि लेकर मानक मापों से तुलना की जाती है। मानक मापों की विभिन्न तालिकाएं उपलब्ध हैं। सामान्य स्तर से कम अथवा अधिक नाप के आधार पर पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है।

मानवमितीय परीक्षणों के उददेश्यः

(1) पोषक तत्वों की कमी से प्रभावित समूह को पहचानना।

(2) कुपोषण के स्तर का अवलोकन करना।

(3) स्वास्थ्य सुधार कार्यक्रम हेतु कुपोषण से प्रभावित समुदाय का चयन करना।

(4) पोषण-स्तर सुधार कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना।

मानवमितीय माप से पोषण स्तर ज्ञात करने के लिए कुछ बातों को ध्यान में रखना चाहिए। यदि बच्चों के लिए यह माप लिए जा रहे हैं तो विशेष रूप से यह ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों की निश्चित आयु क्या है। शारीरिक विकास का स्तर तथा मुँह में दाँतों की संख्या द्वारा भी आयु का

अनुमान लगा लिया जाता है। स्कूल जाने वाले बालकों की आयु का अनुमान वर्ष के हिसाब से लगाया जा सकता है। दूध के दांत गिरना शुरु होते समय भी आयु का अनुमान लगाया जाता है।

अन्य ध्यान देने योग्य विषय हैं, नापने हेतु उचित उपकरण या साधन। जैसे वजन नापने के लिए उचित मशीन या तराजु, लम्बाई के लिए उचित एवं सटीक स्केल, फीता या रॉड आदि। सभी उपकरण संवेदनशील तथा विश्वसनीय होने चाहिए।

अन्य महत्वपूर्ण विषय है तुलना के लिए उचित सामान्य माप या मानक। मानकों द्वारा प्राप्त आंकड़ों से तुलना करके ही पोषण स्तर का निर्धारण किया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुमोदित स्वास्थ्य सांख्यिकी राष्ट्रीय केन्द्र के मानक, वजन एवं लम्बाई की तुलना करने के लिए उपयोग किये जाते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अन्य मानक भी जारी किये गये हैं। इनके उपयोग द्वारा भी पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है।

पोषण स्तर ज्ञात करने हेतु निम्नलिखित मानवमितीय माप उपयोग में लाए जाते हैं:

1. वजन
2. लम्बाई
3. सिर का घेरा (परिधि)
4. ऊपरी बांह के मध्य भाग का घेरा
5. छाती का घेरा
6. त्वचा में वसा की मोटाई को नापना
7. कमर तथा नितम्ब का अनुपात

1. वजन

पोषण स्तर के आकलन में वजन सबसे सरल एवं महत्वपूर्ण माप है। यह सर्वाधिक प्रयोग किया जाने वाला माप है। शरीर का वजन शरीर की वृद्धि एवं विकास का प्रतीक है। वजन नापने के लिए तोलने वाली मशीन प्रयोग में लायी जाती है। आजकल बाजार में विभिन्न प्रकार की वजन नापने की मशीनें उपलब्ध हैं। दो साल से कम उम्र के बच्चों का वजन नापने के लिए स्प्रिंग बैलेंस या सालटर स्केल का प्रयोग किया जाता है। यह मशीन काफी सटीक होती है तथा 100 ग्राम तक के वजन को नाप सकती है। यदि इस प्रकार की मशीन उपलब्ध न हो तो साधारण मशीन पर ही माँ एवं बच्चे दोनों का वजन माप लेते हैं। इसके पश्चात सिर्फ माँ का वजन माप कर पहले वजन से घटा लेते हैं।

वजन लेते समय निम्न बातों का सावधानीपूर्वक ध्यान रखना चाहिएः

1. वजन नापने की मशीन सही वजन नापती हो।
2. जिसका वजन नापना हो, उस व्यक्ति ने कम से कम कपड़े पहने हुए हों तथा जूते चप्पल न पहने हों ।
3. वह व्यक्ति सीधा खड़ा हुआ हो, किसी दीवार, व्यक्ति या मेज का सहारा लेकर न खड़ा हो।
4. वजन करने से 10-15 मिनट पहले उसने कोई पेय पदार्थ न लिया हो।
5. सभी माप को उचित प्रकार से दर्ज करने के पश्चात प्राप्त माप को मानक से तुलना कर निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए।

2. लम्बाई

सामान्यतः लम्बाई का सम्बन्ध अनुवांशिक एवं वातावरण से माना जाता है। उचित पोषण की स्थिति में लंबाई विकसित होती है। पोषण स्तर पर लम्बाई का प्रभाव केवल बच्चों के विकास की अवधि में ही दिखाई देता है। दो वर्ष से बड़े बच्चों एवं वयस्कों की लम्बाई सीधे खड़ा करके नापी जाती है। इसके लिए एक सीधी रॉड जिसे एन्थ्रोपोमीटर कहते हैं, का प्रयोग किया जाता है। दो वर्ष के कम उम्र के बच्चे जो खड़े नहीं हो सकते, उनको लेटा कर इन्फेंटोमीटर से लम्बाई नापी जाती है। लम्बाई नापते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

1. लम्बाई नापने वाले व्यक्ति को लम्बाई नापने के उपकरण की सम्पूर्ण जानकारी हो तथा उसे उपकरण को भली-भांति प्रयोग करना आता हो।
2. जिस व्यक्ति की लम्बाई नापनी हो, उसने पाँव में जूते, चप्पल तथा सिर पर टोपी, पगड़ी या अन्य कोई कपड़ा न रखा हो।
3. व्यक्ति को समतल फर्श पर दीवार या रॉड के साथ एकदम सीधे खड़े होकर दोनों पैरों को समान्तर रखकर तथा एड़ी, नितंब, कन्धों तथा सिर के पिछले भाग को दीवार से सटाकर खड़े होकर लम्बाई नपवानी चाहिए।
4. लम्बाई नापते समय व्यक्ति को क्षितिज के समान्तर देखना चाहिए।
5. माप को सही एवं सटीक तरीके से नापना एवं दर्ज करना चाहिए। इसके पश्चात आंकड़ों की तुलना मानकों से करनी चाहिए।

3. सिर का घेरा

सिर का घेरा मस्तिष्क के आकार से संबंधित होता है। सिर का घेरा नापने हेतु फायबर ग्लास टेप (फीता) जो कि 0.6 से0मी0 चौड़ा हो, का प्रयोग उत्तम रहता है। सिर का घेरा आंख के ऊपर से माथे पर तथा सिर के पीछे से अधिकतम उभरे भाग के ऊपर से नापकर रिकॉर्ड किया जाता है। शिशुओं के प्रथम दो वर्ष तक सिर का घेरा बढ़ता है क्योंकि इसी समय मस्तिष्क में तेजी से वृद्धि होती है। दो वर्ष की आयु के पश्चात सिर के घेरे का नाप उतना महत्वपूर्ण नहीं रह जाता है।

4. ऊपरी बांह के मध्य भाग का घेरा

ऊपरी बांह के मध्य भाग का घेरा नापने से मांसपेशियों के विकास के बारे जानकारी प्राप्त होती है। 1-5 वर्ष तक के बच्चों में पोषण स्तर के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए यह माप अत्यन्त उपयोगी है।

5. ऊपरी बांह के मध्य भाग को पहचानना

इस माप के लिए सर्वप्रथम बांह के मध्य भाग को सही तरीके से पहचानना चाहिए। इसके लिए प्रयोग जाने वाला फीता 7 से 12 सें0मी0 चौड़ा होना चाहिए तथा किसी फाइबर ग्लास का बना होना चाहिए। टेप या फीता रबड़ की तरह खिंचने वाला नहीं होना चाहिए। मध्य भाग जानने के लिए बायीं भुजा की कन्धे की हड्डी से लेकर कोहनी की हड्डी तक की लम्बाई मापी जाती है। इस लम्बाई का आधा कर दो भाग देकर ऊपरी बांह के मध्य भाग को पहचाना जा सकता है। इस स्थान पर किसी पेन से हलका निशान बना लेना चाहिए। इसके बाद ऊपरी बांह के मध्य भाग के घेरे को बनाए गये निशान के चारों तरफ फीता या टेप लगा कर नापा जाता है।

इसके लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

1. नाप लेते समय बच्चे को अपना बायां हाथ ढीला रखना चाहिए।
2. टेप या फीते को बांह के मध्य भाग, जो कि पहले से पहचान कर चिन्हित किया गया है, पर रख कर नाप लेना चाहिए।
3. सभी माप 0.1 सेमी तक की शुद्धता को नाप लेने वाले होने चाहिए।
4. उसके पश्चात प्राप्त आंकड़ों की तुलना मानकों से करके निष्कर्ष निकालना चाहिए।

6. छाती का घेरा

आयु के दूसरे व तीसरे वर्ष में छाती या सीने का घेरा नापने से पोषण स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। छाती का घेरा स्तनाग्र रेखा के ऊपर से पीछे पीठ पर ले जाकर श्वसन की मध्यम अवस्था में रिकॉर्ड करना चाहिए।

7. त्वचा में वसा की मोटाई का माप (स्किन फोल्ड मोटाई)

शरीर में त्वचा के नीचे संग्रहित वसा को माप कर भी पोषण स्तर ज्ञात किया जा सकता है। त्वचा में उपस्थित वसा की मोटाई को हारपेनडेन कैलीपर्स या लैंज कैलीपर्स या होटेन कैलीपर्स के प्रयोग से नापा जाता है।

त्वचा में जमी वसा की मोटाई मापने के लिए सबसे उपयुक्त स्थान त्रिशिस्का पेशी (Triceps Skinfold) है। यह बांह के ऊपरी भाग में उसी स्थान पर उपस्थित होती है जहां बांह का घेरा नापा जाता है। बांह के घेरे वाले स्थान पर अंगूठे एवं तर्जनी से त्वचा पकड़कर तथा थोड़ा-सा खींच कर लगभग 1 सें0मी0 की दूरी पर उस मोटाई को कैलीपर्स द्वारा नापा जाता है एवं रिकॉर्ड किया जाता है। वसा की मात्रा पीठ की हड्डी के नीचे (Subscapular Skinfold) एवं रीढ़ की हड्डी के बाईं या दाईं ओर भी मापी जा सकती है। इस स्थान पर भी कैलीपर्स का वैसे ही प्रयोग करते हैं जैसे ऊपर वर्णन किया गया है। त्वचा में जमी वसा को नापने के लिए वजन और लम्बाई मापने की तुलना में अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

7. कमर तथा नितम्ब का अनुपात

कमर तथा नितम्ब की परिधि के अनुपात को ज्ञात कर हम उस व्यक्ति के स्वास्थ्य का आकलन कर सकते हैं। यह अनुपात कमर की परिधि को नितंब की परिधि से विभाजित कर मापा जाता है। यह अनुपात मुख्यत: शरीर में वसा वितरण तथा मोटापे का संकेत है। महिलाओं में 0.8 से अधिक तथा पुरुषों में 1.0 से अधिक का कमर-नितंब का अनुपात मोटापे, हृदय रोग तथा मधुमेह विकसित होने के खतरे को दर्शाता है।

उपरोक्त सभी विधियों द्वारा पोषण स्तर ज्ञात किया जा सकता है। बड़े सर्वेक्षणों में सभी विधियों का उपयोग नहीं किया जा सकता है। पोषण स्तर ज्ञात करने के लिए मानवमितीय विधि का चुनाव समय, आयु वर्ग, व्यक्तियों की संख्या आदि पर निर्भर करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा मानवमितीय परीक्षण की निम्न विधियों को पोषण स्तर निर्धारण हेतु अलग-अलग आयु के लिए उपयुक्त माना गया है। जैसेः

0-1 वर्ष	वजन, ऊँचाई
1-5 वर्ष	वजन, ऊँचाई, सिर और का छाती घेरा, बांह का घेरा
5-20 वर्ष	वजन, ऊँचाई, त्वचा में वसा का जमाव

20 से अधिक वजन, ऊँचाई, त्वचा में वसा का जमाव

मानवमितीय परीक्षणों से बच्चों/वयस्कों के समूह का पोषण स्तर निर्धारण करने के लिए कम से कम तीन प्रकार के नाप एक साथ लेकर गणना करनी चाहिए।

पोषण स्तर का वर्गीकरण

पांच वर्ष तक के बच्चों के लिए वजन, लम्बाई एवं ऊपरी बांह के मध्य भाग का घेरा पोषण स्तर ज्ञात करने के लिए उपयुक्त एवं सटीक नाप माने जाते हैं। इन नापों के आधार पर पोषण स्तर को वर्गीकृत करने के लिए कई विधियां अपनायी गयी हैं। आइए इनका अध्ययन करें।

1. आयु के अनुरूप वजन

वजन के अनुसार बच्चों की पोषण की विभिन्न श्रेणियों में रखने के लिए अलग मानक दिये गये है। इनमें सबसे प्रचलित गोमेज वर्गीकरण (1956) है। इस वर्गीकरण में कुपोषण का स्तर बालकों की आयु के लिए वजन के प्रतिशत पर आधारित होता है। इसमें एन.सी.एच.एस. के आंकड़ों के मानक के रूप में प्रयोग किया जाता है। मानक का प्रतिशत, वर्गीकरण का आधार बनता है।

तालिका 2.1: गोमेज वर्गीकरण

मानक का प्रतिशत	कुपोषण की श्रेणी
60 से कम प्रतिशत	तृतीय श्रेणी कुपोषण
60-65 प्रतिशत	द्वितीय श्रेणी कुपोषण
75-90 प्रतिशत	प्रथम श्रेणी कुपोषण
90 से ज्यादा प्रतिशत	सामान्य/उचित पोषण

तालिका 2.2: इंडियन एकेडेमी आफ पिडीट्रीशीयन्स (1972) के वर्गीकरण के अनुसार

मानक का प्रतिशत	कुपोषण की श्रेणी
50 से कम प्रतिशत	अति गंभीर कुपोषण
51-60 प्रतिशत	गंभीर कुपोषण
61-70 प्रतिशत	मध्यम कुपोषण
71-80 प्रतिशत	कम पोषण
80 से अधिक प्रतिशत	सामान्य पोषण

उदाहरण

यदि किसी बालक की उम्र चार वर्ष है तथा उसका वजन 12 किलो ग्राम है तो उसका पोषण स्तर कैसा है, आइए जानें।

वजन = 12 किलो

मानक वजन = 16.5 किलो

$$\text{प्रतिशत} = \frac{12 \times 100}{16.5} = 72.2 \text{ प्रतिशत}$$

इस बालक को गोमेज वर्गीकरण के अनुसार द्वितीय श्रेणी कुपोषण में वर्गीकृत करेंगे। आयु के अनुरूप वजन कम वजन वाले बालकों की वृद्धि निगरानी के लिए उचित सूचकांक है।

2. आयु के अनुरूप लम्बाई

आयु के अनुरूप लम्बाई दीर्घकालीन कुपोषण मापने का सूचकांक है। प्राप्त लम्बाई की मानक से तुलना करके हम ज्ञात कर सकते हैं कि बच्चा सामान्य रूप से बढ़ रहा है या नहीं। लम्बाई अल्पकालिक कुपोषण को नहीं दर्शाती है। आयु के अनुरूप लम्बाई बौनेपन को मापती है। बौने बच्चों की मानसिक एवं शारीरिक कार्यक्षमता कम होती है।

3. लम्बाई के अनुरूप वजन

आयु के अनुरूप वजन के अनुसार वर्गीकरण में लम्बाई से प्रभावित वजन को ध्यान में नहीं रखा जाता है। एक ही आयु के स्वस्थ बच्चों की लम्बाई कम या अधिक हो सकती है जिसका सीधा असर वजन पर पड़ता है। अतः आयु के लिए औसत वजन को ऊँचाई के साथ सम्बन्धित करना उचित रहता है। आयु संबंधी सही जानकारी न होने पर यह सूचकांक पोषण स्तर निर्धारण में अधिक उपयोगी है क्योंकि यह आयु पर निर्भर नहीं है। जब किसी बच्चे का वजन लम्बाई के अनुरूप न हो या मानक वजन से कम हो तो उसे क्षीणता कहते हैं। ऐसे बच्चों में मांसपेशियों की कमी पायी जाती है। लम्बाई के अनुरूप वजन का निर्धारित मात्रा से 80 प्रतिशत वजन कम होने पर ऐसे बच्चों को तीव्र कुपोषण की श्रेणी में रखा जाता है जिसे वेस्टिंग डिजीज (wasting disease) कहते हैं।

वाटर लो द्वारा क्षीणता एवं बौनापन वर्गीकृत करने के लिए लम्बाई के अनुरूप वजन तथा आयु के अनुरूप लम्बाई दोनों सूचकांकों का प्रयोग किया गया है। वाटर लो के अनुसार वर्गीकरण तालिका 2.3 में दिया जा रहा है।

तालिका 2.3: कुपोषण का वाटर लो वर्गीकरण

बौनापन (%) **आयु के अनुरूप लम्बाई**	**क्षीणता (%)** **लम्बाई के अनुरूप वजन**	**कुपोषण की श्रेणी**
सामान्य (ग्रेड:0)	>95%	>90%
कम (ग्रेड: I)	87.5-95%	80-90%
मध्यम (ग्रेड: II)	80-87.5%	70-80%
गंभीर (ग्रेड: III)	<80%	<70%

$$\text{प्रतिशत लम्बाई के अनुरूप वजन} = \frac{\text{बच्चे का वजन}}{\text{मानक वजन (उसी लम्बाई के लिए)}} \times 100$$

$$\text{प्रतिशत आयु के अनुरूप लम्बाई} = \frac{\text{बच्चे की लम्बाई}}{\text{मानक लम्बाई (उसी आयु के लिए)}} \times 100$$

उपरोक्त चर्चा में वर्णित सभी विधियां मानकों के प्रतिशत पर आधारित हैं।

वयस्कों के लिए

शरीर में वसा की मात्रा जानने हेतु शरीर द्रव्यमान सूचकांक/बॉडी मास इन्डेक्स (बी.एम.आई.) उपयुक्त साधन है। इसकी गणना के लिए निम्नलिखित सूत्र का उपयोग किया जाता है:

$$\text{शरीर द्रव्यमान सूचकांक} = \frac{\text{वजन (किलोग्राम)}}{\text{लम्बाई (मीटर}^2\text{)}}$$

तालिका 2.4 में शरीर द्रव्यमान सूचकांक के वर्गीकरण द्वारा पोषण स्तर की विभिन्न श्रेणियों को दर्शाया गया है।

पोषण स्तर वर्गीकरण	**शरीर द्रव्यमान सूचकांक (किलोग्राम/मीटर^2)**
अल्पभार	<18.5
सामान्य	18.5-24.9
कम मोटापा/अतिभार	25-29.9
मोटापा (ग्रेड: I)	30-34.9
मोटापा (ग्रेड: II)	35-39.9
मोटापा (ग्रेड: III)	≥40

निम्न तालिका हमें विभिन्न पोषण स्तरों में विभिन्न सूचकांकों के वर्गीकरण के बारे में बताती है।

तालिका 2.5: पोषण स्तर के सूचकांक

पोषण स्तर	**आयु के अनुरूप लम्बाई**	**आयु के अनुरूप वजन**	**लम्बाई के अनुरूप वजन**
सामान्य	सामान्य	सामान्य	सामान्य
दीर्घकालीन कुपोषण (Chronic undernutrition)	कम	कम	सामान्य
वर्तमान कम अवधि तीव्र कुपोषण (Acute undernutrition)	सामान्य	कम	कम
वर्तमान तथा पूर्व कुपोषण	कम	कम	कम

शरीर में वसा रहित द्रव्यमान जानने हेतु आयु के अनुरूप ऊपरी मध्य बाँह का घेरा एक सटीक सूचकांक है। यह बच्चों एवं गर्भवती स्त्रियों का पोषण स्तर ज्ञात करने के लिए उपयोगी है।

तालिका 2.6 आयु के अनुरूप ऊपरी मध्य बांह का घेरा

लक्षित समूह	**मध्य बाँह के घेरे का नाप (सें.मी.)**	**पोषण स्तर**
पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चे	>12.5	सामान्य
	≥11.5-<12.5	मध्यम श्रेणी का तीव्र कुपोषण
	<11.5	गम्भीर श्रेणी का तीव्र कुपोषण
गर्भवती स्त्री	17-21	मध्यम कुपोषण
	<17	गम्भीर कुपोषण

पोषण सत्र ज्ञात करने हेतु नैदानिक लक्षणों के परीक्षण के बारे में जानने से पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए।

a. मानवमितीय माप

....

b. गोमेज वर्गीकरण

....

c. वाटर लो वर्गीकरण

....

d. बौनापन

....

e. क्षीणता

....

3. नैदानिक लक्षणों का परीक्षण (Clinical trial)

नैदानिक लक्षणों के परीक्षण की सामान्य विधि में सामान्य चिकित्सकीय इतिहास एवं भौतिक लक्षणों की जांच द्वारा पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है। इन आकलन प्रक्रियाओं का उपयोग सामान्य रूप से समुदाय पोषण सर्वेक्षण और नैदानिक चिकित्सा में किया जाता है। यह विधि पोषक तत्वों में कमी के कारण उत्पन्न लक्षणों को पहचानने के लिए उत्तम है। अविशिष्ट लक्षणों की उपस्थिति में पोषण स्तर का आकलन मानवमितीय माप, आहार सर्वेक्षण एवं जांच परीक्षण द्वारा करके ही पुष्टि करनी चाहिए।

चिकित्सकीय इतिहास (Medical history)

चिकित्सकीय इतिहास जानने के लिए व्यक्ति से साक्षात्कार करके पूछा जा सकता है अथवा चिकित्सकीय रिकॉर्ड उपयोग में लाए जा सकते हैं। पोषण स्तर आकलन में इस विधि का उपयोग केवल अस्पताल रोगियों तक ही सीमित है।

भौतिक लक्षणों की जांच

पोषण स्तर को ज्ञात करने के लिए शरीर के विभिन्न भागों में उत्पन्न लक्षणों/चिन्हों की जांच की जाती है। जेलिफ (1966) के अनुसार कुपोषण के कारण शरीर के विभिन्न भाग जैसे त्वचा, आँखों,

बाल, होंठ, जीभ, दाँत, थायराइड ग्रंथि आदि में परिवर्तनों की जांच कर पोषण स्तर ज्ञात किया जा सकता है।

इस विधि के उपयोग के लिए जाँचकर्ता को विभिन्न पोषणहीनता रोगों के नैदानिक लक्षणों और चिन्हों की उपयुक्त जानकारी होनी चाहिए तथा इनको पहचानने की कुशलता होनी आवश्यक है। शारीरिक लक्षण जैसे चिड़चिड़ापन, थकान, पीली आंखें, बढ़ी हुयी थायराइड ग्रन्थि आदि कुपोषण के लक्षण हैं। समुदाय में पोषण स्तर जानने के लिए इस प्रकार लक्षणों को रिकॉर्ड में रखना लाभप्रद रहता है।

कुछ नैदानिक लक्षणों की पहचान व परिभाषा

नैदानिक लक्षणों का उपयोग किसी विशेष पोषक तत्व की कमी को ज्ञात करने के लिए किया जाता है। इस दिशा में कुशलता प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम यह जानना जरुरी है कि कौन-कौन से लक्षणों की जांच करनी चाहिए तथा लक्षणों को कैसे पहचानना चाहिए। इस तरह के परीक्षणों में लक्षणों/चिन्हों की उपस्थिति को देखने के लिए उचित प्रकाश में व्यक्ति की सम्पूर्ण जाँच की जाती है, जिनका विवरण निम्नलिखित है:

- **बाह्य आकृति एवं व्यवहार**

कम वजन: लम्बाई के अनुरूप मानक वजन से 10 प्रतिशत वजन कम होना।

कम लम्बाई: आयु के अनुरूप मानक लम्बाई से कम होना।

जल्दी थकान: थोड़ा सा कार्य करने पर जल्दी थक जाना।

सुस्त: किसी भी कार्य को करने का मन न होना।

चिड़चिड़ापन: जल्दी गुस्सा करना, असहनशीलता।

अनिद्रा: नींद न आना या कम सोना।

- **बाल**

पतले और अपर्याप्त: बालों का व्यास कम होना, सिर पर बालों का इतना कम होना कि सिर की त्वचा दिखाई दे। रूखे, भंगुर, शुष्क तथा जल्दी टूटने वाले बाल ।

चमकहीन: फीके चमकहीन बाल।

डिस्पिगमेंन्टेशन (dyspigmentation): बालों के रंग में परिवर्तन।

- **मुख**

त्वचा का डिस्पिगमेंन्टेशन (dyspigmentation): चेहरे की त्वचा के रंग में परिवर्तन एवं जगह-जगह सफेद धब्बे।

नाक से स्राव: नाक के पास स्लेटी, पीला, चिपचिपा पदार्थ स्रावित होता है।

चन्द्राकार मुख: चेहरा फूला हुआ व गाल लटके हुए।

- **आंखें**

पीला कंजक्टिवा: कंजक्टिवा का रंग सामान्य न रहना।

कंजक्टिवल जिरोसिस (Conjunctival Xerosis): कंजक्टिवा मटमैला एवं झुरियां से युक्त। यह काफी शुष्क बन जाता है।

कोरनियल जिरोसिस (Corneal Xerosis): यह अवस्था कोरनिया के सूखेपन को बताती है।

बिटॉट बिन्दु (Bitot Spot): ये नेत्र श्लेष्मा पर स्लेटी रंग के त्रिकोण, फेन युक्त थक्के होते हैं।

किरेटोमलेशिया (Keratomalacia): इसमें कोरनिया की सम्पूर्ण स्थ्लता दिखती है। इससे आंख की पुतली नष्ट हो सकती है।

- **होंठ**

कोणीय मुखपाक (Angular Stomatitis): मुख के दोनों कोने फट जाते हैं।

चिलोसिस (Cheilosis): होठों का फटना, सूजना, लाल होना, विशेषतः निचला होंठ।

- **जीभ**

पीली: जीभ का रंग सामान्य न होना। उस पर परत जमना।

एडीमा/सूजन: जीभ में सूजन जो दातों के निशान से पहचानी जा सकती है।

ग्लोसाइटिस: जीभ में दर्द, जीभ गहरे लाल रंग की हो जाती है।

मैजेण्टा जीभ: जीभ का रंग बैंगनी होना। जीभ का सपाट तथा चमकदार होना।

- **दांत**

सड़न: दांतों में सड़न या दांतों का क्षय।

मोटल्ड इनैमल (Mottled Enamel): दांतों पर सफेद या भूरे धब्बे, ऊपर के दांतों में छेद।

- **मसूड़े**

स्पंजी एवं स्रावी: मसूड़े लाल, बैंगनी व फूले हुए हो जाते हैं। उनसे रक्त बहता है तथा सूजन आ जाती है। थोड़ा सा दबाने से ही रक्त बहने लगता है।

- **त्वचा**

जिरोसिस (Xerosis): शरीर की त्वचा में अत्यधिक सूखापन।

फॉलीक्यूलर हाइपर किरेटोसिस (Follicular Hyperkeratosis): शरीर पर बालों की जड़ों में छोटे-छोटे खूँटेदार दाने।

डर्मेटाइटिस (Dermatitis): त्वचा पर धूप पड़ने वाले हिस्सों का रंग गहरा हो जाता है। त्वचा लाल एवं दानेदार हो जाती है।

पीचीया (Petechiae): शरीर पर जगह-जगह छोटे-छोटे चोट के जैसे नीले निशान।

- **नाखून**

भंगुर: जल्दी टूटने वाले नाखून।

धारीदार: नाखूनों पर उभरी खड़ी धारियाँ।

पीलापन: नाखूनों का जड़ों के पास से पीलापन।

कोइलोनाकिया (Koilonychia): पतले नाखून जो बीच से दब कर चम्मचनुमा हो जाते हैं।

- **मांसपेशियां**

क्षीणता: मांसपेशियों की कमी, कमजोरी, पतला शरीर।

- **हड्डियां**

धनुजंघा (Bowlegs): टांगे कमजोर होकर धनुषाकार हो जाती हैं। घुटनों के बीच जगह बढ़ जाती है।

नॉक नी (Knock knee): घुटने असामान्य रूप से पास-पास हो जाते हैं या मिल जाते हैं जबकि टखने काफी दूर-दूर होते हैं।

पसलियों का मणिमय (Rachitic rosary): पसलियों की उपस्थियों पर माला के दाने के रूप में उभार निकलना।

कबूतर छाती (Pigeon chest): छाती में विकृति जिसमें छाती की हड्डी बाहर निकल आती है।

अधिवर्धी अन्त्यों का चौड़ापन (Epiphyseal enlargement): लम्बी हड्डियों के सिरे चौड़ होने लगते हैं।

करोटि अन्तरालों के बन्द होने में विलम्ब: मष्तिष्क की हड्डियां 18 महीने तक खुली रहती हैं। इससे खोपड़ी का अगला भाग बाहर उभर आता है।

- **ग्रन्थि**

थाइराइड ग्रन्थि का बढ़ना: बढ़ी हुयी ग्रन्थि दिखाई देती है।

- **सबक्यूटेनियस ऊतक**

एडीमा: पैरों एवं एड़ी के आसपास पानी जमा होने के कारण सूजन। दबा कर देखने से पता चलता है।

सबक्यूटेनियस वसा: त्वचा के नीचे अत्यधिक वसा का जमाव।

नैदानिक लक्षणों की पहचान विधि को शुरु करने से पूर्व एक प्रारूप बना लेना चाहिए। उस प्रारूप में शरीर के सभी हिस्सों की जानकारी प्राप्त करने वाला विवरण होता है। प्रारूप में परीक्षण करने के पश्चात उचित चिन्ह अंकित किया जाता है। बच्चों में परीक्षण के दौरान कोई भी लक्षण उपस्थित न होने पर उनकी गिनती सामान्य श्रेणी/स्वस्थ श्रेणी के बालकों में की जाती है।

पोषण स्तर ज्ञात करने हेतु एकीकरण के आधार पर प्रत्येक कमी के प्रभाव के लक्षण को भोज्य तत्व के साथ संबंधित किया जाता है।

परीक्षण में लक्षणों के साथ भोज्य तत्वों की कमी का सम्बन्ध

नैदानिक लक्षणों के परीक्षण, पहचान, आकलन के पश्चात पोषक तत्व की कमी या अधिकता से उत्पन्न लक्षणों में सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इसके लिए पोषक तत्वों एवं उनसे जुड़े रोगों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए।

अपर्याप्त पोषण

लक्षण: आलस्य, सुस्ती, अशक्तता, क्षीणता, थकान, लम्बाई के अनुरूप वजन में कमी, रूखी-सूखी त्वचा, मांसपेशियों की कमी।

तीव्र कुपोषण

लक्षण: वजन में अत्यधिक कमी, एडिमा/सूजन, अत्यधिक कमजोर हाथ पैर, पतले चमकहीन एवं भंगुर बाल ।

आइए कुछ पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न विभिन्न नैदानिक लक्षणों के बारे में जानें।

विटामिन ए की कमी

- सूजी हुई आंखें
- कॉर्निया पर सफेद या भूरे रंग के दाग
- कन्जेक्टाइवा का पीला होना
- कन्जेक्टाइवा पर चुभन
- त्वचा का सूखापन
- बिटॉट स्पॉट
- किरेटोमलेशिया

विटामिन बी 1 (थायमिन) की कमी

- मांसपेशियों में कमजोरी
- एडिमा/सूजन
- संवेदना में परिवर्तन
- एड़ी तथा घुटने के हिलने में कमी

विटामिन बी 2 (राइबोफ्लेविन) की कमी

- कोणीय मुखपाक, होठों के मध्य दरार/घाव
- जीभ का बैंगनी रंग का होना
- मांसपेशियों का क्षय
- वजन में कमी
- बालों के रंग में परिवर्तन
- बालों का आसानी से टूटना
- पतले/बहुत कम बाल

नायसिन की कमी

- हाथ की त्वचा में परिवर्तन

- जीभ का बैंगनी रंग का होना
- अतिसार
- डरमैटाइटिस/रूखी त्वचा

विटामिन सी (एस्कार्बिक एसिड) की कमी

- मसूड़े सूज जाना
- मसूड़े मुलायम होना
- मसूड़ों से रक्त आना

कैल्शियम/विटामिन डी की कमी

- सिर का बाहर निकल आना
- घुटनों का धनुषाकार होना
- घुटनों का आपस में टकराना
- पसलियों का बाहर की तरफ निकला दिखाई देना
- अस्थि विकृति

उपरोक्त सभी लक्षणों को पोषक तत्वों से मिलान कर व्यक्ति का पोषण स्तर ज्ञात किया जा सकता है।

नैदानिक लक्षण परीक्षण के लाभ

यह विधि सरल एवं अल्पव्ययी है। इसको प्रयोग करने में समय कम लगता है। इस विधि से प्राप्त आंकड़े जल्द ही परिणाम प्रदान कर देते हैं। अन्य विधियों की अपेक्षा यह कम खर्चीली है।

नैदानिक लक्षण परीक्षण विधि की कमियाँ

यह बहुत सटीक विधि नहीं हैं। इससे प्राप्त आंकड़े कार्य करने वाले व्यक्ति की दक्षता पर निर्भर रहते हैं। इस विधि को प्रयोग करने से पहले उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कई भोज्य तत्वों की कमी से मिलते जुलते लक्षण दिखाई देते हैं जिससे वास्तविक भोज्य तत्व के स्थान पर अन्य भोज्य तत्व को कारण माना जा सकता है। जैसे ग्लोसाइटिस (Glossitis) शरीर में नायसिन एवं विटामिन बी2 दोनों की कमी से होता है।

इस विधि के प्रयोग से बीमारी या रोग की प्रारम्भिक अवस्था का ज्ञान नहीं हो पाता है। इस विधि में चाहे कितनी भी कमियाँ हों, परन्तु इसके उपयोग से प्राप्त आंकड़े पोषण स्तर ज्ञात करने में मदद करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. नैदानिक लक्षणों से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

2. जिरोसिस किसे कहते हैं?

   ....

   ....

3. विटामिन सी की कमी की पहचान कैसे करते हैं?

   ....

   ....

2.4 सारांश

किसी समुदाय में पोषण सर्वेक्षण करने से समुदाय में विशेष रूप से अतिसंवेदनशील वर्ग जैसे शिशुओं, स्कूल पूर्व बच्चों, गर्भवती स्त्रियों तथा दूध पिलाने वाली माताओं में व्याप्त पोषण समस्या के विषय में उपयुक्त जानकारी मिल सकती है। पौषण सर्वेक्षण से पोषण स्तर की प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त होती है।

प्रत्यक्ष पोषण सर्वेक्षण के लिए आहार सर्वेक्षण, मानवमितीय परीक्षण तथा नैदानिक लक्षण परीक्षण जैसी विधियां प्रयोग में लायी जाती हैं।

आहार सर्वेक्षण से एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण करके अनाज, दालों, सब्जियों, फलों, दूध, अण्डों, मछली तथा मांस आदि का भोजन के रूप में औसत अन्तर्ग्रहण ज्ञात किया जाता है। प्राप्त आंकड़ों से ऊर्जा, प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन तथा खनिज लवणों का औसत अन्तर्ग्रहण ज्ञात किया जाता है। इससे पोषक तत्वों की कमी या असंतुलन के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है।

मानवमितीय माप से पोषण स्तर ज्ञात किया जा सकता है। इस विधि के अंतर्गत शरीर की लम्बाई, वजन, सिर, छाती एवं बांह की परिधि, त्वचा की परत की मोटाई जैसे शारीरिक नाप का प्रयोग किया

जाता है। मानवमितीय मापों की समय-समय पर जानकारी से व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि और विकास के स्वरूप का पता चल जाता है। शरीर की लम्बाई, शिशुओं, बच्चों तथा किशोरों में होने वाली वृद्धि का एक सामान्य संकेतक है एवं आयु के अनुरूप कम लम्बाई होने पर कुपोषण होने के संकेत मिलते हैं। लम्बाई के अनुरूप वजन वर्तमान पोषण स्तर का सूचकांक है। बच्चों के सिर, छाती तथा बांह की परिधि के सामान्य से कम होने पर प्रोटीन उर्जा कुपोषण होने का संकेत मिलता है। त्वचा की परत की मोटाई शरीर में उपस्थित वसा का सूचक है। इसी प्रकार नैदानिक लक्षणों को पहचान कर पोषक तत्वों की कमी से मिलान कर पोषण स्तर ज्ञात किया जाता है।

2.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **कुपोषण:** यह असंतुलित भोजन (ऐसा भोजन जिसमें एक या अधिक पोषक तत्वों की कमी या अधिकता होती है) ग्रहण करने से उत्पन्न स्थिति है। कभी कभी यह स्थिति भोजन के पाचन, अवशोषण तथा चयापचय सम्बन्धी कारणों से उत्पन्न हो जाती है।
- **अल्प पोषण:** यह लम्बे समय तक अपर्याप्त भोजन ग्रहण करने से उत्पन्न दशा है। उदाहरण प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण।
- **मानवमितीय माप:** वह विज्ञान जिसमें मानव शरीर के विभिन्न अंगों के मापों का अध्ययन किया जाता है।
- **एडिमा:** हाथों, पैरों में पानी एकत्र होने के कारण सूजन।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. इकाई का भाग 2.3 देखें।
2. इकाई का भाग 2.3 देखें।
3. इकाई का भाग 2.3.2 देखें।
4. इकाई का भाग 2.3.3 देखें।
5. इकाई का भाग 2.3.3 देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए।

a. मानवमितीय माप: विभिन्न आयु और पोषण की स्थिति में मानव शरीर के माप को मानवमितीय परीक्षण कहते हैं। मानवमितीय परीक्षण में शरीर का वजन, ऊँचाई, बाँह, कमर तथा नितम्बों की परिधि आदि लेकर मानक मापों से तुलना की जाती है।

b. गोमेज वर्गीकरण: वजन के अनुसार बच्चों को पोषण की विभिन्न श्रेणियों में रखने के लिए दिये गये मानकों में सबसे प्रचलित गोमेज वर्गीकरण (1956) है। इस वर्गीकरण में कुपोषण का स्तर बालकों की आयु के लिए वजन के प्रतिशत पर आधारित होता है।

c. वाटर लो वर्गीकरण: वाटर लो वर्गीकरण द्वारा क्षीणता एवं बौनापन को वर्गीकृत करने के लिए लम्बाई के अनुरूप वजन तथा आयु के अनुरूप लम्बाई दोनों सूचकांकों का प्रयोग किया जाता है।

d. बौनापन: आयु के अनुरूप लम्बाई दीर्घकालीन कुपोषण मापने का सूचकांक है। आयु के अनुरूप कम लम्बाई बौनेपन को मापती है। बौने बच्चों की मानसिक एवं शारीरिक कार्यक्षमता कम होती है।

e. क्षीणता: जब किसी बच्चे का वजन लम्बाई के अनुरूप न हो या मानक वजन से कम हो तो उसे क्षीणता कहते हैं। ऐसे बच्चों में मांसपेशियों की कमी पायी जाती है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. नैदानिक लक्षणों का उपयोग किसी विशेष पोषक तत्व की कमी को ज्ञात करने के लिए किया जाता है।
2. जिरोसिस: शरीर की त्वचा में अत्यधिक सूखापन।
3. विटामिन सी (एस्कार्बिक एसिड) की कमी के लक्षण निम्नलिखित हैं:
   - मसूड़े सूज जाना
   - मसूड़े मुलायम होना
   - मसूड़ों से रक्त आना

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Sehgal S. and Raghuvanshi R.S. (Eds). 2007. Text book of community nutrition. ICAR, New Delhi. 524p.

- Kleinman.R.E. (ed.). 2009. Pediatric Nutrition Handbook. American Acadmey of Pediatrics.IL.559-575pp.

2.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. आहार सर्वेक्षण की विभिन्न विधियों के प्रयोग द्वारा अपने आसपास के दस लोगों का पोषण स्तर ज्ञात कीजिए।
2. विभिन्न मानवमितीय मापों एवं उनके प्रयोगों की विवेचना कीजिए।
3. नैदानिक लक्षणों के प्रयोग द्वारा पोषण स्तर कैसे ज्ञात किया जा सकता है?
4. अपने पूरे दिन के आहार अन्तर्ग्रहण का प्रपत्र बना कर उसके पोषक मान की गणना कीजिए।

इकाई 3: अप्रत्यक्ष पोषण स्तर

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जीवन संबंधी सांख्यिकी
3.4 जीवन संबंधी सांख्यिकी संकेतक एवं उनका प्रयोग
3.5 स्वास्थ नीति संकेतक
3.6 सामाजिक एवं आर्थिक संकेतक
3.7 स्वास्थ्य देखभाल के संकेतक
3.8 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की व्यापकता
3.9 स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतक
3.10 सारांश
3.11 पारिभाषिक शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जीवन संबंधी सांख्यिकी प्रमुख जनस्वास्थ्य के मुद्दों की पहचान करने और समाधान के लिए सबसे व्यापक रूप से प्रयोग होने वाले राष्ट्रीय, राजकीय एवं स्थानीय आंकड़े हैं। जीवन संबंधी सांख्यिकी आंकड़े इसलिए महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये एक समुदाय (नगर, राज्य, राष्ट्र) के लिए विभिन्न स्वास्थ्य संकेतकों को दर्शाते हैं। जीवन संबंधी सांख्यिकी के संबंध में पढ़ने से पूर्व यह जान लेना उचित होगा कि स्वास्थ्य संकेतक क्या हैं एवं इनके क्या लाभ हैं।

हम पहले भी अध्ययन कर चुके हैं कि स्वास्थ्य राष्ट्र के विकास का सूचक है। विभिन्न स्वास्थ्य संकेतक जनसंख्या के स्वास्थ्य के विभिन्न पहलुओं को मापते हैं। जैसे जीवन प्रत्याशा, शिशु मृत्युदर आदि। इन सब संकेतकों से हमें ज्ञात होता है कि हमारा समुदाय/राष्ट्र कितना स्वस्थ है, समुदाय स्वास्थ्य के सभी संकेतकों में संतुलित है या नहीं तथा समुदाय स्वास्थ्य के सभी लक्ष्यों को पूर्ण कर रहा है या नहीं आदि।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप;

- बता सकेंगे कि जीवन संबंधी सांख्यिकी क्या है तथा उसके अध्ययन से क्या लाभ हैं;
- स्वास्थ्य नीति बनाने में प्रयोग संकेतकों को जान सकेंगे;
- विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक संकेतकों को समझ सकेंगे;
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के प्रबन्ध के संकेतकों को जान सकेंगे; तथा
- स्वास्थ्य के बुनियादी संकेतकों के बारे में व उनके प्रयोग के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 जीवन संबंधी सांख्यिकी

जैसा कि आप जान चुके हैं कि जीवन संबंधी सांख्यिकी के अध्ययन से महत्वपूर्ण स्वास्थ्य संकेतकों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। जीवन संबंधी सांख्यिकी से समग्र जनसंख्या के संदर्भ में आंकड़े प्राप्त होते हैं। ये आंकड़े मुख्यतः जीवन मृत्यु से संबंधित होते हैं। आइये इस बात पर चर्चा करें कि जीवन संबंधी सांख्यिकी आंकड़े महत्वपूर्ण क्यों हैं या इन्हें जानने से क्या लाभ होता है।

सर्वप्रथम चूंकि इन आंकड़ों से जन्म और मृत्यु दर का पता चलता है, इन आंकड़ों के द्वारा भविष्य में जनसंख्या का अनुमान लगाया जाता है। जीवन संबंधी सांख्यिकी आंकड़ों के माध्यम से स्वास्थ्य लक्ष्यों को प्राप्त करने की ओर प्रगति की जानकारी एवं निगरानी दोनों ही रखी जाती है।

इन आंकड़ों से जन स्वास्थ्य अधिकारी को जनसंख्या को स्वास्थ्य लाभ पहुंचाने में एवं प्रभावी उपायों को विकसित करने में मदद मिलती है। जैसे यदि आंकड़ों से पता चलता है कि बाल मृत्युदर एवं मातृ मृत्यु दर अधिक है, तो बाल एवं मातृ स्वास्थ्य सेवाओं की योजना बनायी जाती है तथा पूर्व में चल रहे कार्यक्रमों की निगरानी एवं सघन मूल्यांकन किया जाता है। जीवन संबंधी सांख्यिकी आंकड़ों से प्राप्त निष्कर्ष को उचित स्वास्थ्य शिक्षा देने में प्रयोग किया जाता है। स्वास्थ्य और चिकित्सा अनुसन्धान महंगा है। वर्तमान में यह अधिकांश रूप से राष्ट्रीय सरकार, निजी संस्थानों एवं दवा कंपनियों द्वारा वित पोषित है। स्वास्थ्य एवं चिकित्सा शोध के लिए प्राथमिकताएं, जैसे कैंसर, हृदय रोग, मोटापा, मधुमेह आदि बीमारियों से होने वाली मौतों पर सांख्यिकीय आंकड़ों से प्राप्त जानकारी पर ही निर्भर करती है। जीवन संबंधी सांख्यिकीय आंकड़े अनुसंधान की प्राथमिकताओं का केंद्र बिंदु तेजी से बदल सकते हैं। उदाहरण के लिए दो दशक पहले एड्स के अनुसंधान की ओर

अधिक ध्यान देने की आवश्यकता में अचानक परिवर्तन आया। अभी हाल ही में अल्जाइमर रोग के कारण और निवारण से संबंधित नैदानिक परीक्षणों और अध्ययन की संख्या में वृद्धि हुई है।

भारत में कुपोषण एवं मोटापे की बढ़ती दरों के आंकड़े उपचार और इस स्वास्थ्य समस्या के निवारण पर अधिक ध्यान देने की जरूरत पर बल देते हैं। जीवन सांख्यिकी आंकड़े इन स्वास्थ्य समस्याओं के लिए कार्यक्रम योजना बनाने एवं मूल्यांकन के लिए आधारभूत आंकड़े प्रदान करते हैं। यही आंकड़े नौकरी से संबंधित दुर्घटनाओं जैसे अस्थमा, सीसा विषाक्ता आदि को अच्छे एवं प्रभावी ढंग से कम करने में मदद करते हैं। इन आंकड़ों का प्रयोग पर्यावरणीय स्वास्थ्य संबंधी चिंताओं के साथ-साथ कार्यस्थल पर स्वास्थ्य की निगरानी के लिए भी किया जा सकता है।

चाहे विकासशील देश की बात हो या विकसित देश में किसी भी प्रकार की महामारी के प्रसार की हो, जीवन सांख्यिकी आंकड़े हमेशा महत्वपूर्ण होते हैं। यह आंकड़े नैदानिक अध्ययन के लिए तुलनात्मक आंकड़े प्रदान करते हैं।

उपरोक्त चर्चा से आप जान चुके होंगे कि जीवन सांख्यिकी आंकड़े महत्वपूर्ण क्यों हैं। यह आंकड़े वास्तव में जनसंख्या के स्वास्थ्य स्तर का दर्पण हैं। इन्हीं आंकड़ों के आधार पर स्वास्थ्य नीतियाँ, स्वास्थ्य योजनाएं विकसित की जाती हैं। आइये अब जीवन संबंधी सांख्यिकी संकेतकों के विषय में जानकारी लें।

3.4 जीवन संबंधी सांख्यिकी संकेतक एवं उनका प्रयोग

संकेतक वह सूचकांक है जिसके द्वारा किसी स्थिति विशेष पर जानकारी उपलब्ध होती है। यह संकेतक जन्म, मृत्यु, विवाह आदि के विषय में जनसंख्या के मात्रात्मक आंकड़े प्रदान करते हैं। आइये इन संकेतकों के विषय में जानकारी प्राप्त करें।

1.अशोधित जन्म दर (Crude Birth Rate)

यह सबसे आसान तथा सबसे अधिक प्रयोग किया जाने वाला माप है। यह वर्ष की प्रति हजार जनसंख्या के अनुपात में होने वाले जन्मों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। यह माप केवल जीवित शिशुओं के जन्म को ही गिन कर लिया जाता है। इसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता हैः

$$\text{अशोधित जन्म दर} = \frac{\text{एक वर्ष में हुए जीवित जन्म}}{\text{उस वर्ष की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

इस गणना से प्राप्त 40-50 प्रति हजार की जन्म दर उच्च तथा 10-20 प्रति हजार की जन्म दर कम मानी जाती है। उच्च तथा कम जन्म दर दोनों से जुड़ी अपनी समस्याएं हैं। उच्च जन्म दर से

जनसंख्या वृद्धि का जोखिम जुड़ा रहता है। इससे सरकार को जन कल्याण कार्यक्रमों को चलाने में परेशानियों का सामना करना पड़ता है। बढ़ी हुई जनसंख्या के साथ अशिक्षा, बेरोजगारी एवं पर्यावरण सम्बंधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

वहीं कम जन्म दर से एक समय पश्चात् अधिक कार्यशील पीढ़ी की संख्या कम हो जाती है एवं अधिक देखरेख की आवश्यकता वाली बुजुर्ग पीढ़ी की संख्या बढ़ जाती है जिससे देश की अर्थव्यवस्था बिगड़ सकती है।

अशोधित जन्म दर का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे जनसंख्या की वृद्धि दर का सही अनुमान लगाया जा सकता है। दूसरी तरफ इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि इस माप में बच्चे तथा बूढ़े भी शामिल किए जाते हैं जबकि जनसंख्या का यह वर्ग प्रजनन कार्य में सक्रिय नहीं होता है। इसके अतिरिक्त इस माप से आयु, लिंग, संरचना तथा वैवाहिक स्थिति का ध्यान नहीं रखा जाता है और यह प्रजनन का सामान्य ज्ञान नहीं देता है। इसलिए इसे अशोधित जन्म दर कहते हैं।

2.अशोधित मृत्यु दर

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने सन् 1953 में मृत्यु की परिभाषा दी थी। इस परिभाषा के अनुसार जन्म के बाद किसी भी समय जीवन के सभी प्रमाणों के स्थायी रूप से विलुप्त हो जाने को मृत्यु कहते हैं।

एक वर्ष में प्रति हजार जनसंख्या के अनुपात में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या को अशोधित मृत्युदर कहते हैं। यह भी एक आसान माप है जिसे निम्न सूत्र से ज्ञात किया जा सकता है:

$$\text{अशोधित मृत्यु दर} = \frac{\text{एक वर्ष में मृतकों की संख्या}}{\text{उस वर्ष की कुल जनसंख्या}} \times 1000$$

जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि अथवा ह्रास की दर, जन्म तथा मृत्यु दर पर निर्भर करती है। यदि जन्म दर, मृत्यु दर से अधिक है तो जनसंख्या में वृद्धि होती हैं। इसके विपरीत यदि मृत्यु दर जन्मदर से अधिक होती है, तो जनसंख्या में कमी होती है।

जन्मदर तथा मृत्युदर कई बातों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए महामारियों और दीर्घकालीन अकाल से मृत्यु में तीव्र वृद्धि हो सकती है। दूसरी ओर असाध्य और संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए विस्तृत पैमाने पर टीकाकरण, साफ पेयजल की आपूर्ति, नगरीय स्वच्छता की प्रणाली का विकास कर मृत्युदर को कम किया जा सकता है।

इस मृत्युदर को अशोधित निम्नलिखित कारणों एवं दोषों के कारण कहा जाता है:

1. यह संकेतक केवल औसत दर बताता है। इससे सही जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती।

2. इसकी गणना करते समय सम्पूर्ण जनसंख्या को सम्मिलित किया जाता है। परन्तु जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों में मृत्युदर भिन्न होती है। जैसे वृद्धों में वयस्कों की अपेक्षा मृत्युदर अधिक होती है।
3. यह सम्भव है कि चुनी गयी जनसंख्या किसी विशिष्ट आयु वर्ग का ही प्रतिनिधित्व करे, जबकि जनसंख्या के अन्य वर्गों में मृत्यु दर काफी भिन्न हो सकती है।

3. आयु विशिष्ट मृत्यु दर

अशोधित मृत्यु दर की गणना करते समय सभी आयु वर्गों में मरने वाले व्यक्तियों का समावेश किया जाता है। इसकी सहायता से इस बात की जानकारी नहीं प्राप्त हो पाती है कि विभिन्न आयु वर्गों में मृत्यु दर क्या है। इसे आयु विशिष्ट मृत्यु दर द्वारा ज्ञात किया जाता है। इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण जनसंख्या को विभिन्न आयु वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है और उसके उपरान्त प्रत्येक आयु वर्ग में मृत व्यक्तियों की संख्या को उसी आयु वर्ग की जनसंख्या से भाग देकर भागफल को 1000 से गुणा कर उस आयु विशिष्ट वर्ग की मृत्यु दर ज्ञात की जाती है।

$$\text{आयु विशिष्ट मृत्यु दर} = \frac{\text{विशिष्ट आयु वर्ग में मृतकों की संख्या}}{\text{उसी आयु की वर्ष भर में जनसंख्या}} \times 1000$$

आयु विशिष्ट मृत्यु दर की ही भांति अन्य विशिष्ट मृत्यु दरें भी ज्ञात की जा सकती हैं। जैसे क्षेत्र विशिष्ट मृत्यु दर, लिंग विशिष्ट मृत्यु दर आदि। इसके अतिरिक्त मृत्यु के कारणों के अनुसार भी मृत्यु दर की गणना की जा सकती है।

4. शिशु मृत्यु दर

शिशु मृत्यु दर 1000 जीवित जन्मे शिशुओं में से एक वर्ष या इससे कम आयु के मृत शिशुओं की संख्या है। शिशु मृत्यु दर से तात्पर्य आयु के प्रथम वर्ष (0-1) में होने वाली मृत्यु से है। शिशु मृत्यु दरें समाज की सामान्य स्वास्थ्य दशाओं का सर्वश्रेष्ठ सूचकांक माना जाता है। यह दर जितनी कम होगी जीवन स्तर एवं जनस्वास्थ्य उतना ही अच्छा होगा।

शैशवावस्था के प्रथम वर्ष के दौरान मृत्यु होने के कई कारण हैं जिसमें प्रमुख हैं, जन्म के समय कम भार होना, कुपोषण, अतिसार एवं स्वास नली में तीव्र संक्रमण। शिशु मृत्यु दर उच्च होने के कारण प्रजनन दर तथा जन्म दर भी उच्च होते हैं। यह इसलिए क्योंकि माता पिता मृत बच्चे की पूर्ति करने कारण अधिक बच्चे पैदा करते हैं। माताएं बच्चों को जन्म देती रहती हैं, जबकि खुद उनके जीवित रहने की सम्भावना बहुत कम होती है क्योंकि उनका अपना स्वास्थ्य क्षीण होता रहता है। इस प्रकार

यह चक्र चलता रहता है। इसलिए सरकार को शिशु मृत्यु दर को कम करने पर अधिक ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

शिशु मृत्यु दर को कम करने के लिए टीकाकरण, सुरक्षित पेयजल तक पहुंच, साफ-सफाई, महिलाओं का स्वास्थ्य एवं उनकी साक्षरता की संयुक्त भूमिका है।

शिशु मृत्यु दर को आयु के आधार पर पुनः दो भागों मे बांटा जाता है:

क. नवजात शिशु मृत्यु दर (Neonatal Mortality Rate)

यह भी एक आयु विशिष्ट मृत्यु दर है जिसके अन्तर्गत 04 सप्ताह अथवा एक माह से कम (0-28 दिन) आयु के बच्चों की मृत्यु दर का अध्ययन किया जाता है।

$$\text{नवजात शिशु मृत्यु दर} = \frac{\text{नवजात मृत शिशुओं की संख्या (0-28 दिन के मध्य)}}{\text{कुल जीवित जन्मे शिशुओं की संख्या (वर्ष में)}} \times 1000$$

यह संकेतक नवजात शिशु की देखभाल के लिए एक महत्वपूर्ण परिणाम सूचक है। यह प्रत्यक्ष रूप से जन्म से पूर्व, प्रसव के दौरान तथा जन्म के पश्चात् शिशु की देखभाल का स्तर दर्शाता है। उच्च नवजात मृत्युदर तब होती है जब माँ अठारह वर्ष से कम अथवा 35 वर्ष से अधिक आयु की हो एवं दो बच्चों के मध्य एक वर्ष से कम का अंतर हो। नवजात शिशुओं की मृत्युदर कम करने के लिए माता-पिता का भी स्वास्थ्य के प्रति जागरुक रहना जरूरी है। गर्भावस्था के हर चरण में गर्भस्थ शिशु के विकास की निगरानी आवश्यक है। इसके लिए समुदाय में बड़े पैमाने पर जागरुकता अभियान चलाना जरूरी है। इसके अलावा प्रसव के समय समुचित सुविधाओं और प्रशिक्षित चिकित्साकर्मियों की उपलब्धता बेहद जरूरी है।

ख. जन्मोपरांत नवजात शिशु मृत्यु दर (Post Neonatal Mortality Rate)

प्रथम चार सप्ताह या 28 दिन के बाद, वर्ष के शेष 18 सप्ताहों में हुई मृत्यु को इसके अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है और इसकी गणना भी नवजात शिशु मृत्यु दर की गणना की तरह ही की जाती है।

$$\text{जन्मोपरांत नवजात शिशु मृत्यु दर} = \frac{\text{जन्मोपरांत (28 दिन-एक वर्ष के पूर्व) मृत नवजात शिशुओं को संख्या}}{\text{कुल जीवित जन्मे शिशुओं की संख्या (उसी वर्ष में)}} \times 1000$$

जन्मोपरांत नवजात शिशु की मृत्यु के मुख्य कारण नवजात शिशु की उचित देखभाल न करना, कुपोषण, अस्वच्छता का वातावरण तथा टीकाकरण न होना है।

5. पांच वर्ष से कम आयु में मृत्युदर

प्रति हजार जीवित जन्मों पर जन्म से पाँच वर्ष की आयु के बीच मृत्यु की संभावना को पांच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्युदर कहते हैं। इसकी गणना करने के लिए जन्म से पांच वर्ष के बीच मृत बच्चों की संख्या को उसी वर्ष विशेष में पंजीकृत कुल जीवित जन्मे बच्चों की संख्या से भाग देकर भागफल को 1000 से गुणा किया जाता है।

$$\text{पांच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर} = \frac{\text{पांच वर्ष के कम आयु के बच्चों की संख्या}}{\text{उसी वर्ष में जन्मे कुल बच्चों की संख्या}} \times 1000$$

पांच वर्ष के कम आयु में मृत्यु दर के आंकड़ों के कई फायदे हैं। पहला यह विकास प्रक्रिया के किसी अन्य संकेत को नापने के बजाय उसके नतीजे का आंकलन करते हैं। दूसरा पांच वर्ष से कम आयु में मृत्युदर के आंकड़ों को अनेक प्रकार के संकेतों का परिणाम माना जाता है जैसे पोषण तथा माताओं को स्वास्थ्य संबंधी जानकारी, टीकाकरण का स्तर तथा मौखिक पुनर्जलीकरण चिकित्सा का उपयोग, मातृ एवं बाल स्वास्थ्य सेवाओं (प्रसव पूर्व देखरेख समेत) की उपलब्धता, परिवार की आय तथा भोजन की उपलब्धता तथा कुल मिलाकर बच्चे के वातावरण की सुरक्षा इत्यादि। ये सभी घटक उचित एवं सामान्य होते हैं तो पांच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर कम होती है। यह सूचकांक अधिकांश बच्चों और सम्पूर्ण समाज की स्वास्थ्य की स्थिति का उचित आंकलन करने में सक्षम है।

6. मातृ मृत्यु अनुपात (Maternal Mortality Ratio)

मातृ मृत्यु अनुपात का तात्पर्य शिशु जन्म के कारण हुई महिलाओं की मृत्युदर से है। इसकी गणना के लिए शिशु जन्म के कारण होने वाली मातृ मृत्यु की संख्या को कुल जीवित शिशु संख्या से भाग देकर 100,000 से गुणा कर दिया जाता है। प्रति 100,000 जीवित जन्मों पर प्रति महिला मृत्यु की वार्षिक संख्या मातृ मृत्यु अनुपात कहलाती है। इसके अन्तर्गत सिर्फ गर्भावस्था या प्रसव कराने के 42 दिनों के भीतर हुई महिला मृत्यु की गणना की जाती है।

कुपोषण, बार-बार गर्भधारण, असुरक्षित गर्भपात, यौन संचारित संक्रमण आदि मातृ मृत्यु के कारण हैं। इनसे भी बड़ा कारण प्रसव से पूर्व एवं प्रसव के दौरान पर्याप्त तथा कुशल चिकित्सकीय सुविधाओं की अनुपलब्धता है। मातृ मृत्यु अनुपात को कम करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य

संबंधी कार्यक्रमों का व्यापक प्रचार प्रसार होना चाहिए। साथ-साथ कुशल चिकित्सकीय सेवाओं की उपलब्धता भी सुनिश्चित होनी चाहिए। जब तक मातृ मृत्यु तथा शिशु मृत्यु पर नियंत्रण प्राप्त नहीं होता तब तक राष्ट्र प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त नहीं हो सकता।

7. मातृ मृत्यु दर (Maternal Mortality Rate)

प्रति वर्ष, प्रति लाख प्रजनन आयु की महिलाओं की संख्या पर मातृ मृत्यु की संख्या को मातृ मृत्यु दर कहते हैं। यह मातृ मृत्यु अनुपात से अलग है क्योंकि इससे प्रजनन के विषय में भी आंकड़े प्राप्त किए जाते हैं।

$$\text{मातृ मृत्यु दर} = \frac{\text{एक वर्ष में मातृ मृत्यु की संख्या}}{\text{वर्ष में कुल प्रजनन आयु की महिलाओं की संख्या}} \times 1000$$

मातृ मृत्यु अनुपात एवं मातृ मृत्यु दर दोनों ही महिलाओं और लड़कियों के प्रति सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक असमानता को मापने के महत्वपूर्ण संकेतक हैं। उच्च मातृ मृत्यु दर के कारण मुख्यतः संक्रमण, रक्त वाहिनियों का टूटना, प्रसवाक्षेप (Eclampsia), बाधित जन्म, गर्भपात तथा एनीमिया हैं।

8. कुल प्रजनन दर (Total Fertility Rate)

कुल प्रजनन दर बच्चों की वह संख्या है जो किसी भी स्त्री के संपूर्ण प्रजनन काल में जीवित जन्म लेते हैं। प्रजननता से तात्पर्य महिलाओं द्वारा जीवित शिशुओं को जन्म देने की क्षमता से है। जो महिलाएं गर्भधारण कर लेने के बाद, समय आने पर शिशुओं को जन्म नहीं दे पाती या उससे पूर्व गर्भपात करा लेती हैं या किन्हीं कारणों से स्वत: गर्भपात हो जाता है, उसे प्रजननता में शामिल नहीं किया जाता। वस्तुतः प्रजननता का अर्थ समय विशेष में जन्म लेने वाले बच्चों की बारम्बारता से होता है।

प्रजनन दर जन्मों की वह संख्या है जो प्रति हजार मातृत्व काल वाली स्त्रियों के द्वारा होते हैं। सामान्य प्रजनन दर में उन स्त्रियों को भी (15-49) इस आयु वर्ग में शामिल कर लिया जाता है जो इस आयुकाल में बच्चों को जन्म नहीं देती हैं।

9. विशिष्ट आयु प्रजननशीलता दर (Specific age fertility rate)

यह किसी विशेष आयु वर्ग की महिलाओं के द्वारा जन्म लिए हुए बच्चों की संख्या को परिलक्षित करती है।

10. जीवन प्रत्याशा (Life Expectancy)

किसी भी देश के निवासी की जन्म के समय जीवित रहने की आशा को जीवन प्रत्याशा कहते हैं। युनिसेफ के अनुसार जीवन प्रत्याशा "नवजाज शिशु के जीवित रहने की प्रत्याशा (वर्षों में) है"। किसी भी देश के लोगों की जीवन प्रत्याशा मुख्यतः मृत्यु दर और मृत्यु के समय की आयु पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में बाल मृत्युदर कम होने तथा मृत्यु के समय लोगों की आयु अधिक रहने पर जीवन प्रत्याशा अधिक होती है। अल्प जीवन प्रत्याशा वाले देशों में वृद्धों की संख्या कम होती है। इसके विपरीत कम जन्म दर तथा लम्बी जीवन प्रत्याशा वाले देशों में बच्चों की संख्या कम तथा वृद्धों की संख्या अधिक होती है। जीवन प्रत्याशा बढ़ने का सीधा निष्कर्ष निकलता है कि गत वर्षों के मुकाबले चिकित्सकीय सेवा एवं प्राथमिक देखभाल क्षेत्र में भी वृद्धि हुई है। बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं के कारण मृत्यु दर घटती है जिससे जीवन प्रत्याशा बढ़ती है।

अभ्यास प्रश्न 1

---

1. रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

a. अशोधित जन्म दर = $\dfrac{\text{________________}}{\text{उस वर्ष की कुल जनसंख्या}} \times 1000$

b. अशोधित मृत्यु दर = $\dfrac{\text{________________}}{\text{उस वर्ष की कुल जनसंख्या}} \times 1000$

c. नवजात शिशु मृत्यु दर = $\dfrac{\text{________________}}{\text{उस वर्ष में कुल जीवित जन्मे शिशुओं की संख्या}} \times 1000$

d. मातृ मृत्यु दर = $\dfrac{\text{एक वर्ष में मातृ मृत्यु संख्या}}{\text{उस वर्ष में प्रजनन आयु की महिलाओं की कुल संख्या}} \times \text{________}$

e. जन्मदर एवं मृत्युदर के साथ अशोधित शब्द क्यों जोड़ा जाता है?

....

f. मातृ मृत्यु अनुपात एवं मातृ मृत्यु दर में क्या अंतर है?

....

g. यदि शिशु मृत्यु दर में वृद्धि होती है तो जनसंख्या पर क्या प्रभाव पड़ता है?

....

आइए अब हम स्वास्थ्य नीति संकेतकों की चर्चा करें।

3.5 स्वास्थ नीति संकेतक

समुदाय एवं समाज की विशिष्ट स्वास्थ्य देखभाल के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जो निर्णय, योजनाएं तथा कार्य किए जाते हैं उन्हें स्वास्थ्य नीतियों के रूप में उल्लेखित किया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक स्पष्ट स्वास्थ्य नीति से कई आयाम प्राप्त किए जा सकते हैं। यह भविष्य की स्वास्थ्य स्थिति के लिए दृष्टि को परिभाषित करती है। यह प्राथमिकताओं और विभिन्न समूहों की रूपरेखा भी तय करती है।

स्वास्थ्य नीति संकेतकों में वह संकेतक सम्मलित किए जाते हैं जिनसे राष्ट्र की स्वास्थ्य नीति के बारे में पता चलता है। इन संकेतकों से स्वास्थ्य नीति के गुणों एवं सामर्थ्य के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य नीति के निम्नलिखित संकेतक जारी किए हैं:

1. सभी के स्वास्थ्य हेतु राजनैतिक प्रतिबद्धता
2. संसाधन आवंटन
3. सामुदायिक भागीदारी
4. संगठनात्मक ढांचा और प्रबन्धकीय प्रक्रिया

1. सभी के स्वास्थ्य हेतु राजनैतिक प्रतिबद्धता

स्वास्थ्य किसी भी राष्ट्र के विकास एवं उत्पादकता का मुख्य स्तम्भ है। यह वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक प्रसन्नता, उन्नति एवं विकास का आधार है। सभी के उत्तम स्वास्थ्य के लिए राजनैतिक प्रतिबद्धता आवश्यक है। स्वास्थ्य नीतियाँ सरकार द्वारा बनायी जाती हैं। स्वास्थ्य नीति के तत्व इसी संकेतक पर निर्भर करते हैं। इस संकेतक द्वारा पता चलता है कि सरकार द्वारा स्वास्थ्य को कितना महत्व दिया जा रहा है, सरकार की स्वास्थ्य संबंधित आवश्यकताओं में दिलचस्पी है या नहीं, सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का प्रबंधन उचित है या नहीं आदि। इस संकेतक से वास्तव में सरकार का तात्कालिक स्वास्थ्य स्थिति के विषय में नजरिया दिखाई देता है। यदि स्वास्थ्य नीति में महिलाओं एवं बच्चों के स्वास्थ्य के लिए कोई व्यवस्था न हो तो उस स्वास्थ्य नीति को उचित नहीं माना जाता है। पोषण शोधकर्ताओं और अधिवक्ताओं के बीच यह आम

सहमति है कि राजनैतिक प्रतिबद्धता की कमी के कारण ही विश्व में कुपोषण नियंत्रित नहीं किया जा रहा है। माना जाता है कि ज्यादातार देशों में सरकारें मौखिक एवं प्रतीकात्मक रूप से स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से लड़ने का वादा करती हैं परन्तु विशिष्ट योजनाओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन आवंटित नहीं किए जाते हैं।

राजनीतिक प्रतिबद्धता को तीन आयामों के साथ मापा जा सकता हैः

1. अभिव्यक्त प्रतिबद्धता
2. संस्थागत प्रतिबद्धता
3. बजटीय प्रतिबद्धता

अभिव्यक्त प्रतिबद्धता किसी प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्ति द्वारा स्वास्थ्य की किसी समस्या के समर्थन में मौखिक घोषणाओं से संबंधित है। जैसे प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति द्वारा किसी राष्ट्रीय समारोह या पर्व पर स्वास्थ्य संबंधी घोषणा करना या स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों के विषय पर बात करना।

संस्थागत प्रतिबद्धता में स्वास्थ्य संबंधित मुद्दों के लिए संगठनात्मक ढांचे की बात आती है।

बजटीय प्रतिबद्धता में किसी विशेष मुद्दे के लिए संसाधनों का आवंटन निर्धारित होता है।

राजनीतिक प्रतिबद्धता वाले सूचक एक रिकॉर्ड की तरह हैं कि वास्तव में कोई घोषणा की गयी है या नहीं। सरकार द्वारा की गई घोषणा से पता चलता है कि सरकार स्वास्थ्य की तत्काल स्थिति एवं मुद्दों के विषय में चिन्तित है तथा उन्हें हल करने का प्रयास करेगी। राजनीतिक प्रतिबद्धता के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक सूचक हैं; कानून लागू करना, योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण तथा नियोजन, बजटीय आवंटन और व्यय। इन संकेतकों से प्रतिबद्धता के क्रियान्वयन का संकेत मिलता है।

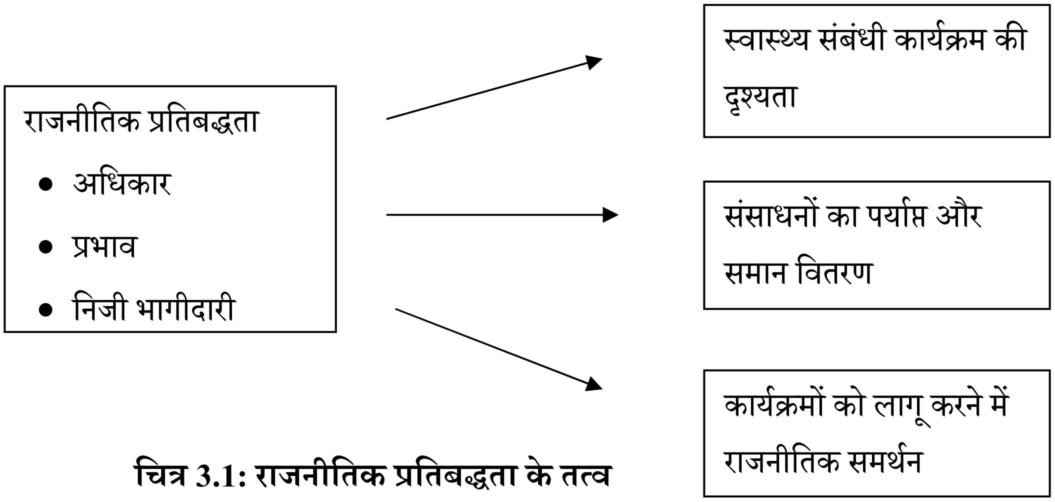

चित्र 3.1: राजनीतिक प्रतिबद्धता के तत्व

राजनीतिक प्रतिबद्धता सरकार की इच्छा, किए गये कार्य व भविष्य में करने वाले कार्यों से संबंधित है। उचित स्वास्थ्य नीति इन्हीं तीन आयामों पर निर्भर करती है।

2. संसाधन आवंटन

सभी के लिए उत्तम स्वास्थ्य की रणनीति में संसाधनों का उचित आवंटन आवश्यक है। इन संसाधनों के आवंटन की स्थिति का पता बजट से चलता है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्य करने की सरकार की इच्छा का पता इस बजट से चलता है। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य देखभाल के लिए धन तथा संसाधन वितरण से संबंधित फैसले आते हैं। संसाधन आवंटन सूचकांक के लिए यह देखना जरूरी होता है कि सम्पूर्ण स्वास्थ्य के लिए राष्ट्र के कुल कितने संसाधन आवंटित किए गये हैं। तत्पश्चात प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए क्या-क्या संसाधन उपलब्ध कराये गये हैं। स्वास्थ्य के क्षेत्र में संसाधन आवंटन का आंकलन इसलिए आवश्यक है क्योंकि इस क्षेत्र में मांग हमेशा आपूर्ति से ज्यादा होती है। इसलिए संसाधन के आवंटन में हमेशा तत्काल परेशानियों को प्राथमिकता दी जाती है। संसाधन के लिए यह भी देखना एवं समझना उचित रहता है कि अलग-अलग क्षेत्र, विभाग स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करते हैं।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए आवंटित संसाधनों के अनुपात को एक संकेतक के रूप में विचार करने हेतु यह देखा जाता है कि सामुदायिक स्तर पर प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान पर कितना और कैसे व्यय किया जाएगा। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के 'अल्माअटा सम्मेलन' में निश्चित सभी आयामों एवं तत्वों को भी संज्ञान में लेना चाहिए। परन्तु प्रत्येक देश में प्राथमिक देखभाल के क्रियान्वयन का तरीका अलग है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र को प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के राष्ट्रीय संकेतक बनाने चाहिए।

स्वास्थ्य के लिए वित्त संसाधन आवंटन के संबंध में निम्नलिखित संकेतक सामान्य उपयोग के लिए प्रासंगिक हैं:

- सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GDP) का कितना प्रतिशत स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च किया जा रहा है।
- सकल राष्ट्रीय उत्पाद का कितना प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं जैसे पोषण, शिक्षा, सामुदायिक विकास, जल आपूर्ति, स्वच्छता, आवासीय सुविधा एवं पोषण पर खर्च किया जा रहा है।
- कुल स्वास्थ्य संसाधनों का कितना प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के लिए खर्च किया जा रहा है।

यह सभी संकेतक सरकार द्वारा वास्तव में किए गये खर्चों से निकालने चाहिए, न कि बजट की घोषणाओं एवं आवंटनों से। बजट आने के एक या दो साल तक शायद आंकड़े प्राप्त करना मुश्किल होता है, इसलिए बजट आवंटन से भी संकेत प्राप्त किए जा सकते हैं। आंकड़े प्राप्त करने के पश्चात् बाद में समीक्षा भी की जा सकती है। स्वास्थ्य नीति संकेतकों के विषय में जानकारी सरकारी विश्लेषणों, स्वास्थ्य मंत्रालय या मीडिया द्वारा किए गए विश्लेषणों से प्राप्त की जा सकती हैं।

स्वास्थ्य संसाधनों के वितरण की स्थिति

स्वास्थ्य नीति विश्लेषण के इस भाग के माध्यम से उन संकेतकों को देखा जाता है जो संसाधनों के वास्तविक वितरण के बारे में जानकारी प्रदान करते हैं। जैसे जनसंख्या का कितना प्रतिशत प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं से वंचित है या कितने लोगों को स्वच्छ पीने का पानी नहीं मिलता है आदि। इस संकेतक से यह जानकारी प्राप्त होती है कि कितने लोगों को स्वास्थ्य सुविधा मिल रही है एवं कितनों को नहीं। इसमें आंकड़ों को भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार बांट कर देखा जाता है कि राजधानी, शहरों, कस्बों तथा गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं की क्या स्थिति है। स्वास्थ्य संसाधनों में वित्त के वितरण की स्थिति, स्वास्थ्य के लिए श्रम शक्ति, सुविधाएं आदि संकेतक स्वास्थ्य उपलब्धियों के आंकलन में काम आते हैं। ऐसे कुछ संकेतक निम्नलिखित हैं:

- विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच या राजधानी और देश के बाकी हिस्सों के बीच स्वास्थ्य पर प्रति व्यक्ति खर्च का वितरण।
- क्षेत्र या जिलेवार प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के लिए कुल स्वास्थ्य संसाधनों के अनुपात का खर्च।
- देश के विभिन्न हिस्सों में जनसंख्या तथा अस्पताल में उपलब्ध बिस्तर, डॉक्टर और अन्य स्वास्थ्य कर्मियों का अनुपात जैसे एक चिकित्सक कितनी जनसंख्या के लिए नियुक्त है आदि।

3. सामुदायिक भागीदारी

राजनीतिक प्रतिबद्धता का एक सूचक स्वास्थ्य संबंधी निर्णय लेने में सामुदायिक भागीदारी है। इससे समुदायों की मांग एवं आवश्यकताओं का ज्ञान होता है। समुदायों को नीति का पूरा लाभ उठाने के लिए सक्रिय भागीदारी देनी चाहिए। समुदाय के नियंत्रण के भीतर और बाहर के सभी संसाधनों का प्रयोग परिवार एवं समुदाय के भीतर ऐसी प्रक्रियाओं के समर्थन में किया जाना चाहिए जो पोषण सुधारने में सहायक हों। ऐसी प्रक्रियाओं में संसाधनों के उपयोग के बारे में निर्णय लेना और उन निर्णयों के प्रभाव की निगरानी करना सम्मिलित है।

सामुदायिक भागीदारी एक संकेतक के रूप में निर्णय लेने के विकेन्द्रीकरण की मात्रा है। यह स्थानीय स्तर पर अधिक प्रभावी सुविधा प्रदान करता है तथा सुनिश्चित करता है कि इसको लागू करने से अच्छे परिणाम आएंगे। एकजुटता एवं समर्थन के बीच तालमेल से समुदाय और सरकार दोनों को सफल परिवर्तन प्राप्त होते हैं।

4. संगठनात्मक ढांचा और प्रबन्धकीय प्रक्रिया

अगर सरकार राजनीतिक रूप से प्रतिबद्ध है तो वह राष्ट्रीय स्वास्थ्य विकास के लिए एक उपयुक्त संगठनात्मक ढांचे और प्रबन्धकीय प्रक्रिया स्थापित करेगी। एक उपयुक्त संगठनात्मक ढांचा स्थापित किया गया है या नहीं इसका आंकलन कुछ प्रश्नों के उत्तर से किया जा सकता है। यह प्रश्न निम्नलिखित हैं:

- क्या स्वास्थ्य क्षेत्र का अन्य प्रासंगिक क्षेत्रों के साथ विभिन्न संगठनात्मक स्तर और विभागों के बीच प्रभावी संचार होता है?
- क्या ऐसा तन्त्र मौजूद है जो प्रभावी संचार करा सके तथा संयुक्त नीति योजना, नियोजन आदि को प्रभावी बना सके जैसे राष्ट्रीय या जिला स्वास्थ्य विकास कमेटी?
- क्या स्वास्थ्य मंत्रालय के सभी तकनीकी विभाग प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल कार्यक्रमों की सेवाओं का पूर्ण एकीकरण सुनिश्चित करने के लिए संयुक्त प्रबंधन में भाग लेते हैं?
- क्या पेशेवर समूह, मेडिकल एवं नर्सिंग कॉलेज एवं अन्य विश्वविद्यालय के विभाग पर्याप्त रूप से प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के विकास के लिए प्रासंगिक अनुसंधान और सेवा कार्यों में शामिल हैं?

निगरानी एवं मूल्यांकन और संबंधित संकेतक सहित राष्ट्रीय स्वास्थ्य के विकास के लिए उपयुक्त प्रबंधकीय प्रक्रिया का विकास एवं उपयोग अपने आप में राजनीतिक प्रतिबद्धता का सूचक है। सूचना समर्थन इस प्रबंधकीय प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। यदि सूचना या जानकारी नहीं होगी तो समस्या को आसानी से छिपाया जा सकता है, फिर किसी निर्णय या कारवाई की भी आवश्यकता नहीं होती है। अत्यधिक सूचना संग्रह जो कि अप्रासंगिक हो और सार्थक रूप में प्रस्तुत न की जाये तो व्यर्थ तथा खतरनाक हो सकती है। इसलिए सभी के स्वास्थ्य के लिए प्रतिबद्धता के लिए स्वास्थ्य विभाग में हर चरण पर मजबूत संगठनात्मक ढांचा होना चाहिए जिसमें प्रबन्धकीय प्रक्रिया पारदर्शी एवं सुलभ होनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. स्वास्थ्य नीति में राजनीतिक प्रतिबद्धता का पता कैसे चलता है?

....

....

2. समुदाय की भागीदारी से स्वास्थ्य नीति कैसे प्रभावित होती है?

....

....

3.6 सामाजिक एवं आर्थिक संकेतक

यह संकेतक प्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य के विकास के बारे में नहीं बताते हैं। सामाजिक और आर्थिक संकेतक स्वास्थ्य के क्षेत्र के बाहर प्रगति पर प्रभाव से संबंधित होते हैं। ये आम तौर पर राष्ट्रीय स्वास्थ्य विकास रणनीतियों में शामिल विशिष्ट उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप नहीं होते हैं। इसकी गणना या आंकड़ों को जानने के संदर्भ में माना जाता है कि इन संकेतकों से संबंधित आंकड़े राष्ट्रीय स्वास्थ्य अधिकारियों के बजाय अन्य राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों से प्राप्त करने चाहिए। इनका उपयोग एवं महत्व स्वास्थ्य की स्थिति की व्याख्या करने में तथा स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान को समझने में किया जाता है। दोनों संकेतक इकाई के आगे के भागों में वर्णित किए जाएंगे। इसलिए इनके बारे में कुछ जानकारी एवं उनकी व्याख्या यहाँ आवश्यक है।

इस संकेतक श्रेणी में निम्नलिखित संकेतक आते हैं:

1. जनसंख्या वृद्धि दर
2. सकल घरेलू उत्पाद
3. आय का वितरण
4. कार्य का माहौल
5. वयस्क साक्षरता दर
6. आवासीय सुविधा
7. खाद्य पदार्थों की उपलब्धता

आइए प्रत्येक के विषय में विस्तारपूर्वक जानें।

1. जनसंख्या वृद्धि दर

जनसांख्यिकीय संकेतक जैसे जनसंख्या के आकार में परिवर्तन, जनसंख्या की आयु भिन्नता एवं लिंग संरचना आदि न केवल संकेतकों का संकलन करने के लिए एक आधार है बल्कि यह स्वास्थ्य तथा अन्य सभी क्षेत्रों में किसी भी प्रकार की योजना बनाने के लिए महत्वपूर्ण हैं। जनसंख्या वृद्धि दर जानने के लिए सांख्यकीय आंकड़े जैसे जन्म, मृत्यु एवं प्राकृतिक वृद्धि दरों का उपयोग किया जाता है। अशोधित जन्म दर, अशोधित मृत्यु दर तथा अन्य मृत्यु दरें भी स्वास्थ्य की स्थिति जानने के लिए उपयोगी संकेतक हैं। इन संकेतकों के विषय में आप इसी इकाई के पिछले भाग में पढ़ चुके हैं।

जनसंख्या में वार्षिक वृद्धि, जन्म तथा मृत्यु दर पर निर्भर करती है। यदि जन्म दर अधिक है तो जनसंख्या में वृद्धि होती हैं। जनसंख्या वृद्धि, सामाजिक समृद्धि और उन्नति का सूचक होती है क्योंकि इससे संसाधन के आधार में भी वृद्धि होती है। किसी अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि का प्रति व्यक्ति आय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जनसंख्या बढ़ने के कारण एक सीमा तक आय बढ़ती है। परन्तु इसके पश्चात् आय कम होनी आरंभ हो जाती है। जब तक जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय आय में होने वाली वृद्धि दर से कम होती है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है। परन्तु जैसे ही जनसंख्या वृद्धि दर राष्ट्रीय आय की वृद्धि से अधिक हो जाती है, प्रति व्यक्ति आय कम होने लगती है। इसी प्रकार जनसंख्या की वृद्धि दर प्रति व्यक्ति आय का एक महत्वपूर्ण निर्धारक बन जाती है। जनसंख्या की वृद्धि के कारण अविकसित एवं विकासशील देशों द्वारा अपनाये गये विकास कार्यक्रम निर्धनता की समस्या का समाधान करने में असफल हो जाते हैं। जनसंख्या वृद्धि दर का सीधा प्रभाव बेरोजगारी, खाद्य समस्या, निर्धनता आदि के रूप में दिखाई देता है। इसलिए इसे महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक संकेतक का घटक माना गया है।

2. सकल घरेलू उत्पाद

यह अर्थव्यवस्था के आर्थिक प्रदर्शन का एक बुनियादी माप है। यह एक वर्ष में एक राष्ट्र की सीमा के भीतर सभी अंतिम माल और सेवाओं का बाजार मूल्य है। सकल घरेलू उत्पाद के मापन और निर्धारण का सबसे आम तरीका व्यय विधि है।

सकल घरेलू उत्पाद (Gross Domestic Product) = (उपभोग+सकल निवेश+सरकारी खर्च+निर्यात-आयात)

प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. की गणना करने के लिए कुल जी.डी.पी. को कुल जनसंख्या से भाग दिया जाता है।

$$\text{प्रति व्यक्ति जी.डी.पी.} = \frac{\text{कुल जी.डी.पी.}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

इससे जनसंख्या वृद्धि पर भी विचार होता है। जी.डी.पी. में वृद्धि दर के आधार पर आर्थिक विकास की दर को मापा जा सकता है। प्रति व्यक्ति जी.डी.पी. को किसी भी देश के जीवन स्तर और अर्थव्यवस्था की समृद्धि का सूचक माना जाता है।

3. आय का वितरण

आय का समान वितरण देश के आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है। आय का वितरण जानने के लिए लोगों को उनकी आय के अनुसार पांच या दस वर्गों में बांट लिया जाता है। इसके पश्चात् यह अनुमान लगाया जाता है कि राष्ट्रीय आय का कितना भाग किस वर्ग को प्राप्त हो रहा है। विश्व के अधिकतर अल्पविकसित देशों में औसतन 80 प्रतिशत जनसंख्या को राष्ट्रीय आय का केवल 40-50 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। आय के असमान वितरण से अमीरों एवं गरीबों की आय में बड़ा अन्तर पाया जाता है। आय की असमानता आर्थिक विकास में बाधा डालती है। इससे जनसंख्या में बेरोजगारी तथा असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है। इसके लिए प्रति व्यक्ति आय को सांकेतिक रूप में प्रयोग किया जाता है। प्रति व्यक्ति आय का अनुमान राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देने पर लगाया जा सकता है।

$$\text{प्रति व्यक्ति आय} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय}}{\text{कुल जनसंख्या}}$$

सामाजिक सूचक

सामाजिक सूचकों को मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं के रूप में बताया गया है। मुख्य सामाजिक सूचकों में जीवन प्रत्याशा, ऊर्जा अंतर्ग्रहण, शिशु मृत्यु दर, विद्यालयों में प्राथमिक कक्षाओं में भर्ती बच्चों की संख्या, आवास, पोषण, स्वास्थ्य तथा ऐसी ही अन्य वे सब चीजें जो मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं से संबंध रखती हैं, सम्मिलित हैं।

प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि से यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति का जीवन स्तर उच्च हो जाए क्योंकि हो सकता है कि राष्ट्रीय आय का बँटवारा उचित रूप से न हो। ऐसी स्थिति में धनी व्यक्ति अधिक धनी तथा निर्धन व्यक्ति अधिक निर्धन होते जाते हैं। यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति आय अपेक्षाकृत तीव्र गति से बढ़ रही है तो यह माना जाता है कि उस देश आर्थिक विकास की दर भी अधिक है।

4. कार्य का माहौल (रोजगार से संबंधित)

इस संदर्भ में प्रयुक्त होने वाले संकेतक काम की उपलब्धता, बेरोजगारी का स्तर, अल्प रोजगार, श्रम शक्ति में महिलाओं का प्रतिशत तथा लाभकारी रोजगार रोकने वाली विकलांगता का प्रसार हैं। जिन देशों में बड़े प्रतिशत में जनसंख्या स्वरोजगार या अनौपचारिक गैर भुगतान क्षेत्र में कार्यरत है, वहां यह संकेतक उचित आंकड़े प्रदान नहीं करते हैं। इसी संदर्भ में कहीं-कहीं निर्भरता अनुपात का संकेतक भी उपयोगी रहता है। जनसंख्या की आयु संरचना तथा आश्रित व्यक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसकी गणना करने के लिए प्रति 100 व्यक्तियों (आयु 15-64 वर्ष) पर आश्रित जनसंख्या की गिनती की जाती है। यदि जनसंख्या का बड़ा भाग निर्भरशील या आश्रित है तो इससे देश का सामाजिक-आर्थिक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है क्योंकि राष्ट्रीय आय का एक बड़ा भाग इसकी सुरक्षा एवं विकास में नियोजित हो जाता है। आश्रित जनसंख्या में 15 वर्ष से कम आयु के बच्चे तथा 64 वर्ष से अधिक के वृद्ध आते हैं। 15-64 आयु वर्ग के अंतर्गत आने वाली जनसंख्या आर्थिक रूप से उत्पादक होती है। इसे सक्रिय जनसंख्या कहते हैं।

5. व्यस्क साक्षरता दर

साक्षरता का अर्थ व्यक्ति के पढ़ने तथा लिखने की क्षमता से है। 15 वर्ष या इससे अधिक आयु वाले साक्षर व्यक्तियों का प्रतिशत साक्षरता दर कहलाता है।

$$\text{सक्षरता दर प्रतिशत} = \frac{\text{शिक्षित जनसंख्या}}{\text{कुल जनसंख्या}} \times 100$$

साक्षरता दर के आंकड़े जनगणना से प्राप्त होते हैं। यह सूचकांक सामाजिक-आर्थिक स्थिति का महत्वपूर्ण द्योतक होता है। महिलाओं का साक्षर होना अधिक आवश्यक तथा लाभकारी है क्योंकि महिलाएं ही घर में स्वास्थ्य की देखभाल करती हैं। ऐसी साक्षरता को स्वास्थ्य साक्षरता कहा जाता है। स्वास्थ्य साक्षरता का अर्थ स्वास्थ्य संबंधित तथ्यों को पढ़ना, समझना और उसका उपयोग करना है। इससे लोग अपनी बीमारियों के बारे में अच्छी तरह से जान सकेंगे और अपनी देखभाल स्वयं अच्छी प्रकार कर सकेंगे।

एक साक्षरता संकेतक का प्रयोग शिक्षण संस्थानों में नामांकित छात्रों की संख्या जानकर भी किया जा सकता है। इस संकेतक को 5-15 वर्ष की आयु की कुल जनसंख्या के अनुमान के प्रतिशत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। परन्तु इस संकेतक से उपस्थिति का सही-सही पता नहीं चल पाता है। वास्तविक स्थिति से पता चलता है कि लड़कियाँ स्कूल नहीं जाती हैं। स्कूल से अनुपस्थित बच्चे में बीमारी एक अप्रत्यक्ष सूचकांक है। परन्तु कुछ देशों में जिसमें भारत भी सम्मलित है, अनुपस्थिति

का अर्थ बाल मजदूरी, गृह कार्यों में सहभागिता, छोटे भाई-बहनों का पालन-पोषण आदि हो सकता है। इस क्षेत्र में शिक्षा की गुणवत्ता जानने के लिए छात्र-शिक्षक अनुपात तथा प्रति छात्र व्यय जैसे संकेतकों का प्रयोग किया जाता है।

6. आवासीय सुविधा

उचित आवासीय सुविधा का संकेतक एक कमरे में व्यक्तियों की संख्या से जाना जाता है। आवासीय संकेतकों में आवास का प्रकार, आवास का आकार, मौसम से बचाव की क्षमता, जानवरों से बचाव तथा स्वच्छता संबंधी सुविधाओं की उपलब्धता को ध्यान में रखकर आंकड़े एकत्रित करने चाहिए।

7. खाद्य पदार्थों की उपलब्धता

आप इस तथ्य से भली-भाँति परिचित हैं कि खाद्य एवं पोषण का स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। खाद्य पदार्थों की उपलब्धता जानने के लिए प्रति व्यक्ति कैलोरी उपलब्धता की गणना की जाती है। इस संकेतक की गणना खाद्य बैंलेंस शीट से की जाती है। इसके अंतर्गत स्थानीय खाद्य उत्पादन, आयात-निर्यात, अपव्यय तथा गैर-मानव उपयोग आदि सभी आयामों का हिसाब रखा जाता है। यह खाद्य उपलब्धता जानने का सबसे अच्छा संकेतक है। खाद्य उपलब्धता सम्बंधी अन्य जानकारी आहार उपभोग सर्वेक्षण से प्राप्त की जा सकती है। प्रति व्यक्ति कैलोरी उपलब्धता से तात्पर्य उपभोग के लिए उपलब्ध भोजन की मात्रा है। इसे मापने के लिए कुल उपलब्ध खाद्य आपूर्ति को कुल जनसंख्या से विभाजित किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. निम्नलिखित को परिभाषित कीजिए।

   a. सकल घरेलू उत्पाद

   ....

   b. प्रति व्यक्ति आय

   ....

   c. साक्षरता

   ....

   d. स्वास्थ्य साक्षरता

   ....

e. प्रति व्यक्ति कैलोरी उपलब्धता

....

3.7 स्वास्थ्य देखभाल के संकेतक

स्वास्थ्य की उचित देखभाल के लिए निम्नलिखित संकेतकों का प्रयोग किया जाता हैः

1. उपलब्धता
2. पहुंच की सुलभता
3. सेवाओं का उपयोग
4. देखभाल की गुणवत्ता

1. उपलब्धता

इस भाग में हम स्वास्थ्य देखभाल के लिए उपलब्ध संसाधनों के विषय में बात करेंगे। उपलब्धता से तात्पर्य समयानुसार उचित स्वास्थ्य सुविधा मिलना है। इसके लिए निम्नलिखित संकेतक प्रयोग किए जा सकते हैं:

- एक प्रशासनिक इकाई की जनसंख्या एवं उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं के बीच अनुपात (जैसे एक जिले में कितने स्वास्थ्य केन्द्र हैं)।
- एक प्रशासनिक इकाई की जनसंख्या एवं उपलब्ध स्वास्थ्य सेवा कर्मियों के बीच अनुपात।

स्वास्थ्य सेवा उपलब्धता की समस्या ग्रामीण इलाकों में ज्यादा है। दूर-दराज के इलाकों में जहां जनसंख्या कम होती है, चार-पांच गांव के लिए एक स्वास्थ्य केन्द्र बनाया जाता है। वहां पर स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या भी कम होती है। इसलिए स्वास्थ्य देखभाल संकेतक के रूप में उपलब्धता में दोनों ही घटकों, स्वास्थ्य केन्द्र तथा स्वास्थ्य कर्मी दोनों की ही महत्ता है। स्वास्थ्य केन्द्र उपलब्ध होने पर भी यदि स्वास्थ्य कर्मी वहां तैनात नहीं हैं तो उसे उपलब्धता में नहीं गिना जा सकता। स्वास्थ्य कर्मियों में भी चिकित्सक, सह-चिकित्सक, नर्स आदि की उपलब्धता आवश्यक है।

2. पहुंच की सुलभता

इस घटक से तात्पर्य स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच की सुलभता है अर्थात क्या स्वास्थ्य सेवा केन्द्र तक सुलभता से पहुंचा जा सकता है? सुलभता तय करने की हर देश की अपनी कसौटी है। जैसे एक घण्टे पैदल दूरी पर, या आधा घण्टा बैलगाड़ी में, या पांच किलोमीटर के दायरे में आदि। प्रसव की स्थिति

में ये परिभाषाएं और हो सकती हैं क्योंकि प्रसव के लिए प्रसूति का घर अस्पताल के समीप होना चाहिए। इसके लिए निम्न संकेतक प्रयोग में लाये जा सकते हैं:

किसी सुविधा या सेवा (स्वास्थ्य) का प्रयोग करने वाली जनसंख्या का अनुपात (जब दूरी, समय की समस्या हो)।

पैसा, समय, दूरी आदि के कारण भी सुविधा का उचित उपयोग नहीं हो पाता है। कभी-कभी जाति भेदभाव एवं भाषा भेद-भाव के कारण भी सुविधा का उपयोग नहीं हो पाता है। इसलिए इस संकेतक के प्रयोग में उपरोक्त इन सब बातों का ध्यान रखना चाहिए।

3. सेवाओं का उपयोग

स्वास्थ्य देखभाल के इस घटक का अर्थ है कि उपलब्ध कराई गयी सेवाओं का उपयोग कैसे हुआ। इस घटक से किसी स्वास्थ्य सेवा की वास्तविक व्यापकता का पता चलता है। जैसे टीकाकरण की सुविधा सभी बच्चों को मुफ्त प्रदान की जाती है। यह सुविधा उपलब्ध एवं सुलभ होने के बावजूद बहुत से व्यक्ति, परिवार, समुदाय इसका प्रयोग नहीं करते। प्राथमिक स्वास्थ केन्द्र या प्रसूति अस्पताल निकट होने के बावजूद उनका प्रयोग उचित नहीं समझा जाता। वास्तविक व्यापकता का अनुमान लगाने के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि किस स्तर की देखभाल को सम्मलित किया जाएगा। कभी-कभी सुविधाएं उपलब्ध भी होती हैं तथा समुदाय के लोग उन्हें प्रयोग भी करना चाहते हैं परन्तु सुविधा की गुणवत्ता उचित न होने तथा दवाइयों की अनुपलब्धता के कारण लोग सुविधा का उपयोग नहीं करते हैं। सुविधा का उपयोग न करने का एक बड़ा कारण समय की कमी हो सकता है। जैसे एक्स-रे करने का समय दिन में है और दिन में ही लोग अपने काम पर जाने के कारण व्यस्त होते हैं तथा उस सुविधा का प्रयोग नहीं कर पाते।

इसको जानने के लिए निम्नलिखित संकेतकों का प्रयोग किया जाता है:

प्रदत्त सुविधा (टीकाकरण, प्रसव पूर्ण जांच) का जनसंख्या द्वारा उपयोग का अनुपात: इसके लिए जनसंख्या के जिस भाग ने सुविधा का प्रयोग किया हो, उसे कुल जनसंख्या से तुलना कर जानकारी प्राप्त की जाती है। इससे जनसंख्या का वह भाग जो सुविधा का उपयोग नहीं करता, के बारे में जानकारी मिल जाती है। जो लोग सुविधा का उपयोग नहीं करते, उनकी सुविधा न उपयोग करने के कारणों की जानकारी सामुदायिक सर्वेक्षणों से प्राप्त करी जा सकती है।

4. देखभाल की गुणवत्ता

वैसे तो उपयोगिता का संकेतक गुणवत्ता के संकेतक के रूप में ही कार्य करता है। स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं के उपयोग में गुणवत्ता की समस्या परिलक्षित होती है। कुछ सेवाओं का कम, कुछ का ज्यादा एवं कुछ सेवाओं का दुरूपयोग किया जाता है। स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता में सुधार तथा चिकित्सा सुविधा की त्रुटियों को कम करना स्वास्थ्य देखभाल तन्त्र की प्राथमिकता होनी चाहिए। अच्छी स्वास्थ्य देखभाल के लिए तकनीकी रूप से प्रभावी संचार, साझा निर्णय एवं सांस्कृतिक संवेदनशीलता होनी चाहिए। स्वास्थ्य देखभाल में मुख्य गुणवत्ता मरीज की सुरक्षा एवं देखभाल की प्रभावशीलता के रूप में होती है। गुणवत्ता संबंधी समस्याएं वैसे तो हर जगह होती हैं परन्तु यह कम आय वाले देशों में अधिक प्रचलित होती हैं। गुणवत्ता की समस्या ज्यादातर पर्याप्त प्रबन्धन के अभाव, कार्मिकों की आपूर्ति तथा प्रशिक्षण में अपर्याप्तता, कमजोर निगरानी प्रणाली तथा रोगियों एवं परिवारों के पास उचित शक्ति न होने के कारण होती है।

गुणवत्ता मापने के लिए निम्नलिखित संकेतक प्रयोग किए जा सकते हैं:

1. संरचना: संरचना से तात्पर्य स्थापना की विशेषताओं से है जिसमें स्वास्थ्य देखभाल होती है। इसके अन्तर्गत भौतिक संसाधन (उपकरण सुविधा), मानव संसाधन (कार्मिकों की संख्या और उनकी योग्यता) एवं संगठनात्मक संरचना (चिकित्सा कर्मचारी संगठन) आदि तत्व आते हैं।

2. प्रक्रिया: प्रक्रिया से तात्पर्य है कि स्वास्थ्य देखभाल प्रक्रिया में वास्तव में क्या किया जाता है। इसके अन्तर्गत देखभाल के दौरान रोगी की गतिविधि, चिकित्सक की निदान एवं उपचार की गतिविधियां सम्मिलित हैं।

3. परिणाम: यह अन्तिम घटक है। यह रोगी एवं जनसंख्या पर स्वास्थ्य देखभाल के तरीकों का प्रभाव दिखाता है। इसके अन्तर्गत रोगी के स्वास्थ्य की स्थिति (मृत्यु, शारीरिक परेशानी, अन्य बीमारियाँ) आदि सम्मलित हैं।

मोटे तौर पर यदि स्वास्थ्य देखभाल आवश्यकताओं के अनुसार ठीक है तथा किसी को कोई नुकसान नहीं पहुँच रहा है तो स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता अच्छी है। अच्छी गुणवत्ता के अंतर्गत समय से उपचार, अनावश्यक खर्च से बचाव (सिर्फ आवश्यक चिकित्सकीय परीक्षण एवं प्रक्रिया) एवं निष्पक्षता भी आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

1. स्वास्थ्य देखभाल की गुणवत्ता मापने के लिए कौन से संकेतक प्रयोग किए जाते हैं?

....

....

2. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. स्वास्थ्य देखभाल के संकेतक हैं:

1. मातृ मृत्यु दर	2. उपलब्धता
3. जल एवं स्वच्छता	4. बाल मृत्यु दर

b. सेवा उपलब्धता में सम्मलित नहीं है:

1. स्वास्थ्य केन्द्र	2. रेफरेल केन्द्र
3. चिकित्सक	4. खाद्य सुरक्षा

c. स्वास्थ्य देखभाल तक पहुंच की सुलभता के अवयव नहीं हैं:

1. अस्पताल की दूरी	2. अस्पताल तक पहुंच के साधन
3. चिकित्सक की नियुक्ति	4. उपरोक्त में से कोई नहीं

अभ्यास प्रश्नों के उत्तर के पश्चात् आइए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की व्यापकता के बारे में जानें।

3.8 प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की व्यापकता

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का अन्तिम लक्ष्य सभी के लिए बेहतर स्वास्थ्य है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पांच प्रमुख तत्वों की पहचान की है जो निम्नलिखित हैं:

- स्वास्थ्य क्षेत्र में सामाजिक असमानताओं एवं बहिष्कार को कम करना (सार्वभौमिक व्यापकता सुधार)
- लोगों की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के अनुसार स्वास्थ्य सेवाओं का आयोजन (सेवा वितरण सुधार)
- स्वास्थ्य को अन्य सभी क्षेत्रों में एकीकृत करना (जन नीतिगत सुधार)
- सहयोगी मंडल को लक्षित कर नीति वार्ता (नेतृत्व सुधार)
- समुदाय की सहभागिता

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की व्यापकता वास्तव में सार्थक तब मानी जाती है, जब वह राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति से संबंधित सभी सेवाएं प्रदान करे। यहां हम 'अल्माअटा सम्मेलन' में तय किए गये प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के सभी घटकों से संबंधित संकेतकों के विषय में चर्चा करेंगे।

इस संदर्भ में निम्नलिखित संकेतक सम्मलित हैं:

1. स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी एवं शिक्षा
2. जल एवं स्वच्छता
3. मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य
4. टीकाकरण
5. स्थानिक बीमारियों की रोकथाम एवं नियंत्रण
6. आम बीमारियों एवं चोटों का उपचार
7. जरूरी दवाओं का प्रबन्ध
8. रेफरल प्रणाली द्वारा कवरेज
9. जन बल (Man power)

आइए प्रत्येक संकेतक के बारे में चर्चा करें।

1. स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी एवं शिक्षा

समुदाय के लोगों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी एवं शिक्षा प्रदान करना अत्यन्त आवश्यक है। इससे लोगों के व्यवहार एवं अभिव्यक्ति में बदलाव आता है। इस क्षेत्र में सफलता के लिए जनसंख्या के ज्यादा से ज्यादा लोगों को तत्काल चल रही बीमारियों एवं उनके रोकथाम एवं उपचार की विधियों का सही ज्ञान होना चाहिए। स्वास्थ्य संबंधी इस ज्ञान को **स्वास्थ्य साक्षरता** कहा जाता है। इस विषय पर हम साक्षरता के उपशीर्षक में भी बात कर चुके हैं। स्वास्थ्य साक्षरता के संबंध में कोई संकेतक नहीं बनाया गया है, परन्तु इसके लिए जानकारी का प्रसार प्रभावशील तरीके से किया जाना चाहिए। इसके लिए जनसंपर्क माध्यमों (अखबार, रेडियो प्रोग्राम, टेलीविजन, चलचित्र आदि) द्वारा स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्रदान करनी चाहिए। इसके साथ यह देखना भी आवश्यक है कि इन माध्यमों से किस सीमा तक स्वास्थ्य जानकारी प्रचारित की जा रही है। इसके लिए इन माध्यमों से कार्यक्रम की अवधि के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ-साथ यह भी जानना उचित रहता है कि जनसंख्या के कितने भाग या अनुपात के पास रेडियो, टेलीविजन या अखबार की सुविधा है। विकासशील देशों में रेडियो स्वास्थ्य ज्ञान को प्रसारित करने का अच्छा माध्यम है। स्वास्थ्य साक्षरता के विषय में जानने का सबसे अच्छा तरीका समुदाय

सर्वेक्षण है। समुदाय सर्वेक्षणों से आसानी से ज्ञात हो सकता है कि समुदाय के लोगों को स्वास्थ्य संबंधी कितनी जानकारी है एवं क्या-क्या अभाव हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

2. जल एवं स्वच्छता

इस संदर्भ के संकेतक वह हैं जो जल और स्वच्छता तक पहुंच की सुलभता को दर्शाते हों। इसके अन्तर्गत विभिन्न संकेतक जैसे कितने प्रतिशत घरों में पीने का पानी एवं आसपास का वातावरण साफ सुथरा रखने के लिए पानी की उचित मात्रा उपलब्ध है, घरों में पानी के स्रोत की उपलब्धता जैसे पानी कहां से आता है, घर में सरकारी नल, हैन्डपम्प आदि है या नहीं, घरों में नालियों एवं पानी की निकासी का उचित प्रबन्ध भी इस संदर्भ में महत्वपूर्ण संकेतक हैं। जिन घरों में पानी का कोई साधन नहीं है, उन घरों में पानी का साधन घर से कितनी दूरी पर है, संकेतक उपयोगी रहता है। सामान्यतः पानी का साधन जैसे नल, हैन्डपम्प, कुंआ, नदी, तालाब आदि घर से 15 मिनट चल कर जाने की दूरी के अन्दर होना चाहिए।

स्वच्छता के लिए अपशिष्ट निपटान का तरीका भी एक अच्छा संकेतक है। इसे जानने के लिए जनसंख्या का वह अनुपात जो सुरक्षित अपशिष्ट निपटान का प्रयोग करता है, की गणना की जाती है। इसके अंतर्गत मल त्याग, कूड़े-कचरे की व्यवस्था, जल निकासी, शहर में निकासी आदि तत्व आते हैं।

3. मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य

जन्म दर एवं प्रजनन दर, जन्म अन्तराल, मां की आयु आदि प्रजनन स्वास्थ्य के संकेतक हैं। प्रजनन स्वास्थ्य से तात्पर्य न सिर्फ प्रजनन प्रणाली का रोग मुक्त होना है, बल्कि व्यक्ति के प्रजनन संबंधित शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य का भी ध्यान रखना है। प्रजनन स्वास्थ्य कई बातों पर निर्भर करता है, जैसे प्रजनन स्वास्थ्य के विषय में चेतना, जीवन स्तर एवं जीवन शैली, लिंग समानता एवं आर्थिक विकास का स्तर इत्यादि। सामान्य स्वास्थ्य के स्तर को बेहतर बनाने के लिए भी उच्च प्रजनन स्वास्थ्य का होना आवश्यक है। मातृत्व एवं शिशु स्वास्थ्य से संबंधित आंकड़े प्राप्त करने के लिए निम्नलिखत संकेतक प्रयोग किए जाते हैं:

1. मातृ मृत्युदर
2. प्रसव पूर्व देखभाल प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत
3. प्रशिक्षित कर्मियों द्वारा प्रसव कराने का प्रतिशत
4. प्रसवोपरान्त देखभाल प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत

5. परिवार नियोजन के लिए आवश्यक जानकारी, मार्गदर्शन एवं आपूर्ति प्राप्त परिवारों का प्रतिशत
6. परिवार नियोजन के तरीके अपनाने वाली जनसंख्या का प्रतिशत
7. शिशु मृत्यु दर
8. बाल मृत्यु दर
9. पांच साल से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर
10. बीमार बच्चों का प्रतिशत

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के अन्तर्गत मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य महत्वपूर्ण अवयव हैं। इसकी गुणवत्ता मातृ एवं शिशु मृत्यु दर के आंकड़ों से कुछ सीमा तक दिखाई देती है।

4. टीकाकरण

बच्चों के शरीर में रोग प्रतिरक्षण हेतु टीके लगाए जाते हैं जिससे बच्चों के शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। टीकाकरण से बच्चों में कई संक्रामक बीमारियों की रोकथाम होती है तथा समुदाय के स्वास्थ्य स्तर में सुधार होता है। इसके लिए बचपन के प्रमुख संक्रामक रोगों के खिलाफ प्रतिरक्षित बच्चों का प्रतिशत संकेतक के रूप में प्रयोग किया जाता है। जब प्रतिरक्षित बच्चों की संख्या कम होती है तो इस संकेतक का स्वरूप बदल कर गैर प्रतिरक्षित बच्चों का प्रतिशत कर दिया जाता है। प्रतिरक्षण गतिविधि का प्राथमिक उद्देश्य रुग्णता एवं मृत्यु दर में कमी लाना है। इसके लिए पूर्ण रूप से प्रतिरक्षित बच्चों का प्रतिशत सूचकांक भी अध्ययन किया जा सकता है।

5. स्थानिक बीमारियों की रोकथाम व नियंत्रण

उत्तम स्वास्थ्य के लिए स्थानिक बीमारियों एवं रोगों का नियंत्रण आवश्यक है। इसके लिए वह संकेतक अच्छा माना जाता है जो नियंत्रण की सीमा को ज्ञात कर सके। इसके लिए निम्नलिखत संकेतक प्रयोग किए जाते हैं:

1. समुदाय में कौन-कौन से स्थानिक रोग फैले हैं?
2. स्थानिक रोग का प्रसार क्या है?
3. स्थानिक रोग से पीड़ित जनसंख्या का प्रतिशत।
4. स्थानिक रोग से पीड़ित जनसंख्या में से उपचारित जनसंख्या का प्रतिशत।
5. नियंत्रण के लिए बनाये गये कार्यक्रमों की सूची।
6. नियंत्रण वाले कार्यक्रमों की सफलता का प्रतिशत।

7. स्थानिक रोग का प्रसार जनस्वास्थ्य समस्या है या नहीं।

स्थानिक रोगों के नियंत्रण में सामुदायिक भागीदारी को महत्वपूर्ण तत्व माना गया है।

6. आम बीमारियों व चोटों का उपचार

यह भी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल का एक जरूरी घटक है। इस घटक के अन्तर्गत यह जानना जरूरी हो जाता है कि क्या आम बीमारियों एवं चोटों में भी व्यक्ति को भी उचित उपचार मिल जाता है? जैसे बच्चों में अतिसार का उपचार कैसे एवं कितनी गम्भीरता से किया जाता है, क्या उन्हें जीवन रक्षक घोल दिया जाता है आदि। इसके अंतर्गत चोटों के लिए संकेतक जैसे चोट लगने के एक घण्टे के भीतर अस्पताल आने वाले लोगों का प्रतिशत भी सम्मिलित है।

7. जरूरी दवाओं का प्रबन्ध

'अल्माअटा' घोषणा में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के आठ आवश्यक घटकों को रेखांकित किया गया है और आवश्यक दवाओं का प्रावधान उनमें से एक है। दवाएं स्वास्थ्य देखभाल का अभिन्न हिस्सा हैं। आधुनिक स्वास्थ्य देखभाल आवश्यक दवाओं की उपलब्धता के बिना असंभव है। दवाएं न सिर्फ जान बचाती हैं और स्वास्थ्य को बढ़ावा देती हैं अपितु बहुत-सी महामारियों और रोगों की रोकथाम भी करती हैं। दवाएं निःसन्देह बीमारी और बीमारी से लड़ने के लिए आवश्यक मानव जाति के हथियारों में से एक हैं। दवाओं तक सुलभ पहुंच भी हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार है।

जरूरी दवाओं के प्रबन्ध के लिए निम्नलिखित संकेतकों का प्रयोग किया जाता है:

1.जरूरी दवाओं की सूची

2. सूची के अनुसार दवाओं की उपलब्धता

आवश्यक दवाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर वर्ष भर उपलब्ध होनी चाहिए। समय-समय पर सर्वेक्षण से पता चल सकता है कि कौन सी जरूरी दवाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर उपलब्ध हैं और कौन सी नहीं। ऐसे सर्वेक्षणों के समय यह याद रखना चाहिए कि दवाओं की उपलब्धता काफी कम होती है। इसका मुख्य कारण बजट एवं प्रशासनिक तन्त्र की लापरवाही तथा अवहेलना है।

8. रेफरेल प्रणाली द्वारा कवरेज

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की सहायता के लिए रेफरेल प्रणाली की आवश्कयता होती है। रेफरेल अस्पताल की उपलब्धता एवं पहुंच की सुलभता भी उतनी ही आवश्यक है जितनी प्राथमिक

स्वास्थ्य केन्द्र की। किसी वाहन द्वारा आपातकालीन रेफरल अस्पताल तक पहुंचने में 1 से 2 घण्टे से ज्यादा का समय नहीं लगना चाहिए। इसके लिए रेफरेल अस्पताल की पहुंच में जनसंख्या का अनुपात एक महत्वपूर्ण संकेतक होता है। रेफरेल अस्पताल की देखभाल आर्थिक संसाधनों की पहुंच के अन्दर होनी चाहिए। समय-समय पर रेफरेल अस्पताल की जांच होनी चाहिए। जैसे वहां पर उचित सुविधाओं की उपलब्धता, साफ पानी, स्वच्छता आदि की सुविधा है या नहीं।

9. जन बल

स्वास्थ्य देखभाल की उचित कवरेज के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करने के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की उपलब्धता पूर्वपेक्षा है। इन विभिन्न कार्यकर्ताओं के भौगोलिक वितरण का अनुपात महत्वपूर्ण है। यह जानकारी अप्रत्यक्ष रूप से संसाधन आवंटन के संकेतक के रूप में कार्य करती है।

इस संदर्भ में निम्नलिखित संकेतक लाभकारी होते हैं:

- जनसंख्या एवं स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का अनुपात; स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं में चिकित्सक, दंत चिकित्सक, नर्स, औषधि विक्रेता आदि आते हैं।
- चिकित्सक एवं नर्स तथा अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का अनुपात।
- प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल में कार्यरत स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं एवं स्वास्थ्य देखभाल की अन्य श्रेणियों के स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं का अनुपात।
- स्कूल जिनमें स्वास्थ्य शिक्षा हेतु पाठ्यक्रम में बदलाव किया गया है, की संख्या, जिसमें स्वास्थ्य कार्यकर्ता बनाने की नींव रखी जा सके।

अभ्यास प्रश्न 5

---

1. प्राथमिक स्वास्थ्य प्रबन्ध के अवयव बताइये।

   ....

   ....

2. रेफरल प्रणाली से आप क्या समझते हैं?

   ....

   ....

3. जल एवं स्वच्छता संबंधी आँकड़े किन संकेतकों से प्राप्त किए जा सकते हैं?

....

....

4. मातृ स्वास्थ्य संबंधी संकेतक कौन-से हैं?

....

....

5. स्वास्थ्य साक्षरता क्या है?

....

....

अब हम स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतकों के बारे में जानेंगे।

3.9 स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतक

सभी के लिए उत्तम स्वास्थ्य की संकल्पना तभी साकार होगी जब समुदाय के सभी लोग हर स्तर पर अपनी भागीदरी समझें। स्वास्थ्य देखभाल प्रत्येक नागरिक की पहुँच के अन्दर होनी चाहिए। सभी नागरिकों को बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराना सरकार का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिए।
स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतक निम्नलिखित अवयवों से प्राप्त किए जा सकते हैं:

1. पोषण स्तर एवं मनोसामाजिक विकास
2. शिशु मृत्यु दर
3. बाल मृत्यु दर
4. पाँच वर्ष से कम आयु के बच्चों में मृत्यु दर
5. जीवन प्रत्याशा
6. मातृ मृत्यु दर
7. रोग विशिष्ट मृत्यु दर

आइए प्रत्येक के विषय में चर्चा करें।

1. पोषण स्तर एवं मनोसामाजिक विकास

पोषण स्तर एक सकारात्मक स्वास्थ्य सूचक है। मानवमितीय मापों का प्रयोग शारीरिक वृद्धि एवं विकास के आंकलन में प्रयोग किया जाता है। यह माप पोषण स्तर के आंकलन में सर्वाधिक प्रचलित है। वयस्कों में वजन एवं लम्बाई का माप पोषण स्तर की तत्काल स्थिति तो बताता ही है,

इससे बचपन के वृद्धि अवरोध का भी ज्ञान होता है। जन्म के समय का वजन सामुदायिक पोषण में एक महत्वपूर्ण संकेतक है। इस संकेतक को व्यक्त करने के लिए कुल बच्चों की संख्या जिनका जन्म के समय वजन 2500 ग्राम है तथा प्रति हजार जीवित जन्मे बच्चों का अनुपात लिया जाता है।

$$\text{जन्म के समय कम वजन} = \frac{\text{जन्म के समय 2500 ग्राम से कम वजन वाले बच्चों की कुल संख्या}}{\text{कुल जीवित जन्मे बच्चों की संख्या}} \times 1000$$

जन्म के समय कम वजन कई बीमारियों से संबंधित हो सकता है। जैसे मलेरिया, आयोडीन की कमी, माँ का कुपोषित होना। समुदाय में पोषण स्तर जानने के तरीके आप विस्तृत प्रकार से इकाई 2 में पढ़ चुके हैं। समुदाय में पोषण स्तर मापने के लिए आयु के अनुरूप वजन, आयु के अनुरूप लम्बाई एवं लम्बाई के अनुरूप वजन जैसे संकेतक प्रयोग में लाये जाते हैं। तीनों विधियों के अपने लाभ एवं हानियाँ हैं। इसलिए तीनों को एक साथ प्रयोग किया जाता है। जैसे आयु के अनुरूप वजन से बौनेपन (Stunting) तथा दीर्घकालिक कुपोषण का ज्ञान होता है। इससे तत्काल पोषण की स्थिति का भी पता चलता है। इस विधि का प्रयोग समुदायों के पोषण स्तर को आसानी से ज्ञात करने के लिए किया जा सकता है। इस सूचक में समय की छोटी अवधि में भी परिवर्तन देखा जा सकता है। इस विधि की सबसे बड़ी समस्या यही है कि यदि बच्चों की सही आयु का पता न चले तो आंकड़े गलत हो सकते हैं। यही समस्या आयु के अनुरूप लम्बाई संकेतक के साथ आती है। आयु के अनुरूप लम्बाई दीर्घकालिक कुपोषण का संकेतक है।

उपरोक्त सभी संकेतकों में तुलना करने के लिए स्थानीय या अन्तर्राष्ट्रीय मानकों का उपयोग किया जाता है। मानकों से तुलना करते समय अनुवांशिक कारकों को ध्यान में रखना चाहिए।
समुदाय का पोषण स्तर जानने के लिए ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा भी एक अच्छा एवं सटीक संकेतक है। इससे समुदाय के पोषण स्तर का आंकलन तेजी से होता है। इस विधि के साथ कोई परेशानी या कमी जुड़ी हुई नहीं है। मनोसामाजिक विकास के संकेतक भी शारीरिक विकास के संकेतकों की तरह महत्वपूर्ण हैं। परन्तु यह संकेतक अलग-अलग समुदायों के लिए अलग-अलग बनाये जाते हैं।

2. शिशु मृत्यु दर

शिशु मृत्यु दर 1000 जीवित जन्मे शिशुओं में से एक वर्ष या इससे कम आयु में मृत शिशुओं की संख्या है। यह संकेतक न केवल शिशुओं की स्वास्थ्य स्थिति का संकेतक है बल्कि यह पूरी जनसंख्या के स्वास्थ्य का और उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति का भी द्योतक है। इसके साथ-साथ यह स्वास्थ्य देखभाल की उपलब्धता, पहुंच तथा उपयोगिता का भी संवेदनशील संकेतक है। यह प्रसवकालीन स्वास्थ्य देखभाल की स्थिति को दर्शाता है।

3. बाल मृत्यु दर

बाल मृत्यु दर एक वर्ष में प्रति हजार जीवित जन्मों पर 1-4 वर्ष की आयु के बीच के मृत बच्चों की संख्या है। बाल मृत्यु दर में शिशु मृत्यु दर सम्मलित नहीं होता है। यह संकेतक शिशु मृत्यु दर से ज्यादा संवेदनशील संकेतक है। इससे मृत्यु के पर्यावरणीय कारण, बचपन के संचारी रोग, घर में हुई दुर्घटना आदि कारणों का पता चलता है। यह संकेतक निर्धनता एवं सामाजिक आर्थिक दशा का शिशु मृत्युदर से बेहतर संकेतक है। बाल मृत्युदर वास्तव में बच्चों की सम्पूर्ण देखभाल, चाहे वह माता पिता की तरफ से हो या प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की तरफ से, को दर्शाती है।

4. पाँच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर

पाँच वर्ष के सभी बच्चों की मृत्यु दर को शिशु एवं बाल मृत्यु दर दोनों को प्रतिबिंबित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। अकेले शिशु मृत्यु दर के आंकड़ों का उपयोग बड़े बच्चों के बीच उच्च मृत्यु दर पर ध्यान आकर्षित नहीं कर पाता है। बहुत से देशों में बच्चे अपने जीवन के दूसरे वर्ष में कुपोषण के लिए अधिक संवेदनशील होते हैं। यदि उचित ध्यान न दिया जाये तो यह कुपोषण मृत्यु का कारण बन जाता है। पांच वर्ष तक की आयु में होने वाली कुल मौतों के अनुपात की गणना करना आसान है। इसे पांच वर्ष तक की आयु की मृत्यु का अनुपात कहा जाता है। यह संकेतक उच्च जन्म दर को भी दर्शाता है, इसलिए यह संकेतक उच्च बाल मृत्यु दर, उच्च जन्मदर एवं कम जीवन प्रत्याशा को दर्शाता है।

5. जीवन प्रत्याशा

किसी भी जनसंख्या की जीवन प्रत्याशा किसी विशेष औसत आयु तक जनसंख्या के जीवित रहने की सम्भावना है। जन्म के समय जीवन प्रत्याशा शिशु के औसत वर्षों तक जीवित रहने की आशा है। यानि जीवन प्रत्याशा दर्शाती है कि जन्म के बाद बच्चा औसतन कितने साल तक जीवित रहेगा या कह सकते हैं कि व्यक्ति की औसत मृत्यु आयु उसकी जीवन प्रत्याशा है।

जीवन प्रत्याशा सामाजिक आर्थिक विकास का एक अच्छा संकेतक है। विकसित देशों में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा अधिक होती है। जीवन प्रत्याशा में लिंग मतभेद महत्वपूर्ण हो सकता है तथा जन्म के समय जीवन प्रत्याशा उच्च शिशु मृत्यु दर से प्रभावित होती है। एक वर्ष की आयु में जीवन प्रत्याशा में शिशु मृत्यु दर के प्रभाव शामिल नहीं होते हैं। इसी तरह 5 वर्ष की आयु में बाल मृत्यु दर के प्रभाव को शामिल नहीं किया जाता है। किसी भी देश के विकास के आंकलन में जीवन प्रत्याशा एक महत्वपूर्ण संकेतक के रूप में देखा जाता है। परन्तु इस संकेतक की गणना आसान नहीं है क्योंकि यह जनसंख्या की आयु तथा संरचना के ज्ञान और प्रत्येक आयु वर्ग में हुई लोगों की मृत्यु के आंकड़ों पर निर्भर करती है। जीवन प्रत्याशा वास्तव में लम्बे समय तक जीवित रहने का एक संकेतक है। इस संबंध में यह एक सकारात्मक स्वास्थ्य सूचक के रूप में माना जाता है।

6. मातृ मृत्यु दर

यह संकेतक माताओं में गर्भावस्था एवं प्रसव के दौरान जोखिम को दर्शाता है। यह समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, पोषण, स्वच्छता एवं मातृ स्वास्थ्य देखभाल जैसे कारकों से प्रभावित होता है। इसकी गणना के लिए शिशु जन्म के कारण होने वाली महिला मृत्यु की संख्या को कुल जीवित शिशु संख्या से भाग देकर 100,000 से गुणा किया जाता है। एक वर्ष में प्रति 100,000 जीवित जन्मों पर प्रति महिला मृत्यु वार्षिक मातृ मृत्यु दर कहलाती है। इस संदर्भ में कुछ तथ्य आप इकाई के पहले भाग में पढ़ चुके हैं। महिलाओं के स्वास्थ्य तथा उनके पोषण की स्थिति उनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारकों पर निर्भर होती है। इसका प्रभाव मात्र उस महिला पर नहीं पड़ता अपितु उसके बच्चों के स्वास्थ्य, घरेलू साधारण क्रिया कलापों तथा विभिन्न साधनों के वितरण पर भी पड़ता है। मातृ जीवन की रक्षा के लिए शिक्षित एवं प्रशिक्षित दाइयों एवं स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की नियुक्ति अति आवश्यक है।

7. रोग विशिष्ट मृत्यु दर

बीमार या रोगग्रस्त होने की अवस्था को रुग्णता कहते हैं। विशिष्ट रोगों जैसे संचारी रोग के कारण हुई मृत्यु की गणना की जा सकती है। यह रोग विशेष से होने वाली मृत्यु की संख्या एवं कुल मृत्यु के अनुपात का प्रतिशत है। इससे रोगों के प्रसार एवं उनकी भयावहता का पता चलता है तथा नये अनुसंधानों एवं शोधों के लिए विचार प्राप्त होते हैं।

इन सब संकेतकों के अतिरिक्त रुग्णता दर, अतिपोषण दर आदि भी स्वास्थ्य संकेतकों के रूप में प्रयोग किए जा सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 6

1. मातृ मृत्यु दर के मुख्य कारण क्या हैं?

   ....

   ....

2. जीवन प्रत्याशा को संकेतक के रूप में प्रयोग क्यों किया जाता है?

   ....

   ....

3. स्वास्थ्य के कुछ आधारभूत संकेतकों के नाम बताइये।

   ....

   ....

4. शिशु मृत्यु दर एवं बाल मृत्यु दर में क्या अन्तर है?

   ....

   ....

5. मातृ मृत्यु दर को कम करने के दो उपाय बताइये।

   ....

   ....

6. पांच साल तक की आयु की मृत्यु दर क्या दर्शाती है?

   ....

   ....

7. जन्म के समय कम वजन से क्या तात्पर्य है?

   ....

   ....

3.10 सारांश

जीवन संबंधी सांख्यिकी आंकड़ों के माध्यम से स्वास्थ्य लक्ष्यों को प्राप्त करने की प्रगति की जानकारी एवं निगरानी दोनों ही रखी जाती हैं। जीवन संबंधी सांख्यिकी के लिए विभिन्न संकेतक प्रयोग में लाये जाते हैं। जन्म दर प्रति हजार जीवित शिशुओं की जन्म संख्या है। मृत्यु दर प्रति वर्ष

प्रति हजार मृतक संख्या है। प्रति 100,000 जीवित प्रजनन में गर्भधारण एवं प्रजनन के कारण मरने वाली माताओं की संख्या मातृ मृत्यु दर है। शिशु जन्मदर 1000 जीवित जन्मे शिशुओं में से एक वर्ष या इससे कम आयु में मृत शिशुओं की संख्या है। इसके अन्तर्गत नवजात शिशु मृत्युदर एवं जन्मोत्तर काल शिशु मृत्यु दर सम्मलित होते हैं। कुल प्रजनन दर जानने के लिए प्रजनन योग्य महिलाओं को छोटे-छोटे आयु वर्गों में बांट कर उन आयु वर्गों की अलग-अलग प्रजनन दर निकाल कर जोड़ लेते हैं। इसके बाद प्राप्त योग को आयु वर्गान्तर से गुणा कर देते हैं। नवजात शिशु के जीवित रहने की प्रत्याशा जीवन प्रत्याशा कहलाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य नीति के पांच संकेतक; राजनीतिक प्रतिबद्धता, संसाधन आवंटन, संसाधन वितरण, सामुदायिक भागीदारी एवं संगठनात्मक ढांचा और प्रबंधकीय प्रक्रिया बताये हैं। सामाजिक एवं आर्थिक संकेतक के अन्तर्गत जनसंख्या वृद्धि दर, सकल घरेलू उत्पाद, आय का वितरण, कार्य का माहौल, साक्षरता दर, आवासीय सुविधा, खाद्य पदार्थों की उपलब्धता आदि आते हैं। स्वास्थ्य देखभाल के संकेतकों में स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता, पहुंच की सुलभता, सेवाओं की उपयोगिता एवं देखभाल की गुणवत्ता सम्मलित हैं। प्राथमिक स्वास्थ्य कवरेज में स्वास्थ्य शिक्षा, जल एवं स्वच्छता, मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य, टीकाकरण, स्थानिक बीमारियों की रोकथाम एवं नियंत्रण, आम बीमारियों तथा चोटों का उपचार, जरूरी दवाओं का प्रबन्ध, रेफरल प्रणाली द्वारा कवरेज एवं जन बल आते हैं। स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतकों में पोषण स्तर, शिशु मृत्यु दर, बाल मृत्यु दर, जीवन प्रत्याशा, मातृ मृत्यु दर एवं विशिष्ट रोग मृत्यु दर सम्मलित हैं।

3.11 पारिभाषिक शब्दावली

- **संकेतक:** मापने का पैमाना।
- **जन सांख्यिकीय:** जीवन-मरण संबंधी।
- **संसाधन:** उपयोग में आने वाली वस्तुएं, मनुष्य।
- **रुग्णता:** बीमार या रोगग्रस्त होने की अवस्था।
- **जीवित जन्म:** एक जीवित जन्म उस अवस्था को कहते हैं जब एक भ्रूण मातृ शरीर से बाहर निकलता है (चाहे वह गर्भावस्था की अवधि के दौरान हो) एवं बाद में जीवन संकेत दिखता है। जैसे दिल की धड़कन या गर्भनाल में धड़कन आदि।
- **साक्षरता:** पढ़ने-लिखने की क्षमता से सम्पन्न होना।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
    a. एक वर्ष में हुए जीवित जन्म
    b. एक वर्ष में मृतकों की संख्या
    c. नवजात मृत शिशुओं की संख्या (0-28 दिन के मध्य)
    d. 1000
    e. क्योंकि दोनों ही मान औसत हैं।
    f. मातृ मृत्यु अनुपात में मातृ मृत्यु संख्या को जीवित शिशु संख्या से भाग देकर 100000 से गुणा किया जाता है। जबकि मातृ मृत्यु दर में मातृ मृत्यु संख्या को प्रजनन आयु की महिलाओं की कुल संख्या से भाग किया जाता है।
    g. जनसंख्या में वृद्धि होती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. स्वास्थ्य नीति से, नेताओं के भाषण, सरकारी रिपोर्टों से।
2. अपनी समस्याएं सीधे बताकर।

अभ्यास प्रश्न 3

1. इकाई मूल का भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 4

1. इकाई का मूल भाग देखें।
2. बहु विकल्पीय प्रश्न
    a. 3
    b. 4
    c. 3

अभ्यास प्रश्न 5

1. इकाई का मूल भाग देखें।

2. जब रोगी को उचित उपचार हेतु किसी दूसरे बड़े अधिक सुविधाओं से युक्त अस्पताल में भेजा जाता है।
3. पानी कहां से आता है, निकासी का प्रबन्ध, मल-मूत्र त्याग की व्यवस्था।
4. मातृ मृत्यु दर/शिशु मृत्यु दर
5. स्वास्थ्य को उचित रखने की जानकारी।

अभ्यास प्रश्न 6

1. मातृ कुपोषण, कम आयु, बीमारी, अपर्याप्त देखरेख
2. क्योंकि यह स्वास्थ्य वृद्धि को दर्शाता है।
3. बाल मृत्युदर, शिशु मृत्यु दर, पोषण स्तर
4. शिशु मृत्यु दर (एक वर्ष से पहले)
5. उचित देखरेख एवं पर्याप्त खुराक
6. उच्च जन्म दर एवं निम्न जीवन प्रत्याशा
7. शिशु 2.5 किलो से कम वजन का हो।

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- World Health Organization 1980. Development of Indicators for monitoring progress towards health for all by the year 2000. Geneva. 92p.
- wholibdoc.who.int/publications/9241800038.pdf
- Rao.K Visweswara. 2007. Biostatistics: A manual of statistical methods for use in health, nutrition and anthropology. Jaypee Brothers publishers. 725 p.

इंटर्नेट स्रोत

- www.jsk.gov.in

3.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. जीवन संबंधी सांख्यिकीय आंकड़ों की उपयोगिता क्या है?
2. स्वास्थ्य नीति एवं स्वास्थ्य देखरेख के संकेतकों का वर्णन कीजिए।

3. सामाजिक आर्थिक संकेतक कौन-कौन से हैं? ये संकेतक स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर को कैसे प्रभावित करते हैं?
4. प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के अवयवों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
5. स्वास्थ्य के आधारभूत संकेतकों का वर्णन कीजिए एवं उनकी उपयोगिता समझाइये।

खण्ड 2: सामुदायिक पोषण कार्यक्रम

इकाई 4: राष्ट्रीय सामुदायिक पोषण कार्यक्रम

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 समेकित बाल विकास सेवाएं (आई0 सी0 डी0 एस0)
4.4 मध्याह्न भोजन योजना (मिड डे मील स्कीम)
4.5 विशिष्ट पोषण योजना (स्पेशल न्यूट्रीशन प्रोग्राम/एस0 एन0 पी0)
4.6 बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम
4.7 बालकों का टीकाकरण कार्यक्रम
4.8 साप्ताहिक लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरक कार्यक्रम
4.9 विटामिन ए की कमी से होने वाली अंधता से बचाव हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम
4.10 राष्ट्रीय आयोडीन अल्पता विकार नियंत्रण कार्यक्रम
4.11 राष्ट्रीय पोषण सम्बन्धी रक्ताल्पता रोगनिरोधी कार्यक्रम
4.12 पोषण अभियान
4.13 सारांश
4.14 पारिभाषिक शब्दावली
4.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.17 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

किसी भी देश में बच्चों को सर्वोच्च एवं प्राथमिक संसाधन के रूप में देखा जाता है। ऐसा इसलिये क्योंकि राष्ट्र का भविष्य एवं प्रगति की दिशा का निर्धारण बच्चों द्वारा ही तय किया जाता है। ऐसे में बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। यह भविष्य में होने वाली कई समस्याओं के निराकरण में सहायक है। बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर का प्रत्यक्ष संबध माता के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर से है। अतः माताओं का स्वस्थ होना भी उतना ही आवश्यक है। विकासशील देशों में अभी भी मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को कम कर पाना एक बड़ी चुनौती है। सही समय पर उचित पोषण, देखभाल एवं बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं के प्रबन्धन से इस समस्या का निवारण एक सीमा तक किया जा सकता है। भारत सरकार मातृ एवं शिशु कल्याण हेतु कटिबद्ध है

तथा इस दिशा में समयसमय पर कई योजनाओं एवं कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया गया है - जिसका प्रत्यक्ष एवं सकारात्मक लाभ बेहतर स्वास्थ्यआंकड़ों के रूप में दिखाई देता है। प्रस्तुत अध्याय में हम इन्हीं योजनाओं एवं कार्यक्रमों की चर्चा करेंगे।

4.2 उद्देश्य

राष्ट्रीय स्तर पर चलाई जा रही इन योजनाओं का विशिष्ट महत्व है। ये कार्यक्रम न केवल व्यैक्तिक स्तर पर लाभकारी हैं अपितु विगत कुछ वर्षों में बेहतर मानव संसाधन एवं मजबूत अर्थव्यवस्था के लिये आधार स्तम्भ के रूप में भी उभरे हैं। सामुदायिक पोषण विज्ञान के विद्यार्थियों के लिये इनका ज्ञान होना अति आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप;

- भारत में संचालित विभिन्न राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रमों एवं क्रियान्वयन संस्थानों की मूल अवधारणा, उद्देश्य, कार्यपद्धति, आच्छादन क्षेत्र एवं संबधित लक्ष्य समूहों को समझ सकेंगे;
- समुदाय विशेष की स्वास्थ्य एवं पोषण समस्याएं एवं इनके निवारण को भली भाँति समझ कर समुदाय के पोषण संर्वधन में इनका महत्व समझ सकेंगे; तथा
- सतत् विकास हेतु महत्वपूर्ण घटक के रूप में पोषण एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के मध्य अन्तर्सम्बंध समझ पाएंगे।

4.3 समेकित बाल विकास सेवाएं (आई0 सी0 डी0 एस0)

भारत में शिशु कल्याण कार्यक्रमों में आई0सी0डी0एस0 एक प्रमुख कार्यक्रम है। इस कार्यक्रम की नींव 1975 में समाज कल्याण विभाग द्वारा डाली गयी। इस परियोजना को अक्टूबर 1975 में स्वीकृति दी गयी। प्रारम्भिक अवस्था में यह 33 परियोजनाओं (4 शहरी, 19 ग्रामीण तथा 10 जन जातीय क्षेत्रों) के रूप में संचालित किया गया। इसके पश्चात भारत सरकार द्वारा 1978-79 में इस कार्यक्रम का अतिरिक्त सौ क्षेत्रों में विस्तारीकरण किया गया। सन् 2005-2006 से पूर्व शिशुओं को सम्पूरक आहार प्रदान करना राज्यों का उत्तरदायित्व था तथा प्रशासनिक स्तर पर इसका मूल्य केन्द्रीय सरकार द्वारा दिया जाता था। अब इसमें संशोधन के बाद भारत सरकार द्वारा सहायता राशि मानकों को परिवर्तित कर 50 प्रतिशत वित्तीय सहायता राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों को दी जाती है तथा 50 प्रतिशत वित्तीय सहायता स्वयं राज्यों/केन्द्रशासित प्रदेशों द्वारा वहन की जाती है।

आई0सी0डी0एस0 का प्रमुख उद्देश्य भारत में पूर्व बाल्यावस्था संबधी समस्त सेवाएं उपलब्ध कराकर राष्ट्र के मानव संसाधनों के समुचित विकास की नींव डालना है। इन सेवाओं में सम्मिलित हैं; पूरक आहार, टीकाकरण, महिलाओं हेतु पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा, चिकित्सकीय संप्रेक्षण सुविधाएं (रेफरल), गर्भवती एवं धात्री महिलाओं हेतु सुविधाएं, 6 वर्ष तक की आयु के बालकों हेतु अनौपचारिक शिक्षा विशेषकर ग्रामीण, शहरी बस्तियों तथा जनजातीय क्षेत्रों में रहने वाले बालक।

आई0सी0डी0एस0 सेवाओं के प्रमुख उद्देश्य:

1. 0-6 वर्ष तक की आयु के बालकों के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार लाना।
2. बालक के सम्पूर्ण (मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास) की समुचित नींव डालना।
3. मृत्यु दर, कुपोषण तथा बालकों द्वारा विद्यालय छोड़ देने की दर में कमी लाना।
4. शिशु विकास हेतु समर्पित समस्त संस्थाओं के मध्य एक प्रभावी समन्वय स्थापित करना।
5. स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा के माध्यम से मातृ कला एवं शिशु पालन पोषण योग्यताओं को बढ़ावा देना।उपरोक्त सेवाओं के उद्देश्य एवं लक्षित समूह को आई0सी0डी0एस0 के परिप्रेक्ष्य में निम्नवत् समझा जा सकता है।

क्रमांक	लक्षित समूह	सेवाएं
1.	गर्भवती स्त्री	स्वास्थ्य परीक्षण, टिटेनस टीकाकरण, पूरक आहार, पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा
2.	धात्री महिलाएं	स्वास्थ्य परीक्षण, पूरक आहार, पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा
3.	15-45 वर्ष आयु की महिलाएं	पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा
4.	तीन वर्ष से कम आयु के बालक	पूरक आहार, टीकाकरण, स्वास्थ्य परीक्षण, चिकित्सकीय सुविधाएं
5.	3-6 वर्ष की आयु के बालक	पूरक आहार, टीकाकरण, स्वास्थ्य परीक्षण, चिकित्सकीय सुविधाएं, अनौपचारिक शिक्षा
6.	11-18 वर्ष की किशोरियां	पूरक आहार, पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा

आई0सी0डी0एस0 सेवाएं

1. पूरक आहार

निम्न आय वर्ग के एवं 6 वर्ष से कम बालकों, गर्भवती महिलाओं तथा दुग्धपान कराने वाली स्त्रियों को पूरक आहार प्रदान किया जाता है। पूरक आहार का प्रकार एवं वितरण, स्थानीय उपलब्धता, लाभार्थियों के प्रकार, परियोजना के स्थान इत्यादि पर निर्भर करता है। पूरक आहार, लाभार्थियों की पोषक आवश्यकता को सम्पूरित करने में सहायक होना आवश्यक है।

इस कार्यक्रम के प्रमुख बिन्दु हैं।
1.6-72 माह/6 वर्ष की आयु तक के बालकों को प्रतिदिन 500 कैलोरी तथा 12-15 ग्राम प्रोटीन (4 रूपये प्रति बालक) बजट के अनुसार उपलब्ध कराना।
2.अति कुपोषित (Severely Malnourished) बालकों हेतु 800 कैलोरी प्रतिदिन के बजट अनुसार उपलब्ध कराना।
3.प्रत्येक गर्भवती तथा धात्री स्त्री को 600 कैलोरी तथा 18-20 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध कराना (5 रूपये प्रति बालक) बजट के अनुसार।

नवीन एवं परिवर्तित मानकों के अनुसार समस्त राज्यों को उन सभी शिशुओं को एक या अधिक आहार उपलब्ध कराने आवश्यक होंगे। उदाहरण दूध, केला, अंडा, मौसमी फल के रूप में प्रातः कालीन आहार देना आवश्यक होगा ताकि सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी पूरी हो सके। दोपहर का सम्पूरित आहार पके हुए खाद्य के रूप में दिया जाना अनिवार्य होगा। तीन वर्ष से कम आयु तथा गर्भवती एवं धात्री स्त्रियों को राशन घर ले जाने की सुविधा प्रदान किये जाने का भी प्रावधान है। इस योजना का स्वरूप सार्वभौमिक है। योजना में पंजीकरण के लिये लाभार्थियों का गरीबी रेखा से नीचे होना बाध्यता नहीं है। सम्पूरक आहार वर्ष में 300 दिन दिया जाता है, इस हेतु वित्तीय सहायता राज्यों द्वारा न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Need Programme) के अंतर्गत प्रदान की जाती है। वृद्धि अनुवीक्षण के अंतर्गत प्रत्येक बालक का भार प्रति माह लिया जाता है। लाभार्थियों को कुपोषण की श्रेणियों में बाँटा जाता है। ग्रेड प्रथम या प्रथम श्रेणी कुपोषण से ग्रस्त बालकों/स्त्रियों को स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत जागरूक किया जाता है। द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी से कुपोषित बालकों/शिशुओं को सम्पूरक आहार प्रदान किया जाता है। अति कुपोषित बालकों को चिकित्सा केन्द्र में भर्ती कर तुरन्त उपचार किया जाता है।

2. पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा

आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं की विशेष भेंट के दौरान इस प्रकार की शिक्षा, विशेषकर लाभार्थी समूहों को ध्यान में रखकर प्रदान की जाती है। पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा 14-15 वर्ष की आयु की किशोरियों तथा गर्भवती एवं धात्री महिलाओं को विशेषतया प्रदान की जाती है।

3. टीकाकरण

गर्भवती स्त्रियों को टिटेनस संक्रमण के प्रति तथा अन्य 6 जानलेवा बीमारियों के प्रति टीकाकरण कर सुरक्षित किया जाता है।

4. स्वास्थ्य परीक्षण

इसमें निम्न सेवाएं सम्मिलित हैं:

- प्रसव पूर्व गर्भवती स्त्री की देखभाल एवं सुरक्षा।
- प्रसवोपरान्त माँ तथा शिशु की देखभाल एवं सुरक्षा।
- 6 वर्ष से कम आयु के शिशु की देखभाल एवं सुरक्षा।
- गर्भवती स्त्रियों को लौह लवण एवं फोलिक अम्ल तथा प्रोटीन सम्पूरक प्रदान करना।
- 6 माह तक अनिवार्य रूप से नियमित चिकित्सा परीक्षण (न्यूनतम तीन बार)।
- गंभीर रूप से अस्वस्थ महिलाओं एवं शिशुओं को चिकित्सालय में भर्ती किया जाना।

छः वर्ष की आयु से कम बालकों की सुरक्षा हेतु उपलब्ध विकल्प निम्नवत् है।

1. एक नियत समय पर शिशु का भार तथा ऊँचाई माप कर वृद्धि का अनुवीक्षण किया जाता है।
2. शिशु द्वारा अपेक्षित विकासात्मक कार्य समयानुसार प्राप्त किये गये हैं अथवा नहीं, पर दृष्टि रखना।

4.4 मध्याह्न भोजन योजना (मिड डे मील स्कीम)

मध्याह्न भोजन योजना अथवा मिड डे मील स्कीम, भारत सरकार तथा राज्य सरकार के समेकित प्रयासों से संचालित एक राष्ट्रव्यापी योजना है। यह योजना भारत सरकार द्वारा 15 अगस्त 1995 से लागू की गई जिसके अंतर्गत कक्षा 1 से 5 तक के सभी सरकारी/परिषदीय/राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त प्राथमिक स्कूलों में पढ़ने वाले सभी बच्चों को 80 प्रतिशत उपस्थिति पर प्रति माह 03 किलोग्राम गेहूं अथवा चावल दिये जाने की व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत समस्या यह थी कि छात्रों को खाद्यान्न उनके परिवार के मध्य बँट जाता था जिससे छात्र को उसकी प्रस्तावित आहार मात्रा के अनुसार वांछित पोषक तत्व प्राप्त नहीं हो पाते थे।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 28 नवम्बर 2001 को दिये गये निर्देश के अनुपालन में राज्य सरकार द्वारा मध्याह्न भोजन के अंतर्गत लाभार्थियों को पके हुए खाद्यान्न/आहार (Cooked

Meal) दिये जाने का प्रावधान आरम्भ किया गया। यह योजना अत्यधिक सफल योजनाओं में से एक है तथा लाभार्थियों के मध्य इसकी लोकप्रियता को देखते हुए इसे विस्तारित कर उच्च प्राथमिक विद्यालयों, समस्त ब्लॉकों एवं ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों को भी इसके अन्तर्गत आच्छादित किया गया।

मध्याह्न भोजन योजना के उद्देश्य

1. समस्त सरकारी, स्थानीय निकायों, सहायता प्राप्त विद्यालयों, मदरसा एवं अन्य समस्त संस्थाओं के कक्षा एक से आठ तक के समस्त विद्यार्थीयों (पंजीकृत) को पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना ।

2. पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराकर बालकों की पोषण आवश्यकताओं को पूर्ण करना तथा बच्चों में शिक्षा ग्रहण करने की क्षमता को विकसित करना।

3. विद्यालयों में छात्रों की उपस्थिति एवं नामांकन (enrollment) बढ़ाना।

4. "स्कूल ड्राप आउट रेट" (बच्चों द्वारा अपनी प्राथमिक शिक्षा बीच में ही अधूरी छोड़ देने की दर) को कम करना। साथ ही विद्यालय के "शैक्षणिक माहौल तथा सीखने की लालसा" के प्रति बालकों की रुचि जागृत करना।

5. बच्चों में भाईचारे की भावना विकसित करना तथा विभिन्न जातियों एवं धर्मों के मध्य अंतर को दूर करने तथा एक दूसरे के धर्म के प्रति सम्मान उत्पन्न करने हेतु उन्हें एक साथ बिठाकर भोजन कराना।

योजनार्न्तगत भोजन

मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत बच्चों को मध्याह्न में (इन्टरवल में) पका हुआ आहार प्रदान किया जाता है। प्रत्येक छात्र को सप्ताह में 4 दिन चावल से बने भोज्य पदार्थ तथा 2 दिन गेहूं से बने भोज्य पदार्थ दिये जाने का प्रावधान है। इस योजना के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा प्राथमिक स्तर पर 150 ग्राम प्रति छात्र प्रतिदिन की दर से खाद्यान्न (गेहूं/चावल) उपलब्ध कराया जाता है। प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध कराये जा रहे भोजन में कम से कम 450 कैलोरी ऊर्जा व 12 ग्राम प्रोटीन एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कम से कम 700 कैलोरी ऊर्जा व 20 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध होना अनिवार्य है। मेनू में स्थानीय खाद्य पदार्थों का समावेश किया जाना भी आवश्यक किया गया है। मध्याह्न भोजन स्वादिष्ट, पौष्टिक एवं आकर्षक होना चाहिये। इसके लिए मध्याह्न भोजन की विधिवता हेतु सप्ताह के प्रत्येक कार्य दिवस में भिन्न-भिन्न प्रकार का भोजन दिये जाने की व्यवस्था है। पौष्टिकता के साथ-साथ भोजन बालकों की रुचि के अनुरूप होना आवश्यक है।

मध्याह्न भोजन योजना एवं समुदाय प्रतिभागिता

मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत समुदाय प्रतिभागिता को प्रोत्साहित किया जाता है ताकि योजनान्तर्गत आच्छादित बालकों की माताएं "भोजन तैयार करने से लेकर बालकों को परोसने तक की प्रक्रिया का निरीक्षण" स्वयं कर सकें। इस हेतु माताओं को बारी-बारी से प्रोत्साहित किया जाता है। इस प्रकार योजना का "मातृ अवलोकन" योजना की पारदर्शिता को बढ़ाते हैं, साथ ही सरकार की प्रतिबद्धता के विषय में उनके स्वर को शक्ति देते हैं।

आंकड़ों एवं विभिन्न आख्याओं के द्वारा स्पष्ट हुआ है कि कई राज्यों में (उदाहरण के लिये छत्तीसगढ़) में माताओं के इस अंतक्षेप से योजना के कार्यान्वयन, भोजन गुणवत्ता, पौष्टिकता, छात्रों की उपस्थिति, नामांकन, अध्यापकों के दृष्टिकोण, शैक्षिक वातावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस सफलता को देखकर अन्य राज्यों में भी इसका अनुसरण किया जाने लगा है। उत्तराखण्ड राज्य में छात्राओं की माताओं में से ही भोजन माता एवं सहायिका को नियुक्त किया जाता है, जिससे कार्यक्रम/योजना को वास्तविक अर्थों में प्रभावी बनाया जा सके। राज्य सरकार इस योजना के लिए माताओं की प्रतिभागिता को महत्व देकर गतिमान बनाने हेतु प्रतिबद्ध हैं।

मध्याह्न भोजन योजना द्वारा प्रदत्त पौष्टिक मान

प्रस्तुत तालिका 4.1 में मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत उपलब्ध खाद्य पदार्थों एवं उनसे प्राप्त पोषक मान को दर्शाया गया है।

तालिका 4.1: मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत खाद्य पदार्थों का पौष्टिक मान

क्रम संख्या	**खाद्य पदार्थ**	**प्राइमरी मिड डे मील के अंतर्गत आवश्यकता**	**ऊर्जा (कैलोरी)**	**प्रोटीन (ग्राम)**	**अपर प्राइमरी मिड डे मील के अंतर्गत आवश्यकता**	**ऊर्जा (कैलोरी)**	**प्रोटीन (ग्राम)**
1.	खाद्यान्न चावलगेहूँ/	100 ग्राम	340	8	150 ग्राम	510	14
2.	दालें	20 ग्राम	70	5	30	105	6.6
3.	सब्जियाँ	50 ग्राम	25	-	75	37	-

4.	तेल वसा/	आवश्यकतानुसार	-	-	-	-	-
5.	नमक एवं मसाले	आवश्यकतानुसार	-	-	-	-	-
		कुल	**480**	**13**		**720**	**20.6**

4.5 विशिष्ट पोषण योजना (स्पेशल न्यूट्रीशन प्रोग्राम/एस0 एन0 पी0)

वर्ष 1968 में श्री तिरू गंगा चरन सिन्हा की अध्यक्षता में समाज कल्याण विभाग (भारत सरकार) द्वारा शिशुओं और बालकों की विभिन्न आवश्यकताओं एवं अल्प एवं दीर्घकालीन कार्यक्रमों (कुपोषण से लड़ने हेतु) के संबध में एक विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया। समिति ने पाया कि भारत की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था में कुपोषण एक श्राप के समान है तथा सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े बालकों के लिये तथा गर्भवती एवं स्तनपान कराने वाली महिलाओं के लिये कुछ विशेष पोषण कार्यक्रमों को लाए जाने की आवश्यकता है। कुपोषण का सर्वाधिक बुरा प्रभाव 0-6 वर्ष तक के बालकों पर पड़ता है। अतः इस आयु वर्ग के विशेषकर सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग के बालकों को सम्पूरक पोषण यदि प्रदान किया जाये तो एक स्वस्थ पीढ़ी का निर्माण हो सकेगा।

इन सभी उद्देश्यों के दृष्टिगत विशिष्ट पोषण कार्यक्रम का आरम्भ वर्ष 1970-71 में किया गया। आरम्भ में जनजातीय समूह, मलिन बस्ती के 0-3 वर्ष के बालकों को इसमें सम्मिलित किया गया तथा लगभग 20 लाख बच्चे इससे लाभान्वित होने की अपेक्षा की गई। बाद के वर्षों में वित्तीय उपलब्धता के अनुसार इस संख्या में वृद्धि करने का प्रयास किया गया। इस कार्यक्रम को प्रारम्भ में केन्द्रीय कार्यक्रम के रूप में संचालित किया गया परन्तु बाद में पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में इसको राज्यों को हस्तांतरित कर दिया गया। छठी एवं सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान इस कार्यक्रम को "समेकित बाल विकास सेवाओं" के समान परिवर्तित कर दिया गया, साथ ही कार्यक्रम के सशक्तिकरण हेतु इसमें स्वास्थ्य एवं अन्य आवश्यक सेवाओं का भी समावेश किया गया। इस कार्यक्रम द्वारा कई लाख बच्चे लाभान्वित हुए हैं। यह कार्यक्रम में विद्यालय जाने वाले बालकों को अतिरिक्त 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन तथा गर्भवती एवं धात्री महिलाओं को लगभग 500 कैलोरी एवं 25 ग्राम प्रोटीन सप्ताह में 6 बार प्रदत्त कराया जाता है। इस कार्यक्रम का संचालन "न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम" के अंतर्गत किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में मुख्यतया निम्न

सामाजिक आर्थिक समूहों, जनजातीय क्षेत्रों, मलिन एवं निर्धन बस्तियों के लोग इस के लक्षित लाभार्थी हैं। यह कार्यक्रम समेकित बाल विकास सेवाओं के पोषक घटक कार्यक्रमों के लिये बजट प्रदान करता है।

कार्यक्रम का उद्देश्य

इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य विद्यालय जाने वाले बालकों एवं गर्भवती तथा धात्री माताओं के पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर में वृद्धि करना है। लाभार्थियों के चयन में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि लाभार्थी सामाजिक-आर्थिक स्तर से पिछड़े, जनजातीय समूहों एवं सूखा, बाढ़, दुर्गम क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हों।

कार्यक्रम की गतिविधियाँ

इस कार्यक्रम की प्रमुख गतिविधियों में सम्मिलित है सम्पूरक पोषण प्रदान करना तथा विटामिन 'ए' घोल, लौह लवण तथा फोलिक अम्ल की गोलियाँ लाभार्थी को उपलब्ध कराना। सम्पूरक पोषण 6 से 72 माह के शिशुओं हेतु 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन प्रति बालक प्रति दिवस उपलब्ध कराया जाता है। अति कुपोषित बालकों को 600 कैलोरी तथा 20 ग्राम प्रोटीन प्रति दिवस तथा लौह लवण एवं फोलिक अम्ल की गोलियाँ उपलब्ध कराई जाती हैं। इस कार्यक्रम की मूल्य लागत समेकित बाल विकास योजनाओं की भाँति ही है।

योजना के अंतर्गत लाभार्थियों हेतु प्रावधान

1.6 माह से तीन वर्ष तक की आयु के बालकों हेतु 500 कैलोरी ऊर्जा, 12-15 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन प्रति बालक टेक होम राशन (घर ले जाने वाले खाद्यान्न) के रूप में सूक्ष्म पोषक तत्व संवर्धित आटा एवं विभिन्न खाद्यान्न।

2.3-6 वर्ष की आयु के बालक हेतु 500 कैलोरी ऊर्जा, 12-15 ग्राम प्रति बालक प्रति दिवस सम्पूरक खाद्य। चूंकि इस आयु का बालक एक समय में 500 कैलोरी ऊर्जा का उपभोग नहीं कर पाता है, अतः इस संबध में प्रातः कालीन अल्पाहार के विभिन्न प्रावधान जैसे दूध, केला, मौसमी फल, ताजा पका हुआ आहार इत्यादि भी दिये जा सकते हैं।

3.अति कुपोषित बालक हेतु 800 कैलोरी ऊर्जा तथा 20-25 ग्राम प्रोटीन युक्त सम्पूरक खाद्य जो सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त आटे एवं अन्य खाद्यान्न के रूप में प्रदान किया जाता है।

4.गर्भवती एवं धात्री महिलाओं को सम्पूरक आहार के रूप में 600 कैलोरी ऊर्जा तथा 18-20 ग्राम प्रोटीन सूक्ष्म पोषक तत्व युक्त आटे एवं अन्य खाद्यान्न के रूप में प्रदान किया जाता है।

4.6 बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम

बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम, सम्पूरक पोषण कार्यक्रम का आधुनिक रूप है। यह कार्यक्रम सन् 1970-71 में केन्द्रीय समाज कल्याण विभाग तथा राष्ट्रीय स्तर के स्वैच्छिक संगठनों के तत्वाधान में अस्तित्व में आया। ये संगठन निम्न हैं:

- भारतीय बाल कल्याण परिषद्
- हरिजन सेवक संघ
- भारतीय आदम जाति सेवक संघ
- कस्तूरबा नेशनल मेमोरियल ट्रस्ट

यह कार्यक्रम प्रमुख रूप से गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित है। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, जो कि एक अर्द्ध-सरकारी संगठन है, जिसकी छत्रछाया में भारत में अनेकों समाज कल्याण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, के द्वारा कल्याणकारी कार्यक्रमों हेतु वित्तीय पोषण किया जाता है। इसी प्रकार से उपरोक्त सभी संगठनों द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक एवं अन्य प्रकार की सहायता एवं परामर्श प्रदान किया जाता है। वर्तमान में पाँच हजार से अधिक बालवाड़ी केन्द्रों में पोषण कार्यक्रम सफलता पूर्वक चलाया जा रहा है। जिस प्रकार आंगनवाड़ी कार्यकर्ता आई0 सी0 डी0 एस0 कार्यक्रम के अंतर्गत मानदेय पर कार्य करते हैं, ठीक उसी प्रकार बालवाड़ी कार्यकर्ता भी मानदेय पर कार्य करते हैं।

उद्देश्य

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विद्यालय पूर्व (कक्षा 1 से पहले या औपचारिक शिक्षा से पूर्व) बालक-बालिकाओं के पोषण स्तर को सवंर्धित करने के उद्देश्य से पोषण प्रदान करना है।

4.7 बालकों का टीकाकरण कार्यक्रम

टीकाकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य को कुछ बीमारियों के प्रति प्रतिरक्षा प्रदान की जाती है। टीकाकरण की प्रक्रिया मनुष्य के अतिरिक्त पशुओं में भी की जा सकती है। 'टीका/वैक्सीन' वैज्ञानिक विधि द्वारा तैयार किया गया उत्पाद है, जो बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता विकसित करता है। टीका शरीर में इंजैक्शन के माध्यम से अथवा मुख से ग्रहण किया जा सकता है। टीका शरीर के प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र के साथ मिलकर बीमारियों के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ाने के संदर्भ में कार्य करता है। सामान्यतः सभी टीके सुरक्षित होते हैं एवं उनसे किसी प्रकार की हानि या पुनः व्याधि नहीं होती

है। बालकों को कई प्रकार की जानलेवा बीमारियों से सुरक्षित करने का सर्वोत्तम, सरल उपाय टीकाकरण है। कई बार टीकाकरण के उपरान्त हल्का बुखार, त्वचा पर चकत्ते, लालिमा इत्यादि लक्षण हो सकते हैं।

टीकाकरण द्वारा प्रति वर्ष कई लाख जानें बचायी जा सकती हैं। वैक्सीन (टीकों) की खोज मानव समाज के लिये एक प्रकार से वरदान सिद्ध हुई है। इसका और अधिक लाभ उठाने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति को टीकों और इसकी समय-सारिणी (Schedule) के विषय में सही ज्ञान हो।

भारत में टीकाकरण कार्यक्रम

शिशुओं के टीकाकरण के संबध में भारत सरकार द्वारा ‘‘यूनीर्वसल इम्यूनाइजेशन प्रोग्राम’’ चलाया गया है। प्रारम्भिक तौर पर इस कार्यक्रम के अंतर्गत पोलियो, डिप्थीरीया, परट्यूसिस, टिटेनस, मीसल्स, हेपेटाइटिस बी एवं बाल्यकालीन टी0बी0 जैसी बीमारियों के टीके सरकार द्वारा प्रदान किये जाते हैं। यह कार्यक्रम वर्ष 1985 में आरम्भ हुआ तथा उसके पश्चात् नियमित टीकाकरण कार्यक्रम के रूप में इसका विस्तारीकरण भारत के विभिन्न राज्यों में किया गया। अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाने एवं टीकाकरण कार्यक्रम को और अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा प्रायः विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं यूनीसेफ के साथ समन्वयन किया जाता रहा है।

भारत में टीकाकरण समय-सारिणी

राष्ट्रीय टीकाकरण अनुसूची तथा यूनीवर्सल टीकाकरण कार्यक्रम और नियमित टीकाकरण (रूटीन टीकाकरण) तथा सम्पूरक टीकाकरण को समेकित करती है। यूनीवर्सल टीकाकरण कार्यक्रम के अंतर्गत सात प्रमुख टीके हैं।

1. बी0सी0जी0 (Bacillus Calmette-Guerin)

- ट्यबरक्युलोसिस से बचाव
- जन्म के समय एक खुराक अथवा जन्म से एक वर्ष तक, यदि जन्म के समय खुराक नहीं दी गयी है।

2. डी0पी0टी0 (Diphtheria, Pertussis (whooping cough), Tetanus)

- डिप्थीरिया, परट्यूसिस, टिटेनस से बचाव/सुरक्षा
- कुल पाँच खुराक: प्राथमिक खुराक (3) 6 वें, 10 वें, 14 वें सप्ताह में, प्रथम बूस्टर 16-24 माह की आयु में तथा द्वितीय बूस्टर 5 से 6 वर्ष की आयु में।

3. ओ0पी0वी0 (Oral Polio Vaccine)

- पोलियोमायलिटिस से सुरक्षा
- ओरल (मुख से ग्रहण कर सकने योग्य) वैक्सीन, 5 खुराक जन्म के समय, प्राथमिक खुराक (3) 6 वें, 10 वें तथा 14 वें सप्ताह में तथा एक बूस्टर खुराक 16 से 24 वें माह के बीच।

4. हेपेटाइटिस 'बी'

- हेपेटाइटिस 'बी' से सुरक्षा।
- चार खुराक (जन्म से 24 घंटों के भीतर एक खुराक, इसके पश्चात् 3 खुराक (6 वें, 10 वें, 14 वें सप्ताह में)

5. एम0एम0आर0 (Measles, Mumps (Parotitis) and Rubella)

- मीजल्स (खसरा), मम्प्स (गलसुआ) रुबेला से सुरक्षा
- दो खुराक (12 से 15 माह के मध्य पहली खुराक तथा दूसरी खुराक 4 से 6 वर्ष के मध्य)

6. टी0टी0 (Tetanus toxoid)

- टिटेनस से सुरक्षा।
- दो खुराक (पहली खुराक 10 वर्ष की आयु में, दूसरी खुराक 16 वर्ष की आयु में।
- गर्भवती महिलाओं को भी टी0टी0 (टिटेनस टॉक्साइड) के टीके की आवश्यकता होती है। परन्तु महिला द्वारा विगत तीन वर्षो में यदि इस वैक्सीन को प्राप्त किया गया है तो गर्भवती महिला को इस वैक्सीन की आवश्यकता नहीं होती है।

7. जापानी एन्सेफलाइटिस (Japanese encephalitis)

- जापानी एन्सेफलाइटिस (दिमागी बुखार) से बचाव/सुरक्षा।
- दो खुराक; पहली खुराक 9 से 12 माह के मध्य तथा दूसरी खुराक 16 से 24 माह के मध्य।

वर्ष 2006 से 2010 के मध्य भारत सरकार द्वारा 112 जिलों में इसे महामारी के रूप में घोषित करते हुए भारत के कुछ राज्यों में जापानी एन्सेफलाइटिस को "यूनीवर्सल इम्यूनाइजेशन प्रोग्राम" के एक प्रमुख भाग के रूप में शुरु किया गया। जापानी एन्सेफलाइटिस या दिमागी बुखार का विषाणु अभी भी एशिया के कई भागों में सक्रिय है। इस विषाणु का संक्रमण मुख्यतया मच्छरों के काटने से फैलता है। इसकी घटनाएं भारत में मुख्यतया असम, तमिलनाडु, बिहार, पश्चिम बंगाल एवं कर्नाटक में देखने को मिलती हैं। वर्ष 2013 से भारत में इस वैक्सीन का निर्माण स्थानीय रूप से किया जाने लगा है।

अन्य टीकाकरण

कुछ टीके यूनीवर्सल टीकाकरण कार्यक्रम के भाग नहीं हैं, परन्तु भारत सरकार द्वारा नियमित टीकाकरण के अंतर्गत कुछ टीकों का समावेश किया जाता है। इस प्रकार के प्रमुख टीकों में से एक है एच0आई0बी0 (हीमोफाइलस इन्फल्यून्जा टाइप बी बैक्टीरियम) बीमारी से बचने का टीका। यह पाँच टीकों के एक संयुक्त रूप में सम्मिलित किया जाता है।

मिशन इन्द्रधनुष

मिशन इन्द्रधनुष भारत सरकार का स्वास्थ्य मिशन है। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री द्वारा वर्ष तक की आयु के सभी 2 को किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य 2014 दिसम्बर 25 बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं का सात गम्भीर बीमारियों के प्रति संपूर्ण टीकाकरण कराना है। ये सात बीमारियाँ हैं; डिफ्थीरिया, काली खाँसी, टिटेनस, पोलियोमायलिटिस, ट्यूबक्युलोसिस, मीजल्स तथा हेपेटाइटिस बी। मिशन इन्द्रधनुष के अंतर्गत कम टीकाकरण कवरेज वाले जिलों को विशेष रूप से चिन्हित किया गया है ताकि वहाँ टीकाकरण कवरेज प्रतिशत बढ़ाया जा सके। यह सरकार की बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य की सुरक्षा की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण एवं महत्वाकांक्षी योजना है।

4.8 साप्ताहिक लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरक कार्यक्रम

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किशोर बालक एवं बालिकाओं में रक्ताल्पता जैसे रोगों को दूर करने के उद्देश्य से साप्ताहिक लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरक कार्यक्रम का शुभारम्भ किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सम्पूरित लौह लवण एवं फोलिक अम्ल की मात्रा का अनुवीक्षण किया जाता है। इस कार्यक्रम का दीर्घकालीन उद्देश्य पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे रक्ताल्पता के दुश्चक्र को तोड़ना है तथा लघु कालीन उद्देश्य के रूप में कार्यक्रम पोषण की दृष्टि से

मानव संसाधन को बढ़ावा देता है। यह कार्यक्रम राष्ट्रभर में समान (ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में) रूप से कार्यान्वित किया गया है।

कार्यक्रम के प्रमुख बिन्दु

उद्देश्य :किशोर जनसंख्या समूह, आयु वर्ग वर्ष के मध्य रक्ताल्पता एवं इसके दुष्प्रभाव को 19-10 रोकने हेतु लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरण साप्ताहिक आवृत्ति पर प्रदान करना।

लाभार्थी समूह: विद्यालय जाने वाले किशोर बालक एवं बालिकाएं तथा सरकारी, अर्द्ध सरकारी, सरकारी सहायता प्राप्त, नगर पालिका, महानगर पालिका के अंतर्गत कक्षा 6 से 12वीं तक तथा आयु 10-19 वर्ष के छात्र-छात्राएं तथा वे किशोर छात्राएं जो विद्यालय छोड़ चुकी हों तथा किसी भी विद्यालय में पंजीकृत नहीं हों।

कार्यक्रम: साप्ताहिक रूप से लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरण लाभार्थीयों को प्रदान करना जिसमें 100 ग्राम मौलिक लौह तत्व तथा 500 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल सप्ताह के किसी नियत दिन प्रदान करना।

- लाभार्थीयों को रक्ताल्पता की गंभीरता के आधार पर चिन्हित करना एवं तदानुसार उचित स्वास्थ्य सेवा केन्द्रों में भेजना।
- वर्ष में दो बार विकृमिकरण (de worming) एल्बैन्डाजॉल 400 मि0ग्रा0 के माध्यम से।
- संबधित मुख्य मंत्रालयों जैसे महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालयों की बैठक। बैठक के प्रमुख बिन्दु संयुक्त कार्यक्रम आयोजन, क्षमता निर्माण कार्यक्रम, क्षेत्रीय रूप में सेवाओं के प्रंबधन एवं उपलब्धता जिसमें चिकित्सकीय अधिकारी, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, स्टाफ नर्स, प्राथमिक विद्यालय शिक्षक तथा अनुवीक्षणीय एवं समेकित संप्रेक्षण घटक निहित हैं।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में साप्ताहिक लौह लवण एवं फोलिक अम्ल सम्पूरक कार्यक्रम

इस कार्यक्रम का विस्तारण राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में किया जा चुका है। वर्तमान में 11.2 करोड़ लाभार्थी इस कार्यक्रम के अंतर्गत आच्छादित हैं जिसमें 8.4 करोड़ विद्यालयी तथा 2.8 करोड़ गैर-विद्यालयी लाभार्थी सम्मिलित हैं।

साप्ताहिक लौह लवण एवं फोलिक अम्ल की गोलियों के उपयोग संबधी दिशा-निर्देश:

- किशोर/किशोरियों को यह सलाह दी जाती है कि वे भोजन ग्रहण करने के लगभग 1 घण्टे बाद लौह लवण- फोलिक अम्ल गोलियों का सेवन करें ताकि उल्टी, चक्कर आने जैसी समस्याओं से निजात पाया जा सके।
- वे किशोर एवं किशोरियां जिन्हें लौह लवण- फोलिक अम्ल गोलियों से दुष्प्रभाव जैसे उल्टी, चक्कर इत्यादि की समस्या हो रही हो, उन्हें खाना खाने के बाद रात्रि को सोने से पहले यह गोलियाँ लेनी चाहिये।
- विटामिन 'सी' युक्त खाद्य पदार्थों (आँवला, नींबू, खट्टे फल इत्यादि) का सेवन भारतीय शाकाहारी आहार से लौह तत्व का शरीर में अवशोषण बढ़ाता है। साथ ही लोहे के बर्तनों में खाना पकाना भी श्रेयस्कर होता है।
- लौह लवण- फोलिक अम्ल गोली लेने के एक घण्टे बाद तक चाय एवं कॉफी का सेवन नहीं किया जाना चाहिये।
- किशोर एवं किशोरियों को यह सलाह दी जाती है कि वे स्वच्छता एवं साफ-सफाई का विशेष रूप से पालन करें ताकि कृमि संक्रमण (Worm Infection) से बचा जा सके।

आइए अब हम कुछ राष्ट्रीय रोगनिरोधी कार्यक्रमों की चर्चा करें।

4.9 विटामिन ए की कमी से होने वाली अंधता से बचाव हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम

बालकों में विटामिन ए की कमी से आंखों के रोग हो जाते हैं। प्रारम्भ में इस अवस्था को रतौंधी कहते हैं जिसमें बच्चे को कम रोशनी में देखने में परेशानी होती है। बाद में आंखों का कार्निया तथा कन्जक्टाइवा भाग सूजकर मोटा हो जाता है। आँखों में बिटॉट धब्बे हो जाते हैं। आंखों के कार्निया भाग में जीवाणुओं के संक्रमण होने से घाव हो जाते हैं। परिणामतः बच्चे सदैव के लिए अंधे हो जाते हैं। इसलिए विटामिन ए की कमी के कारण बच्चों में अंधता के बचाव हेतु राष्ट्रीय कार्यक्रम 1970 में शुरु किया गया।

उद्देश्य

इस कार्यक्रम के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य हैं:

- विटामिन ए की कमी से उत्पन्न लक्षणों की व्यापकता को कम करना।
- विटामिन ए की कमी से होने वाली अंधता से बचाव करना।

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित गतिविधियां सम्मिलित हैं:

1. विटामिन ए की खुराक पिलाना

विटामिन ए की कमी की पूर्ति हेतु बालकों को विटामिन ए की खुराक पिलायी जाती है। 1-5 वर्ष के बच्चों को 2 लाख आई0यू0 (International Unit) विटामिन ए की खुराक 6 माह के अन्तराल में दी जाती है। इन्हें कुल 9 खुराक दी जाती हैं। 6 माह से 12 माह के शिशु को एक लाख आई0यू0 विटामिन ए की खुराक पिलाने पर 6 माह तक अतिरिक्त विटामिन ए की खुराक देने की आवश्यकता नहीं होती है। वे बच्चे जो दस्त या अतिसार के कारण विटामिन ए का सेवन करने में असमर्थ रहते हैं, उन्हें अंत:शिराओं द्वारा विटामिन ए दिया जाना चाहिए।

2. विटामिन ए युक्त भोज्य पदार्थों के अधिक सेवन हेतु प्रोत्साहित करना

- गर्भवती तथा धात्री माताओं को विटामिन ए युक्त भोज्य पदार्थों के सेवन के लिए प्रोत्साहित करना तथा उन्हें यह जानकारी प्रदान करना कि कौन-कौन से भोज्य पदार्थों में यह विटामिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।
- माताओं को स्तनपान के लिए प्रोत्साहित करना, विशेषकर शिशु जन्म के बाद मां के स्तनों से निकलने वाला प्रथम दूध जिसे कोलोस्ट्रेम कहते हैं, नवजात शिशु को अवश्य पिलाया जाना चाहिए।
- हरी पत्तेदार सब्जियां, गाजर, पपीता, कद्दू, आम आदि को दैनिक आहार में सम्मलित करने के लिए प्रेरित करना। यदि हो सके तो दूध, दूध से बने पदार्थ, अण्डा, यकृत, मछली, मछली का तेल आदि के सेवन के लिए प्रेरित करना। यह सभी भोज्य पदार्थ विटामिन ए के अच्छे स्रोत हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

a. विटामिन ए की कमी से होने वाला मुख्य रोग ....है।

b. एक से पांच वर्ष तक के बच्चों को .... मात्रा में विटामिन ए की पूरक खुराक दी जाती है।

c. मां के स्तनों से निकलने वाले प्रथम दूध को .... कहते हैं।

d. ...., ... एवं .... विटामिन ए के अच्छी स्रोत हैं।

अब हम आयोडीन अल्पता विकार नियंत्रण हेतु चलाए गए राष्ट्रीय कार्यक्रम की चर्चा करेंगे।

4.10 राष्ट्रीय आयोडीन अल्पता विकार नियंत्रण कार्यक्रम (National Iodine Deficiency Disorders Control Programme, NIDDCP)

आहार में आयोडीन की निरन्तर कमी से घेंघा रोग हो जाता है, जिसे गलगण्ड भी कहते हैं। आयोडीन की कमी से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। परिणामस्वरूप वे मानसिक रूप से कमजोर एवं निर्बल हो जाते हैं। गर्भावस्था के दौरान यदि माता भरपूर मात्रा में आयोडीनयुक्त आहार का सेवन नहीं करती है तो उसका प्रतिकूल प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है और वह मानसिक रूप से कमजोर एवं विकलांग पैदा होता है। घेंघा रोग हिमालय की तराई वाले इलाकों में रहने वाले लोंगों में सबसे अधिक होता है क्योंकि वहाँ की मिट्टी एवं पानी में आयोडीन की कमी होती है।

आयोडीन की कमी को दूर करने के लिए भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने सन् में राष्ट्रीय घेंघा रोग नियंत्रण कार्यक्रम की शुर 1962ुआत की थी। आयोडीन की कमी से सिर्फ घेंघा रोग ही नहीं होता अपितु इसकी कमी से अनेक प्रकार के अन्य लक्षण भी दिखाई देते हैं, इसलिए य आयोडीन अल्पता विकार नियंत्रण कार्यक्रममें इस कार्यक्रम के स्थान पर राष्ट्री 1980, NIDDCP प्रारम्भ किया गया।

उद्देश्य

इस कार्यक्रम के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- आयोडीन अल्पता विकार की व्यापकता की पहचान करने के लिए प्रारम्भिक सर्वेक्षण।
- घेंघा रोग से प्रभावित इलाकों और रोगियों की निगरानी।
- आयोडीन युक्त नमक का पर्याप्त मात्रा में उत्पादन एवं पूरे देश में इसका वितरण।
- स्वास्थ्य शिक्षा एवं प्रचार
- निश्चित समय अवधि में नियंत्रण उपायों के प्रभाव का आंकलन।
- आयोडीन युक्त नमक के वितरण के वर्ष बाद अधिक संवेदनशील इलाकों का पुनः सर्वेक्षण 5 प्रभाव का पता लगाना। कर कार्यक्रम के
- आयोडीन युक्त नमक एवं मूत्र में आयोडीन की मात्रा की प्रयोगशाला जाँच की व्यवस्था करना।

वर्तमान में इस कार्यक्रम को क्रियान्वयन की सुविधा के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन में सम्मलित किया गया है। सभी आयु वर्ग के व्यक्ति इस कार्यक्रम का लाभ उठाते हैं। जन साधारण में आयोडीन की कमी के लक्षणों को नियंत्रण मं लाने के लिए सरकार ने नमक में आयोडीन मिलाने का निर्णय लिया।

कार्य/सेवाएं

1. नमक का आयोडीनीकरण

आयोडीन की कमी से उत्पन्न रोगों के निवारण हेतु भारत सरकार ने सादे नमक में आयोडीन मिलाने का कार्यक्रम शुरु किया था। नमक में आयोडीन की मात्रा उत्पादन स्तर पर 60 पीपीएम से कम नहीं होनी चाहिए। खुदरा स्तर पर यह मात्रा 30 पीपीएम से कम नहीं होनी चाहिए एवं उपभोक्ता स्तर पर 15 पीपीएम से कम नहीं होनी चाहिए। प्रतिदिन 10 ग्राम आयोडीनयुक्त नमक लेने से 150 माइक्रोग्राम आयोडीन की प्राप्ति हो जाती है जिससे एक वयस्क की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति हो जाती।

2. आयोडीन रहित नमक का वितरण बन्द करना

जन समुदाय में आयोडीन की कमी को रोकने के लिए आयोडीन रहित नमक के वितरण पर पाबन्दी है। यदि नमक में आयोडीन की मात्रा कम पायी जाती है तो उसे मिलावट में गिना जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. आई0डी0डी0 का विस्तार कीजिए।

   ....

2. आयोडीन की कमी से होने वाले रोगों से बचाव कार्यक्रम का नाम बताइये।

   ....

3. घरेलू स्तर पर नमक में कितना आयोडीन होना चाहिए?

   ....

4. घेंघा रोग क्या होता है?

   ....

4.11 राष्ट्रीय पोषण सम्बन्धी रक्ताल्पता रोगनिरोधी कार्यक्रम

उचित पोषण के अभाव में बच्चों, शिशुओं, गर्भवती तथा धात्री माताओं में रक्ताल्पता रोग हो जाता है। यह रोग मुख्यतः शरीर में लौह लवण एवं फोलिक अम्ल की कमी के कारण होता है। रक्ताल्पता सम्पूर्ण विश्व की एक प्रमुख कुपोषण समस्या है। भारत में 70-80 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं इस रोग से पीड़ित होती हैं। आहार में पर्याप्त मात्रा में हरी पत्तेदार सब्जियों, मांस, मछली, यकृत, दालों के अभाव में यह रोग हो जाता है। भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने एनीमिया की रोकथाम के लिए राष्ट्रीय पोषण संबंधी रक्ताल्पता रोगनिरोधी कार्यक्रम की शुरुआत सन् 1970 में की थी। एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रतिवर्ष 5 करोड़ बच्चे एवं 4 करोड़ वयस्क इस कार्यक्रम से लाभांवित हो रहे हैं। इस कार्यक्रम के लाभार्थी निम्न हैं:

- 1-5 वर्ष के बच्चे
- गर्भवती महिला
- धात्री माता

उद्देश्य

इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य शालापूर्व बच्चों, गर्भवती तथा धात्री महिलाओं में रक्ताल्पता रोग की दर एवं संख्या में कमी लाना है।

सेवाएं

- गर्भवती, धात्री माताओं एवं बच्चों में हीमोग्लोबिन की जांच कर एनीमिया एवं उसकी तीव्रता की जांच करना।
- एनीमिया से ग्रसित महिलाओं एवं बच्चों का उपचार करना।
- रोकथाम एवं उपचार के लिए प्रतिदिन लौह लवण तथा फोलिक अम्ल की सम्पूरक गोलियों का वितरण करना।
- गोलियों के स्तर, उनके वितरण एवं उनके सेवन की लगातार जांच करना और समयसमय पर - लाभान्वित वर्ग के हीमोग्लोबिन स्तर की जांच करना।
- लौह लवण के उच्च खाद्य स्रोतों को आहार में सम्मलित करने के लिए प्रोत्साहित करना। आहार में हरी पत्तेदार सब्जियों जैसे पालक, बथुआ, चौलाई, सहजन के पत्ते, चने का साग, चिवड़ा, तरबूज आदि भोज्य पदार्थों के सेवन हेतु प्रोत्साहित करना।

गोलियों की मात्रा

महिला: प्रतिदिन लौह लवण एवं फोलिक अम्ल की एक गोली जिसमें 60 मिग्रा लौह लवण (180 मिग्रा फैरस सल्फेट) एवं 0.5 मिग्रा फोलिक अम्ल मिलता है। ये गोलियां दो से तीन माह तक लगातार प्रदान की जाती हैं। गर्भवती स्त्री तथा स्तनपान कराने वाली माता को भी यही खुराक गर्भावस्था के आखिरी 3 महीनों से स्तनकाल के प्रथम छः महीनों तक दी जाती है।

बच्चे: यदि एनीमिया का संदेह हो तो 6 महीने, 1 वर्ष एवं 2 वर्ष पर शिशुओं तथा बच्चों का निरीक्षण करा लिया जाता है। इन बच्चों को एक गोली प्रतिदिन दी जाती है जिससे 20 मिग्रा लौह लवण (60 मिग्रा फैरस सल्फेट) एवं 0.1 मिग्रा फोलिक अम्ल मिलता है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. लौह लवण की कमी से होने वाला रोग है:

क. घेंघा रोग ग. कुपोषण

ख. रतौंधी घ. एनीमिया

b. एनीमिया को पहचानने के लिए निम्न की जाँच जाती है:

क. मूत्र की ख. रक्त में हीमोग्लोबिन की

ग. रक्त में प्रोटीन की घ. उपरोक्त सभी

2. लघु उत्तरीय प्रश्न

a. लौह लवण की कमी को नियन्त्रित करने वाले कार्यक्रम का नाम बताइये।

....

b. 1-2 वर्ष तक के बच्चों को दी जाने वाली लौह लवण की गोली में कितनी मात्रा में लौह लवण होता है?

....

c. लौह लवण युक्त गोलियां खाने से क्या परेशानी हो सकती है?

....

राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पोषण कार्यक्रम

4.12 पोषण अभियान

पोषण अभियान, जिसे राष्ट्रीय पोषण मिशन (एन0एन0एम0) के रूप में भी जाना जाता है, भारत में प्रचलित कुपोषण की समस्या से निपटने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा 2018 में शुरू किया गया था। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य देश में कुपोषण के स्तर को कम करना और बच्चों के पोषण स्तर को बढ़ाना है। पोषण अभियान किशोरों, बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली माताओं के पोषण परिणामों में सुधार करने के लिए भारत की प्रमुख योजना है। इस कार्यक्रम में स्टंटिंग (बौनापन), एनीमिया, अल्प पोषण और जन्म के समय कम वजन को कम करने के लिए विशिष्ट लक्ष्य हैं।

इस मिशन के निम्न विशिष्ट लक्ष्य हैं:

1. स्टंटिंग (बौनेपन) को सालाना 2% कम करना।
2. कुपोषण को सालाना 2% कम करना।
3. एनीमिया को सालाना 3% कम करना।
4. जन्म के समय कम वजन को सालाना 2% कम करना।

इस मिशन के अंतर्गत समुदाय में पोषण सम्बंधी कई जागरुकता कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं; समुदाय आधारित कार्यक्रम जैसे अन्नप्राशन दिवस, सुपोषण दिवस, ग्राम स्वास्थ्य स्वच्छता पोषाहार दिवस, पोषण पखवाड़ा, पोषण माह आदि।

अभ्यास प्रश्न 4

1. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

a. समेकित बाल विकास सेवाएं
b. बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम
c. बालकों में टीकाकरण की आवश्यकता

2. लघु उत्तरीय प्रश्न

a. समेकित बाल विकास सेवाओं की चार प्रमुख विशेषताएं बताइये।
b. मध्याह्न भोजन योजना के अंतर्गत लाभार्थी वर्ग के विषय में बताइए।
c. इन्द्रधनुष कार्यक्रम को संक्षिप्त में समझाइये।
d. लौह लवन तथा फोलिक अम्ल सम्पूरण का महत्व बताइये।।

4.13 सारांश

समुचित आहार एवं बेहतरीन स्वास्थ्य सेवाएं सक्रिय एवं स्वस्थ जीवन जीने का आधार हैं। उच्चतर स्वास्थ्य, विकास का एक अति महत्वपूर्ण एवं निर्धारक तत्व है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार अपर्याप्त एवं अनुचित पोषण विश्व स्वास्थ्य के लिये सबसे बढ़ी खतरे की घंटी है। कुपोषित एवं अस्वस्थ व्यक्ति का संबध निम्न उत्पादकता, निम्न जीवन गुणवत्ता से है। इसके अतिरिक्त यह राष्ट्रीय स्तर पर सकल घरेलू उत्पाद हानि के लिये भी उत्तरदायी है। राष्ट्रीय विकास की दर जनसमूह के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर से प्रभावित होती है। इस अध्याय में आपने विभिन्न कार्यक्रम जो जनसमूहों के स्वास्थ्य संर्वधन हेतु समर्पित हैं, की अवधारणा, उद्देश्य, कार्य पद्धति तथा मानव ससांधन एवं सतत् विकास में इसके योगदान के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की।

4.14 पारिभाषिक शब्दावली

- **टीकाकरण:** टीकाकरण वह प्रक्रिया है जिसमें टीकों द्वारा शरीर के प्राकृतिक सुरक्षा तंत्र के माध्यम से शरीर की बीमारियों से लड़ने की क्षमता को बढ़ाया जा सकता है।
- **मध्याह्न भोजन योजना:** इस योजना के अंतर्गत बच्चों को दोपहर का पौष्टिक भोजन विद्यालय में ही उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रकार का भोजन उनकी दैनिक कैलोरी एवं प्रोटीन आवश्यकता के एक तिहाई भाग की पूर्ति करता है।
- **बालवाड़ी:** यह भारत के ग्रामीण क्षेत्रों तथा सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछडे वर्ग के पूर्व विद्यालयी बालकों हेतु सरकारी अथवा गैर सरकारी संस्थानों द्वारा चलायी गयी योजना है। बालवाड़ी स्थानीय रूप से उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान कर उन्हें विद्यालयी अथवा औपचारिक शिक्षा के लिये तैयार करती है।
- **आंगनबाड़ी:** यह ग्रामीण तथा सब शहरी क्षेत्रों में मातृ एवं शिशु सुरक्षा तथा कल्याण के अंतर्गत चलाया जाने वाला कार्यक्रम है जिसकी स्थापना के 0एस 0डी 0सी 0में आई 1975 अंतर्गत की गयी। इसे भूख, कुपोषण नियन्त्रण तथा स्वास्थ्य एवं पोषण संर्वधन कार्यक्रम के रूप में भी देखा जाता है।

4.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई का मूल भाग देखें।

4.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. The Integrated Child Development Services: A Flagship Adrift, By K.R. Venugopal, Konark Publishers, ISBN- 9789322008055.
2. E- Book of Ministry of Women and Child Development (india.gov.in) National Portal of India.
3. Child Nutrition and Primary Education, By Surendra Nath Misra, Manaranjan Behera, Anmol Publication 2004, Original from- The University of Michigan.
4. Role of ICDS Services on Maternal Health and Child Health in India, by Majumdar Nabanita, Lambert Academic Publishing (2013), ISBN-10 – 3659335002, ISBN- 13- 978-3659335006.
5. Public Health Nutrition in Developing Countries (Part 1) Edited by Shiela Chander Vir, Woodhead, Publishing India Pvt. Ltd.

इंटेर्नेट स्रोत

6. www.wcd.nic.in/icds.aspx
7. www.icds.gov.in
8. www.mpwcd.nic.in/sc-ic-icds
9. www.mdm.nic.in
10. Nutrition- health –education.blogspot.com (Special Nutrition Programme)
11. Universal Immunization Programme (mohfw.nic.in)
12. Weekly Iron and Folic Acid Supplementation Programme (nhm.gov.in/ nrhm)
13. www.missionindradhanush.in

4.17 निबंधात्मक प्रश्न

1.बालकों के पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर को सुधारने के संबध में भारत में संचालित मुख्य योजनाओं /कार्यक्रमों का उल्लेख करते हुए इसके सामाजिक महत्व पर प्रकाश डालिये।

2.समेकित बाल विकास सेवाओं (आई0 सी0 डी0 एस0) के अंतर्गत प्रदत्त प्रमुख सेवाओं तथा इसके उद्देश्यों की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिये।

3.भारत में मध्याह्न भोजन योजना की विस्तृत व्याख्या कीजिये तथा बालकों के पोषण स्तर पर इसके प्रभाव को समझाइये।

4.भारत में टीकाकरण कार्यक्रमों की आवश्यकता एवं महत्व बताते हुए टीकाकरण सारिणी पर प्रकाश डालिये।

इकाई 5: सामुदायिक पोषण के क्षेत्र में कार्यरत अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियां और उनकी भूमिका

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और कार्यक्रमों का सामुदायिक पोषण में योगदान
    5.3.1 खाद्य एवं कृषि संगठन
    5.3.2 विश्व स्वास्थ्य संगठन
    5.3.3 संयुक्त राष्ट्र बाल कोष-यूनिसेफ
    5.3.4 केयर- कोऑपरेटिव फॉर असिस्टेंस एण्ड रिलीफ ऐव्रीव्हैर (Cooperative for Assistance and Relief Everywhere, CARE)
    5.3.5 यू0एन0डी0पी0 (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम)
    5.3.6 यू0एन0एफ0पी0ए0- संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष
    5.3.7 अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता एजेंसी (United States Agency for International Development, USAID)
    5.3.8 विश्व बैंक
    5.3.9 भारतीय रेडक्रॉस सोसायटी
5.4 सारांश
5.5 पारिभाषिक शब्दावली
5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। सम्पूर्ण विश्व एक समाज की तरह कार्य करता है। बहुत सारे ऐसे संगठन हैं जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखभाल एवं आबादी के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए प्रयासरत हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् जब विश्व शान्ति की बात आयी तो बहुत से संगठनों ने आगे बढ़ कर इस कार्य को करने का बीड़ा उठाया। भुखमरी, गरीबी, महिलाओं तथा बच्चों की स्थिति में सुधार आदि

सभी समस्याओं को दूर करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गयी। संयुक्त राष्ट्र संघ तथा अन्य कई संगठन विश्व उत्थान तथा अन्य समस्याओं के निदान हेतु सतत् कार्यरत हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आपः

- बता पायेंगे कि अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और कार्यक्रमों का सामुदायिक पोषण में क्या योगदान है;
- विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे खाद्य एवं कृषि संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनिसेफ आदि के कार्यों एवं उद्देश्यों के विषय में जान पाएंगे; तथा
- देश में चल रही पोषण एवं स्वास्थ्य से संबंधित योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

5.3 अंतर्राष्ट्रीय संगठनों और कार्यक्रमों का सामुदायिक पोषण में योगदान

राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर समुदायों का पोषण स्तर सुधारने के लिए विभिन्न प्रकार के पोषण कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। विश्वव्यापी पोषण संकटों से निपटने के लिए आर्थिक एवं सामाजिक बदलाव की आवश्यकता है। छोटे बच्चों तथा अन्य संवेदनशील वर्गों के लिए अच्छी देखभाल सुनिश्चित करना भी आवश्यक है। भारत सरकार द्वारा चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों एवं योजनाओं के विषय में आप पिछली इकाई में पढ़ चुके हैं। कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी विश्वभर में पोषण, स्वास्थ्य एवं समुदाय के सम्पूर्ण विकास के लिए प्रतिबद्धता से कार्य करती हैं।

आइए इन संगठनों के बारे में चर्चा करें।

5.3.1 खाद्य एवं कृषि संगठन

खाद्य एवं कृषि संगठन एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है। यह संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशिष्ट संस्था है और यह संस्था उसी के अन्तर्गत कार्य करती है। इस संगठन की स्थापना 1945 में कनाडा में हुई थी। इसका मुख्यालय रोम, इटली में है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त स्थापित होने वाली यह सबसे पहली विशेष एजेन्सी थी।

संगठन के उद्देश्य

खाद्य एवं कृषि संगठन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- खाद्य समस्याओं का निदान एवं पोषण और जीवन स्तर को बढ़ाना।
- खाद्य एवं कृषि उत्पाद के उत्पादन और वितरण की व्यवस्था करना।
- पोषण, खाद्य एवं कृषि संबंधी प्रशासन और शिक्षा में सुधार पर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य को प्रोत्साहन।
- कृषि उत्पादन के साधनों में सुधार हेतु तकनीकी सहायता प्रदान करना।
- सदस्य देशों के ग्रामीण समुदाय की जीवन स्थितियों को सुधारना।
- सदस्य देशों की अर्थव्यवस्था में सुधार।

यह संगठन अपना कार्य सम्मेलन के द्वारा सम्पन्न करता है। संगठन में एक महानिदेशक एवं 49 सदस्यों की एक परिषद् होती है जिसे विश्व खाद्य परिषद् कहा जाता है। खाद्य और कृषि संगठन खाद्य संकट की समस्याओं को हल करने में सतत् प्रयत्नशील है। इस संगठन के आठ विभाग क्रमश: प्रशासन एवं वित्त, आर्थिक और सामाजिक, मत्स्य विभाग, वानिकी, सामान्य विषय और सूचना, सतत् विकास, कृषि और उपभोक्ता सुरक्षा और तकनीकी सहयोग हैं। यह सभी विभाग मिलकर संगठन के उद्देश्यों के लिए निरंतर क्रियाशील रहते हैं।

खाद्य एवं कृषि संगठन के कार्य

संयुक्त राष्ट्र का खाद्य एवं कृषि संगठन खाद्य और कृषि से संबंधित सभी मुद्दों पर काम करने के लिए संयुक्त राष्ट्र की एकमात्र प्रमुख विशेषज्ञ एजेंसी है। इस संगठन का खाद्य एवं पोषण प्रभाग अपनी खाद्य गुणवत्ता एवं मानक सेवाओं के माध्यम से नीतिगत सलाह की व्यवस्था द्वारा क्षमता निर्माण एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराता है। यह खाद्य उद्योग के लिए खाद्य गुणवत्ता एवं सुरक्षा आश्वासन कार्यक्रम, खाद्य मानकों के विकास और तकनीकी नियमों समेत गुणवत्ता नियंत्रण और सुरक्षा विकास परियोजनाओं को कार्यान्वित करता है। यह खाद्य मिलावट रोकने के लिए राष्ट्रीय निर्यात खाद्य प्रमाणीकरण कार्यक्रम और निगरानी कार्यक्रम की स्थापना भी करता है। यह खाद्य नियंत्रण मुद्दों पर क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सेमिनार तथा कार्यशालाओं का आयोजन करता है। क्षमता निर्माण में खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा सदस्यों के सुदृढ़ीकरण के प्रयासों के समर्थन में चलाई गयी सभी गतिविधियां शामिल होती हैं। खाद्य क्षेत्र में यह निम्नलिखित कार्य करता है:

- विशिष्ट मुद्दों पर नीतिगत सलाह।
- खाद्य कानूनों का सृदृढ़ीकरण।
- कोडेक्स तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय उपकरणों द्वारा खाद्य नियमों एवं मानकों का समकरण।

- तकनीकी और प्रबन्धकीय कर्मियों को विभिन्न खाद्य सुरक्षा संबंधी संकायों में प्रशिक्षण।
- खाद्य संबंधी विषयों पर विशिष्ट अध्ययन एवं व्यवहारिक अनुसंधान।

भारत में खाद्य एवं कृषि संगठन विभिन्न क्षेत्रों के विकास में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाता है। नीति निर्माण में यह तटस्थ सलाहकार का कार्य करता है। संगठन का मानना है कि कृषि शोध पर ध्यान देकर और विकास की प्राथमिकताएं तय कर भोजन को अधिक पोषक बनाया जाना चाहिए। इस क्रम में फलों, सब्जियों, फलियों और पशु आधारित उत्पादों पर जोर देना चाहिए। इनमें खाद्य उत्पादन व्यवस्था में हस्तक्षेप करते हुए सूक्ष्म पोषक तत्व आधारित उर्वरकों, जैव आधारित फसल और फसलों एवं पशुपालन के सही सम्मिश्रण पर भी यह जोर देता है।

गत वर्षों में विश्व में खाद्य सुरक्षा का मुद्दा खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रयासों से ही कार्यान्वित हो पाया है। खाद्य सुरक्षा प्राप्ति के विभिन्न तरीके भी खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा सुझाये गये हैं:

- खाद्य सुरक्षा सिर्फ राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु पारिवारिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण है।
- खाद्यान्न की बर्बादी कम की जानी चाहिए।
- समुदायों को पोषण शिक्षा द्वारा खाद्य सुरक्षा के लिए जागरुक करना चाहिए।
- सभी परिवारों को घर में बगीचा बना कर फल-सब्जियां उगानी चाहिए एवं उपयोग करनी चाहिए।
- परिवार और बच्चों के पोषण में महिलाओं का विशेष योगदान होता है। इसलिए परिवार की खाद्य सुरक्षा के लिए महिलाओं को आर्थिक एवं सामाजिक रुप से सशक्त बनाना होगा।

इसके अलावा खाद्य एवं कृषि संगठन, खाद्य समस्याओं एवं भुखमरी से जुड़ी समस्त जानकारी प्रदान कर उनसे निजात पाने की तकनीक भी प्रदान करता है। इसके लिए संगठन कई सम्मेलन एवं सर्वेक्षण भी आयोजित करता है। विभिन्न शोध का प्रयोग कर पोषण शिक्षा से संबंधित पाठ्य सामग्री प्रकाशित करता है। इस सूची में विश्व खाद्य सर्वेक्षण, सांख्यिकी बुलेटिन, वार्षिक-किताब, शिखर सम्मेलनों की रिपोर्ट, प्रचलित पुस्तिकाएं एवं पत्रक आदि सम्मलित हैं। इसके अतिरिक्त यह संगठन विकसित छात्रवृत्ति कार्यक्रम में भी समन्वय करता है, जिसके अन्तर्गत एक देश के नागरिक दूसरे देश में जाकर अध्ययन करते हैं और उन अनुभवों का प्रयोग अपने देश में आकर करते हैं तथा उत्पादन वृद्धि में सहायक होते हैं।

अगले भाग में विश्व स्वास्थ्य संगठन के बारे में चर्चा से पहले आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सामुदायिक पोषण में अंतर्राष्ट्रीय संगठन कैसे सहयोग दे सकते हैं?

   ....

   ....

2. खाद्य एवं कृषि संगठन की स्थापना कब हुई थी?

   ....

   ....

3. खाद्य एवं कृषि संगठन का मुख्यालय कहां है?

   ....

   ....

4. खाद्य एवं कृषि संगठन की मुख्य चिंता का विषय हैः

   क. खाद्य उत्पादन बढ़ाना ख. महिलाओं की शिक्षा

   ग. मातृ एवं शिशु देख-रेख ग. सार्वभौमिक टीकाकरण

5.3.2 विश्व स्वास्थ्य संगठन

विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र संगठन की विशेष एजेन्सी है जो अपने विधान के अन्तर्गत मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्रभावशाली योगदान देती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की स्थापना 7 अप्रैल 1948 में हुई थी। इसका प्रधान कार्यालय जेनेवा, स्विटजरलैण्ड में है। इसकी स्थापना दिवस के दिन को विश्व भर में विश्व स्वास्थ्य दिवस के रूप में मनाया जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन छः क्षेत्रीय समितियों में बँटा है। यह संगठन न केवल रोगों का निदान करता है बल्कि इसका ध्येय सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक विकास और कल्याण को प्रोत्साहन देना है जो मानव कल्याण और विकास के लिए आवश्यक है।

संगठन की सदस्यता: संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई भी सदस्य देश विश्व स्वास्थ्य संगठन का सदस्य बन सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की संगठनात्मक संरचना

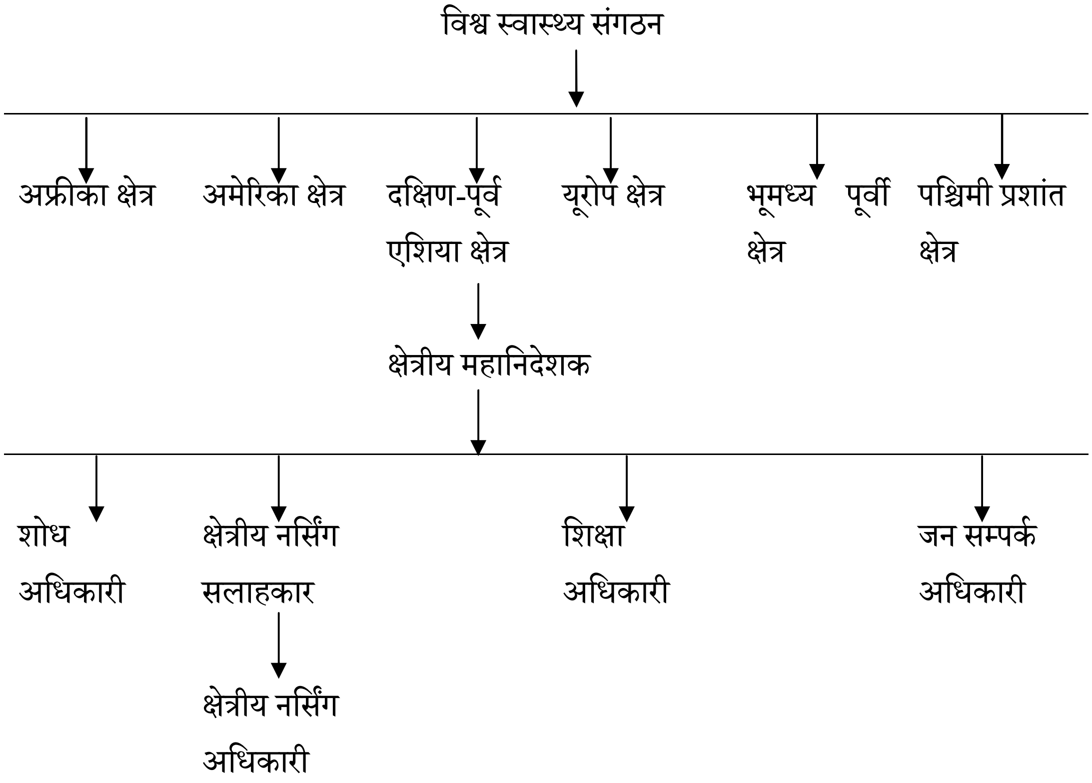

उद्देश्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन के निम्नलिखित उद्देश्य हैः

- विश्व स्वास्थ्य संगठन का मुख्य उद्देश्य उच्चतम स्वास्थ्य की प्राप्ति का है। स्वस्थ रहना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी अधिकार की प्राप्ति के लिए यह संगठन निरन्तर प्रयासरत है। संगठन ने इसी क्रम में सम्पूर्ण स्वास्थ्य की परिभाषा दी है।
  "इसके अनुसार केवल बीमारियों का न होना या बीमारियों की अनुपस्थिति मात्र ही उत्तम स्वास्थ्य नहीं है अपितु यह सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक कुशलता की अवस्था है"।
- मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाना।
- विश्व स्तर पर सभी रोगों से निजात पाने में मदद करना।
- महामारी रोगों से सम्बन्धित विशिष्ट चेतावनी जारी करना।
- निर्धनता एवं बीमारी के कुचक्र को तोड़ने में राष्ट्रीय सरकारों की मदद करना।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की गतिविधियां

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन निरन्तर निम्न कार्य करता है:

1. विशिष्ट रोगों का निवारण एवं नियंत्रण
2. पर्यावरणीय स्वच्छता अभियान
3. व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास
4. मानव शक्ति का विकास
5. जैव चिकित्सकीय और स्वास्थ्य सेवाओं पर शोध
6. स्वास्थ्य सूचनाएं एवं ज्ञानवर्धक पत्रिकाएं प्रकाशित करना
7. स्वास्थ्य कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन
8. समुदाय में पोषण स्तर ज्ञात करना
9. पोषण सम्बन्धी शोध कर नीतियां बनाने में मदद करना

1. विशिष्ट रोगों का निवारण एवं नियंत्रण

उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए संक्रामक तथा गैर-संक्रामक रोगों का निवारण एवं नियन्त्रण आवश्यक है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने संक्रामक रोगों के निवारण हेतु बहुत संघर्ष किया है तथा चेचक जैसी खतरनाक, जानलेवा बीमारी को जड़ से समाप्त कर दिया है। वर्तमान में यह संगठन कैंसर एवं एड्स पर नियंत्रण पाने का भरपूर प्रयास कर रहा है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन संक्रामक रोगों से संबंधी सर्वेक्षण करता है, आंकड़े एकत्रित करता है तथा उन आंकड़ों से प्राप्त सूचनाओं का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण विश्व में करता है। सम्पूर्ण विश्व से पीत ज्वर, हैजा, इन्फ्लूएन्जा, पोलियो, मलेरिया, खसरा, चिकन पॉक्स आदि जानलेवा रोगों को जड़ से मिटाने के लिए संगठन भरपूर प्रयास कर रहा है। पोलियो के उन्मूलन के लिए संगठन यूनिसेफ के साथ मिलकर कार्य कर रहा है। इस संगठन के सहयोग से सम्पूर्ण भारत में पल्स पोलियो अभियान चलाया जा रहा है।

यह संगठन गैर-संक्रामक रोगों (जैसे हृदय रोग, कैंसर, अनुवांशिक बीमारियां, दंत रोग, मोटापा आदि) के उन्मूलन के लिए भी सक्रिय कार्य कर रहा है क्योंकि जितनी मृत्यु संक्रामक रोगों के फैलने से होती हैं लगभग उतनी ही मृत्यु गैर-संक्रामक रोगों के कारण भी होती है। अतः विश्व स्वास्थ्य संगठन इन रोगों के निवारण के लिए उपचार, स्वास्थ्य शिक्षा, तकनीकी सलाह तथा नवीनतम उपकरण आदि की व्यवस्था करता है। मानसिक रोगों के निवारण के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कई महत्वपूर्ण अन्वेषण किए जा रहे हैं। इन रोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रभावी उपाय एवं

रणनीतियाँ तैयार की जा रही हैं। बच्चों को छः जानलेवा बीमारियों (टिटेनेस, गलघोंटू, काली खांसी, पोलियो, खसरा एवं क्षय रोग) से छुटकारा दिलाने हेतु तथा स्वस्थ जीवन यापन करने हेतु इस संगठन द्वारा विस्तृत प्रतिरक्षण कार्यक्रम भी चलाया गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की मदद से कुछ राष्ट्रों ने खसरा, इन्फ्लूएन्जा आदि रोगों से 90 प्रतिशत प्रतिरक्षण कर लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है।

2. पर्यावरणीय स्वच्छता अभियान

समुदाय के उत्तम स्वास्थ्य के लिए पर्यावरण का स्वच्छ एवं स्वस्थ रहना आवश्यक है क्योंकि मनुष्य का स्वास्थ्य पर्यावरण के स्वास्थ्य से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है। अगर पर्यावरण दूषित, कलूषित एवं गन्दगी से पूर्ण होगा तो पर्यावण में जीवन यापन करने वाले, सांस लेने वाले, निवास करने वाले व्यक्ति कभी भी स्वस्थ नहीं रह सकेंगे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन पर्यावरण को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने के लिए विभिन्न राष्ट्रों को स्वयं के कार्यक्रम निर्मित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। जल, वायु, भोजन, आवास, कार्य करने का वातावरण एवं परिस्थिति, विकिरण से रक्षा आदि के प्रति विश्व स्वास्थ्य संगठन विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएं बनाता है तथा सहयोग देता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की पहल पर 1968 में जीव मण्डल कान्फ्रेंस के बाद विश्व पर्यावरण संरक्षण को बल मिला। सारे राष्ट्रों ने पर्यावरण संबंधी कानून बनाये। भारत सरकार ने 1980 में केन्द्र में एक पर्यावरण विभाग खोला। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विभिन्न तथ्य पत्र जारी कर वैज्ञानिक सबूत दिये हैं कि स्वस्थ वातावरण के माध्यम से बीमारी की रोकथाम की जा सकती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन शुद्ध जल की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्नशील है तथा राष्ट्रीय स्तर से लेकर ग्रामीण स्तर तक के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण हेतु सहायता प्रदान करता है। संगठन ने 'पीने के पानी' से संबंधित दिशा-निर्देश निर्धारित कर जारी किए हैं। संगठन, पर्यावरण स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए निम्नलिखित सुरक्षा कार्य कर रहा हैः

रासायनिक सुरक्षा

कीटनाशकों एवं रसायनों का निरन्तर प्रयोग कृषि उपज को बढ़ाने में मदद करता है। परन्तु ये रासायनिक खाद एवं कीटनाशक पदार्थ स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इन रसायनों एवं कीटनाशकों के दुष्परिणाम जानने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन सूचनाएं, आंकड़े आदि एकत्रित करता है। इनके विषैले प्रभावों के अध्ययन हेतु वर्ष 1980 में रसायनिक सुरक्षा हेतु अन्तर्राष्ट्रीय

कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। हाल ही में संगठन ने बीस जहरीले रसायन तत्वों की सूची जारी की है जो सौन्दर्य प्रसाधनों, कार की बैटरी, खाद, कीटनाशक आदि में पाये जाते हैं।

विकिरण से सुरक्षा

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विकिरण से सुरक्षा हेतु मानक जारी किए हैं। संगठन विकिरण चिकित्सा में नयी तकनीकों का विकास करने के प्रति भी काफी प्रयत्नशील है। विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम तथा अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सहयोग से पर्यावरणीय स्वास्थ्य की कसौटियों पर पुस्तक की श्रृंखला प्रकाशित करता है। इन पुस्तकों के माध्यम से अब तक कुल 60 रसायनों के बारे में विस्तृत जानकारी दी जा चुकी है।

3. व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य सेवाओं का विकास किया जा रहा है। यह संगठन सदस्य राष्ट्रों को स्वास्थ्य सेवाओं से संबंधित परामर्श, सहयोग एवं वित्तीय सहायता प्रदान करता है। विकासशील देशों में यूनिसेफ के साथ मिलकर मातृ एवं बाल स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन कार्यक्रमों को सफल बनाने में मदद करता है। इस संगठन द्वारा Appropriate Technology for Health (ATH) नामक कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य है कि प्रत्येक राष्ट्र स्वयं स्वावलम्बी बनकर स्वास्थ्य समस्याओं का हल स्वयं कर सके।

पारिवारिक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन सन् 1970 से ही प्रयत्नशील है। मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य की रक्षा, मानव सन्तानोत्पत्ति, पोषण और स्वास्थ्य शिक्षा आदि प्रशाखाएं पारिवारिक स्वास्थ्य की उन्नति के लिए ही बनायी गई हैं। वर्तमान में विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी सहस्राब्दि विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय सरकारों के साथ साझा कार्यक्रम बनाकर, उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए अग्रसर है।

4. मानव शक्ति का विकास

उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति तथा जीवन स्तर को उन्नत बनाने के लिए नव शक्ति का विकास करना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के पास रोजगार होना चाहिए जिससे उसकी आर्थिक सामाजिक स्थिति सुदृढ़ एवं मजबूत बने। जब तक आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं होती तब तक व्यक्ति को अच्छे आवास, आहार, पोषण, वस्त्र, औषधियां आदि सुलभ नहीं हो पाती हैं। भोजन, वस्त्र, आवास आदि की व्यवस्था के लिए धन की आवश्यकता होती है। आर्थिक उन्नति तभी सम्भव है

जब मानव शक्ति का उचित विकास किया जा सके। इसके लिए यह संगठन अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संगठन के साथ मिलकर सहयोग से कार्य करता है।

5. जैव चिकित्सकीय एवं स्वास्थ्य सेवाओं पर शोध

जैव चिकित्सकीय उन्नति के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वयं तो शोध करता ही है, साथ ही सदस्य राष्ट्रों, क्षेत्रों को भी इस अनुसन्धान के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करता है। जैव चिकित्सकीय अनुसन्धान करने के लिए यह उन राष्ट्रों को वित्तीय सहायता भी पहुँचाता है तथा शोधकर्ताओं के लिए सहायता पहुंचाने का कार्य भी करता है। अनुसंधान क्षेत्रों, मेडिकल कालेजों को भी विश्व स्वास्थ्य संगठन आर्थिक सहायता प्रदान करता है। यह मेडिकल कॉलेजों में नये विभागों को खोलने में भी मदद करता है। इस संगठन की तकनीकी सेवाओं के अन्तर्गत वैक्सीन (टीकाकरण के लिए) एवं औषधियों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड भी निर्धारित किए जाते हैं। संगठन द्वारा इन्फ्लूएन्जा और पोलियो इत्यादि पर विशेष शोध कार्य कराये जाते हैं।

6. स्वास्थ्य सूचनाएं एवं ज्ञानवर्धक पत्रिकाएं प्रकाशित करना

विश्व स्वास्थ्य संगठन स्वास्थ्य संबंधी सूचनाएं एवं ज्ञानवर्धन पत्रिकाएं प्रकाशित करता है। इनके माध्यम से सदस्य राष्ट्रों एवं जन सामान्य के बीच सहयोग प्राप्त करने का प्रयास करता है। वर्ल्ड हैल्थ फोरम, पुस्तकें, तकनीकी बुलेटिन, जर्नल, मैनुअल, मोनोग्राफ आदि का प्रकाशन इस संगठन द्वारा किया जाता है। प्रकाशन का कार्य अरबी, चीनी, फ्रैंन्च, स्पैनिश, अंग्रेजी एवं रूसी भाषा में होता है।

7. स्वास्थ्य कार्यक्रमों का नियोजन एवं क्रियान्वयन

विश्व स्वास्थ्य संगठन, स्वास्थ्य कार्यक्रमों के नियोजन एवं क्रियान्वयन में सहयोग एवं सहायता प्रदान करता है। स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र खोलने के लिए प्रोत्साहित करता है। अन्य संगठनों जैसे खाद्य एवं कृषि संगठन के साथ मिलकर आहार की सुरक्षा के लिए मानक तैयार किए जाते हैं। कुपोषण, बाल विकास, मातृ पोषण, शिशु पोषण आदि पहलुओं पर विश्व स्वास्थ्य संगठन आवश्यक कार्यक्रम बनाता है एवं विकासशील देशों को इन समस्याओं से निजात पाने में मदद करता है। स्तनपान को संरक्षण, संवर्धन और समर्थन देने और निर्देशों पर अमल करने के समुदाय आधारित प्रयासों में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने यूनिसेफ के साथ मिलकर 1991 में बेबी फ्रेंडली हॉस्पिटल इनिशिएटिव (बी.एफ.एच.आई.) नामक कार्यक्रम को शुरु किया।

8. समुदाय में पोषण स्तर ज्ञात करना

विश्व स्वास्थ्य संगठन अपने स्तर पर समुदायों में पोषण स्तर का आंकलन करता है। पोषण स्तर के आंकलन के लिए शोधों के पश्चात् संगठन ने मानक सूचकांक जारी किए हैं, जिससे कुपोषण की तीव्रता को ज्ञात किया जा सकता है। विशेषतः तीव्र कुपोषण एवं मध्यम कुपोषण से ग्रस्त बच्चों को संगठन तुरन्त आपात सहायता प्रदान करता है।

9. पोषण सम्बन्धी शोध कर नीतियां बनाने में मदद करना

विश्व स्वास्थ्य संगठन पोषण संबंधी शोध द्वारा पोषक तत्वों की आवश्यकता, कमी से उत्पन्न लक्षण, व्यापकता, उनका नियन्त्रण एवं रोकथाम की तकनीक आदि पर जानकारी प्रदान करता है। इन शोधों द्वारा रोगों से संबंधित नीतियां बनाने में मदद मिलती है।

अभ्यास प्रश्न 2

---

1. बहुविकल्पीय प्रश्न।

a. प्रति वर्ष 7 अप्रैल को कौन-सा दिवस मनाया जाता है:

क. तम्बाकू निषेध दिवस	ख. पोषण दिवस
ग. डॉक्टर दिवस	घ.विश्व स्वास्थ्य दिवस

b. विश्व स्वास्थ्य संगठन का मुख्यालय कहाँ हैः

क. जेनेवा	ख. वाशिंगटन डीसी
ग. नई दिल्ली	घ. टोक्यो

2. विश्व स्वास्थ्य संगठन की गतिविधियों की संक्षिप्त में सूची बनाइये।

....

....

3. यूनिसेफ के साथ जुड़कर विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किए गये कार्यक्रमों के नाम क्या हैं?

....

....

आइए अब यूनिसेफ के बारे में चर्चा करें।

5.3.3 संयुक्त राष्ट्र बाल कोष-यूनिसेफ

यूनिसेफ एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशिष्ट शाखा है। इस संगठन की स्थापना द्वितीय विश्व युद्ध के बाद 1946 में हुई थी। इसका मुख्यालय न्यूयार्क में है परन्तु यूनिसेफ की अधिकांश प्रदाय व्यवस्था का संचालन कोपेनहेगन द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त जेनेवा, टोक्यो और सिडनी में भी यूनिसेफ के कार्यालय स्थापित किए गये हैं। यूनिसेफ की भारत की राष्ट्रीय शाखा नई दिल्ली में है।

यूनीसेफ द्वारा प्रारम्भ में चीन, यूरोप आदि देशों में युद्ध की विभीषिका से ग्रसित बालकों को वस्त्र, भोजन, औषधियां एवं अन्य उपयोगी सामग्री वितरित करने का कार्य किया गया। इस संगठन द्वारा यह कार्य अत्यन्त ही सराहनीय, प्रशंसनीय एवं प्रभावी रहा। इस संगठन की कार्य कुशलता एवं उपयोगिता को देखते हुए दिसम्बर सन् 1950 में इसके आदेश पत्र में आवश्यक परिवर्तन किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य अविकसित एवं विकासशील देशों के जरूरतमन्द बच्चों के हित के लिए कार्य करना था। सन् 1953 में यूनीसेफ को संयुक्त राष्ट्र संगठन का एक स्थायी अंग बना दिया गया तथा इसके नाम से अन्तर्राष्ट्रीय एवं आपातकालीन शब्दों को हटा दिया गया परन्तु इसका लोकप्रिय संक्षिप्त नाम यूनिसेफ यथावत रखा गया।

यह संगठन 1950 से ही विश्व के विकासशील देशों के बालकों की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रहा है। अब यूनिसेफ को विस्तृत रुप से संयुक्त राष्ट्र बाल कोष कहते हैं। सन् 1965 में यूनिसेफ को उसके बेहतर कार्यों के लिए शान्ति के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। 1989 में संगठन को इंदिरा गांधी शान्ति पुरस्कार भी प्रदान किया गया। सन् 2006 में **Prince of Asturias Award of Concord** दिया गया था।

सम्पूर्ण विश्व में इसके 200 से अधिक शहरों में कार्यालय हैं और 190 से अधिक स्थानों पर इसके कर्मचारी कार्यरत हैं।

उद्देश्य

यूनिसेफ का मुख्य उद्देश्य उन देशों को आर्थिक सहायता एवं सहयोग देना है जो मातृ एवं शिशु रोग के निवारणार्थ तथा उनके उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए संघर्षशील हैं।

यूनिसेफ के कार्य

बच्चे राष्ट्र की निधि हैं। राष्ट्र की इस अमूल्य सम्पत्ति की रक्षा आवश्यक है। इस धारणा के साथ यूनिसेफ बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए निरंतर प्रयत्न कर रहा है। बच्चों को भोजन, पोषण,

स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि उपलब्ध कराने हेतु यूनिसेफ द्वारा विभिन्न कार्य किए जाते हैं एवं कार्यक्रम चलाए जाते हैं। यूनिसेफ अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित कार्य करती है:

- शिशु पोषण
- शिशु स्वास्थ्य
- बाल विकास एवं जीवितता
- प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण
- जल और स्वच्छता
- बुनियादी शिक्षा
- सार्वभौमिक प्रतिरक्षण
- परिवार और शिशु कल्याण
- बच्चों में लिंग आधार पर समानता
- बच्चों का हिंसा से बचाव
- बाल श्रम का विरोध
- बच्चों में एच0आई0वी0 और स्वास्थ्य
- बच्चों के अधिकार
- आपातकालीन सहायता एवं पुनर्वास व्यवस्था

1. शिशु पोषण

शिशु के उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए पौष्टिक एवं सन्तुलित आहार आवश्यक है। यूनिसेफ खाद्य एवं कृषि संगठन तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ मिलकर तथा इनके सहयोग से उन क्षेत्रों में जहाँ कुपोषण जनित अंधता एवं विटामिन ए की कमी के अधिक रोगी हैं, विटामिन ए की खुराकें उपलब्ध करवाता है। घेंघा रोग एवं आयोडीन की कमी से प्रभावित क्षेत्रों में आयोडीन युक्त नमक के वितरण पर जोर भी देता है। यूनिसफ, शिशु पोषण स्तर को बनाए रखने के लिए पोषण शिक्षा, पूरक आहार वितरण, मातृ शिक्षा आदि तरीकों पर भी ध्यान देता है। संगठन शिशु मृत्यु दर एवं मातृ मृत्यु दर को कम करने के लिए सतत् कार्यरत है।

2. शिशु स्वास्थ्य

यूनिसेफ ने बच्चों के उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं रोगों से सुरक्षा हेतु कई टीके तैयार करवाने में सहयोग दिया है। छह जानलेवा रोगों से बच्चों की रक्षा के लिए प्रतिरक्षण टीके भी तैयार करवाए गये हैं। मातृ एवं शिशु के स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र भी खोले गये हैं। ग्रामीण जनता में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता पैदा करने के लिए विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं। उन्हें यूनिसेफ द्वारा तैयार श्रव्य दृश्य साधनों, फिल्म, पोस्टर, फोल्डर, चार्ट, टेपरिकॉर्डर आदि के माध्यम से स्वास्थ्य शिक्षा के बारे में अवगत कराया जाता है।

3. बाल विकास एवं जीवितता

यूनिसेफ द्वारा शिशु एवं बाल मृत्यु दर घटाने की सभी सार्थक प्रयास किए जाते हैं। इसके लिए यूनिसेफ समयानुसार टीकाकरण, समुदायों को स्वास्थ्य संबंधी पूरी जानकारी, परिवार में बच्चों की देखभाल करने वालों को समय पर सही स्वास्थ्य सेवा, विटामिन ए की पूरक खुराक, अतिसार से बचाव आदि पहलुओं पर सघन कार्य करता है।

4. प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण

यूनिसेफ शिशु/बालकों के स्वास्थ्य की उन्नति के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण पर जोर देता है तथा इससे संबंधित प्रशिक्षण चलाने के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान करता है। यूनिसेफ चिकित्सक, नर्स, जन स्वास्थ्य कार्यकर्ता, स्वास्थ्य सहायक तथा स्वास्थ्य से जुड़े कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कार्यक्रम बनाता है एवं उनका संचालन भी करता है। इसके साथ-साथ यूनिसेफ विभिन्न स्वास्थ्य केन्द्रों को नवीन उपकरण एवं तकनीकी सहायता उपलब्ध कराता है।

5. जल और स्वच्छता

स्वास्थ्य कार्यक्रमों को उन्नत एवं सफल बनाने के लिए जल एवं स्वच्छता आधारभूत आवश्यकता हैं। जब तक प्रत्येक व्यक्ति को पीने के लिए शुद्ध जल प्राप्त नहीं होता तब तक स्वास्थ्य के स्तर को ऊँचा नहीं उठाया जा सकेगा। अशुद्ध जल से अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। वातावरण स्वच्छता, ग्रामीण क्षेत्रों में शुद्ध जल की पूर्ति के लिए कई योजनाएं कार्यान्वित हैं। यूनिसेफ द्वारा सुरक्षित जल वितरण प्रणाली की योजना चलाई जा रही हैं। सुरक्षित जल प्राप्ति के लिए शहर से लेकर ग्रामीण क्षेत्रों तक कुएं, हैण्ड पम्प, ट्यूबवैल आदि की व्यवस्था की जाती है। जल के परीक्षण, शुद्धिकरण एवं वितरण व्यवस्था में सुधार किया जाता है।

6. बुनियादी शिक्षा

यूनिसेफ शिक्षा के माध्यम से लोगों में जागृति पैदा करने के लिए प्रयत्न कर रहा है, क्योंकि बहुत सारी बीमारियों एवं बुराइयों का कारण अशिक्षा है। इसके लिए यूनिसेफ द्वारा औपचारिक एवं अनौपचारिक, दोनों ही प्रकार की शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए विविध कार्यक्रम बनाए जाते हैं। यह संगठन प्राथमिक स्कूल के अध्यापकों एवं अन्य कर्मचारियों के लिए नवीन प्रशिक्षण कार्यक्रम का संचालन करता है। यह अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों को सुविधाएं, सहायता देने के साथ-साथ व्यवसायिक प्रशिक्षण भी प्रदान करता है। यह अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों को शिक्षण सामग्री जैसे पोस्टर, चार्ट, पुस्तकें, श्यामपट्ट, बुलेटिन, मैनुअल, ग्लोब, मानचित्र, दृश्य श्रव्य सामग्री आदि शिक्षा साधन उपलब्ध कराने में सहयोग देता है।

7. सार्वभौमिक प्रतिरक्षण

विश्व स्वास्थ्य संगठन सन् 1974 से ही बेहतर स्वास्थ्य हेतु विस्तृत प्रतिरक्षण कार्यक्रम (Expanded Programme on Immunization; EPI) चला रहा है। यूनिसेफ के सहयोग से इस कार्यक्रम को और भी बल मिला है। शिशुओं को छः घातक जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए प्रतिरक्षण कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं ताकि सम्पूर्ण विश्व में शिशु मृत्यु दर में गिरावट आए। यूनिसेफ ने विश्वभर में प्रचलित बीमारियों के अध्ययन के फलस्वरुप सार्वभौमिक प्रतिरक्षण हेतु पोलियो, क्षय रोग, खसरा, गलघोंटू, काली खांसी और टिटेनेस जैसी छः खतरनाक बीमारियों का चयन किया है। सार्वभौमिक प्रतिरक्षण के लिए 0-5 वर्ष तक के बच्चों को इन छः बीमारियों से बचाने के लिए टीके लगवाए जाते हैं। इन टीकों की वैक्सीन यूनिसेफ द्वारा उपलब्ध करायी जाती है। पोलियो को जड़ से मिटाने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा यूनिसेफ कृत संकल्प हैं। इसके लिए प्रतिवर्ष भारत में पल्स पोलियो अभियान चलाया जाता है तथा पोलियो की खुराक 0-5 वर्ष तक के सभी शिशुओं को मुफ्त में पिलायी जाती है।

8. शिशु और परिवार कल्याण

शिशु की स्वास्थ्य की रक्षा सम्पूर्ण विश्व के लिए चिंतनीय विषय है एवं इसके लिए विविध प्रकार के कार्यक्रम, योजनाएं चलाई जाती हैं। माता-पिता को शिक्षित करना, डे-केयर केन्द्र खोलना, शिशु कल्याण केन्द्र खोलना आदि कार्य यूनिसेफ की सहायता से किए जा रहे हैं। यह संगठन लड़कियों एवं महिलाओं को शिक्षित करने के लिए गृह क्लब, बाल संरक्षण, भोजन का परिरक्षण, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्र तथा धन उपार्जित करने के साधनों के लिए अनुदान राशि भी उपलब्ध करवाता है।

9. बच्चों में लिंग के आधार पर समानता

यूनिसेफ का एक संभाग पूरी तरह बालिका शिक्षा को समर्पित है। यह संभाग लड़कियों द्वारा सामना की जा रही बाधाओं, बालिका शिक्षा की गुणवत्ता एवं उपलब्धता, बालिका शिक्षा आन्दोलन और कुछ सामयिक तथ्य एवं आंकड़े उपलब्ध कराता है। यूनिसेफ और यूनाइटेड नेशन फैमिली फण्ड साथ मिलकर लैंगिक समानता पर कार्य कर रहे हैं।

10. बाल श्रम का विरोध

यूनिसेफ बाल श्रम के विरोध अभियान का मुख्य हिस्सा है। यूनिसेफ बाल श्रम उन्मूलन के लिए विभिन्न कार्यक्रम नियोजित कर कार्य करता है।

11. बच्चों में एच0आई0वी0 और स्वास्थ्य

यूनिसेफ एच0आई0वी0 पीड़ित बच्चों एवं उनकी माताओं के लिए दवाएं उपलब्ध कराता है। यूनिसेफ एड्स के विरुद्ध एकजुटता अभियान का हिस्सा है। यह एड्स से प्रभावित बच्चों के साथ भेदभाव पूर्ण व्यवहार के खिलाफ संघर्ष करता है।

13. बच्चों के अधिकार

यूनिसेफ विश्व भर में बच्चों के अधिकारों के लिए कार्य करता है। यह समुदाय को बच्चों के अधिकारों के बारे में जागरुक करता है।

14. आपातकालीन सहायता एवं पुनर्वास व्यवस्था

यूनीसेफ संकटकाल एवं आपातकाल से ग्रस्त राष्ट्रों/देशों/क्षेत्रों को सहयोग एवं सहायता प्रदान करता है। वे देश जो प्राकृतिक विपदाएं जैसे भूकम्प, बाढ़, सूखा, अकाल, भू -स्खलन आदि के शिकार होते हैं, उन्हें आवश्यक औषधियां, आवास, खाद्य सामग्री, जलापूर्ति, उपकरण एवं अन्य उपयोगी वस्तुएं उपलब्ध करवाता है। भूकम्प, दंगे, भू-स्खलन आदि की स्थिति में यूनिसेफ सुरक्षा कार्यक्रमों एवं पुनर्वास की व्यवस्था भी करता है।

भारत में यूनिसेफ

यूनिसेफ ने सन् 1949 से ही भारत में अपना कार्य करना आरम्भ कर दिया था। भारत में अब तक यूनिसेफ द्वारा 100 से ज्यादा प्रयोगशालाओं के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान किए गये हैं। यूनिसेफ द्वारा अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा उपकेन्द्रों हेतु आवश्यक उपकरण एवं अन्य पदार्थ प्रदान किए गए हैं। यूनिसेफ अस्पतालों को भ्रमणशील इकाईयाँ तथा ऐम्बूलेंस भी उपलब्ध कराता है।

भारत में यूनिसेफ ने 1959 में विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा खाद्य एवं कृषि संगठन की सहायता एवं सहयोग से विस्तृत पोषण कार्यक्रम (Expanded Nutrition Programme) चलाया। इस कार्यक्रम का संचालन महिला मंडल द्वारा किया गया था। 1963 में पुनः इसी कार्यक्रम में गर्भवती एवं धात्री माताओं के लिए भी पोषण सेवाएं तैयार की गयीं तथा इस कार्यक्रम का नाम ऐप्लाइड पोषण कार्यक्रम (Applied Nutrition Programme) रखा गया। सन् 1980-90 में यूनिसेफ ने भारत सरकार के सहयोग से सुदूर गाँवो में निवास करने वाली जनता तक अपनी सेवाएं पहुँचाने का लक्ष्य निर्धारित किया। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यह संगठन निरन्तर प्रयत्नशील है।

यह संगठन खाद्य सामग्री जैसे दूध का पाउडर, गेहूँ का आटा, दलिया, चावल, चीनी, पोषक पदार्थ एवं अन्य खाद्य सामग्री को वितरित कराने में भी अपना अमूल्य योगदान देता है। यूनिसेफ द्वारा शिशु और बालकों में मृत्युदर को कम करने के लिए एक अभियान 'गोबी' (GOBI) चलाया गया था, जिसमें चार कार्यक्रमों को प्रोत्साहित किया गया:

1. वृद्धि निगरानी (Growth Surveillance) - G
2. मौखिक पुनर्जलीकरण (Oral Rehydration) - O
3. स्तनपान को प्रोत्साहन (Promotion of breastfeeding) - P
4. प्रतिरक्षण कार्यक्रम (Immunization Programme) - I

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. सन् .... में यूनिसेफ की स्थापना हुई थी।
   b. यूनिसेफ का मुख्यालय .... में है।
   c. .... यूनिसेफ का एक प्रचलित अभियान है।
   d. यूनिसेफ को 1965 में .... पुरस्कार प्रदान किया गया था।
   e. टीकाकरण अभियान में .... बीमारियाँ सम्मलित हैं।

5.3.4 केयर- कोऑपरेटिव फॉर असिस्टेंस एण्ड रिलीफ ऐव्रीव्हैर (Cooperative for Assistance and Relief Everywhere, CARE)

यह एक बड़ा निजी संगठन है जो दुनिया भर के लोगों की आपात स्थिति में और आवश्यकता पड़ने पर लंबे समय तक सहायता प्रदान करता है। इस संगठन की स्थापना 1945 में हुई थी। विकासशील देशों में केयर की कार्य नीति में व्यापक मुद्दे जैसे आपातकालीन प्रतिक्रिया, खाद्य सुरक्षा, जल और

स्वच्छता, आर्थिक विकास, कृषि, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सम्मलित हैं। संगठन विशेष रूप से महिलाओं और लड़कियों को सशक्त बनाने और लैंगिक समानता को बढ़ावा देने पर केन्द्रित है। इसका मुख्यालय जेनेवा में स्थित है।

केयर के कार्य

केयर के कार्य निम्नलिखित व्यापक विषयों से सम्बन्धित हैं:

1. महिला सशक्तिकरण एव लैंगिक समानता: केयर अपनी पहली प्राथमिकता के रूप में महिलाओं एवं लड़कियों के सशक्तिकरण को सूचीबद्ध करता है। सन् 2006 में केयर के लैंगिक समानता के अभियान में समन्वय और गुणवत्ता सुधार के लिए केयर इंटरनेश्नल जेंडर नेटवर्क (CIGN) का गठन किया गया था। केयर के महिला सशक्तिकरण कार्यक्रमों से महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा मिलता है, महिलाओं को एकजुट कर सहायता समूह बनाने में मदद मिलती है एवं यौन हिंसा से बचाव में समर्थन मिलता है।

2. आपातकालीन सेवा: केयर आपातकालीन राहत तो प्रदान करता ही है, साथ-साथ यह आपात स्थिति की रोकथाम, तैयारी एवं सुधार कार्यक्रमों का भी क्रियान्वयन करता है।

3. खाद्य सुरक्षा: केयर आपातकालीन खाद्य सहायता प्रदान करता है। यह कुपोषण की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए, उचित स्तनपान के तरीके, पौष्टिक भोजन की तैयारी, उचित कृषि विधियों से सम्बन्धित शिक्षा प्रदान करता है।

4. स्वास्थ्य: केयर के ज्यादातर कार्यक्रम मातृ स्वास्थ्य और एच0आई0वी0 एड्स के बचाव एवं जागरुकता पर केन्द्रित हैं। कुछ कार्यक्रम पोषण, सुरक्षित पीने का पानी, स्वास्थ्य शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर भी कार्यरत हैं।

5. शिक्षा: केयर स्कूली शिक्षा के लिए आर्थिक मदद प्रदान करता है। बालिकाओं की शिक्षा को अधिक महत्व देते हुए इसके कार्यक्रम बालिकाओं की शिक्षा की गुणवत्ता पर केन्द्रित रहते हैं।

6. पानी, सफाई एवं स्वच्छता: केयर स्वच्छ जल की व्यवस्था के साथ जगह-जगह पर शौचालयों का निर्माण भी कराता है। यह अपने कार्यक्रमों द्वारा स्वच्छता और जल जनित बीमारियों के बारे में शिक्षा प्रदान करता है। कार्यक्रमों का उद्देश्य पानी से संबंधित रोगों के खतरे को कम करना और कमाई की क्षमता को बढ़ाना है।

7. आर्थिक विकास: केयर आर्थिक विकास के लिए उद्यमिता प्रशिक्षण भी प्रदान करता है।

भारत में केयर

केयर ने सन् 1950 से भारत में अपना अभियान शुरु किया था। इसका मुख्य कार्य आई0सी0डी0एस0 कार्यक्रम के लिए भोजन सामग्री उपलब्ध कराना है। यह स्वास्थ्य एवं आय सृजन कार्यक्रमों की योजना भी बनाता है।

भारत में केयर केंद्र सरकार, राज्य सरकार एवं अन्य संगठनों के साथ मिलकर कार्य करता है। भारत में केयर ने निम्नलिखित योजनाओं में सहायता प्रदान की तथा उन्हें प्रोत्साहित किया।

- समन्वित बाल विकास योजना
- एकीकृत पोषण और स्वास्थ्य कार्यक्रम
- बाल जीवितता परियोजना

5.3.5 यू0एन0डी0पी0 (संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम)

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम का गठन 1965 में हुआ था। इसका मुख्यालय न्यूयॉर्क में है। यह गरीबी कम करने, आधारभूत ढाँचे के विकास और प्रजातांत्रिक प्रशासन विकास लक्ष्यों को पूरा करने का कार्य करता है। शताब्दी विकास लक्ष्यों को पूरा करने और वैश्विक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए यूएनडीपी गरीबी को कम करने, एचआइवी/एड्स की रोकथाम, ऊर्जा एवं पर्यावरण सन्तुलन, सामाजिक विकास एवं आपात स्थिति की रोकथाम एवं नियन्त्रण पर ध्यान केन्द्रित कर कार्य कर रहा है।

यूएनडीपी प्रत्येक वर्ष मानव विकास सूचकांक पर रिपोर्ट प्रकाशित करता है। भारत में यूएनडीपी वैश्विक शताब्दी विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है। यह पंचवर्षीय योजनाओं को पूरा करने में मदद प्रदान करता है। इस संगठन का लक्ष्य भारत में गरीब परिवारों के जीवन स्तर में सुधार लाना है।

अभ्यास प्रश्न 4

---

1. 'केयर' संगठन की स्थापना कब हुई थी?

   ....

   ....
2. भारत में 'केयर' ने किन योजनाओं को सहायता प्रदान की है?

   ....

   ....

3. 'केयर' संगठन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

....

....

4. यू0एन0डी0पी का गठन कब हुआ था एवं उसका मुख्यालय कहां है?

....

....

5. भारत के परिपेक्ष में यूएनडीपी की क्या भूमिका है?

....

....

5.3.6 यू0एन0एफ0पी0ए0- संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष

इसकी स्थापना सन् 1969 में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य जनसंख्या संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना है। यू0एन0एफ0पी0ए0 भारत में निम्न कार्य करता है:

- यह भारत को सन् 1974 से सहायता प्रदान कर रहा है।
- यह राष्ट्रीय स्तर की परियोजनाओं को आर्थिक मदद प्रदान करता है।
- यू0एन0एफ0पी0ए0 हर मनुष्य, महिला और बच्चे के अधिकार, स्वास्थ्य और समानता को बढ़ावा देता है।
- इसकी मदद से महिलाओं और युवाओं में स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन जीने की संभावनाओं में विस्तार होता है।
- यू0एन0एफ0पी0ए0 परिवारों को स्वस्थ रखने के निम्न कार्य करता है:
    - ➢ स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को उत्तम परिवार नियोजन सेवाएं देने के लिए प्रशिक्षण देता है।
    - ➢ आपात स्थितियों में गर्भ निरोधकों की आपूर्ति करता है।
    - ➢ युवाओं के अनुकूल प्रजनन स्वास्थ्य की देखभाल करता है।
    - ➢ गर्भावस्था से बचने या विलम्ब के लिए उचित परामर्श मुहैया कराता है।
    - ➢ बच्चों के जन्म के बीच अन्तर रखने के लाभों के विषय में लोगों को शिक्षित करता है।

संगठन मातृ स्वास्थ्य को भी प्रोत्साहित करता है। इसके लिए यह दाइयों और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को उचित प्रशिक्षण प्रदान करता है। आपातकाल में प्रसूति देखभाल को सुदृढ़ करता है। मातृ

स्वास्थ्य के लिए आवश्यक दवाओं और उपकरणों की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। उचित मातृ स्वास्थ्य के लिए बच्चों के बीच अन्तर बनाये रखने की शिक्षा देता है।

5.3.7 अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता एजेंसी (United States Agency for International Development, USAID)

इस संस्था की स्थापना 1961 में हुई थी। यह संस्था स्वास्थ्य कार्यक्रमों को चलाने के लिए ऋण दिलवाती एवं देती है। यूएसएड ने मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम में सहायता प्रदान की है। इसके अलावा संस्था डॉक्टरी शिक्षा, जल एवं स्वच्छता, संक्रामक रोगों के नियन्त्रण, पोषण एवं परिवार नियोजन जैसे अवयवों पर भी कार्य करती है एवं प्रोत्साहित करती है।

5.3.8 विश्व बैंक

यह संयुक्त राष्ट्र की विशेष संस्था है। इसका कार्य 1946 में प्रारम्भ हुआ था। विश्व बैंक के सदस्य राज्यों को निजी पूंजी उपलब्ध न होने पर ऋण देता है।

कार्य: यह संस्था निम्नलिखित कार्यों के लिए ऋण देती है:

- कृषि, जल आपूर्ति, शिक्षा
- सड़क, रेल, बिजली, परिवार नियोजन
- स्वास्थ्य एवं पर्यावरण
- अस्पताल देखभाल

5.3.9 भारतीय रेडक्रॉस सोसायटी

भारत में वर्ष 1920 में पार्लियामेंन्ट एक्ट के अन्तर्गत भारतीय रेडक्रॉस सोसाइटी का गठन हुआ था। अब इसकी देश भर में 400 शाखाएं हैं। इसका मुख्य उद्देश्य घायलों तथा रोगियों की देखरेख करना है। यह सोसाइटी अस्पतालों, बाल गृह, अनाथालय एवं प्राइमरी विद्यालयों आदि में भोज्य सामग्री, दवाईयां, दूध आदि भी प्रदान करती है। कुछ प्रदेशों में सोसाइटी द्वारा परिवार नियोजन क्लीनिक भी चलाए जाते हैं। कहीं-कहीं इसी सोसाइटी द्वारा ब्लड बैंकों का भी संचालन किया जाता है। वर्षों से यह सोसाइटी फर्स्ट एड का प्रशिक्षण देती है।

अभ्यास प्रश्न 5

---

1. संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

....

....

2. भारत में संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष कब से कार्यरत है?

....

....

3. भारतीय रेडक्रॉस सोसायटी के क्या उद्देश्य हैं?

....

....

4. विश्व बैंक एवं यूएसएड की सामाजिक विकास में क्या भूमिका है?

....

....

5.4 सारांश

सभी के लिए उत्तम स्वास्थ्य के ध्येय से विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित हुए जो समुदाय के विकास एवं अच्छे जीवन स्तर हेतु निरन्तर कार्यरत हैं। संगठन चाहे जो भी हो उनका लक्ष्य मनुष्य के जीवन स्तर को बढ़ा कर जीवन जीने का अच्छा माहौल तैयार करना है। खाद्य एवं कृषि संगठन का उद्देश्य खाद्य उत्पादन बढ़ाना एवं देश की अर्थव्यवस्था में सुधार कर पोषण स्तर सुधारना है। यह संस्था संकट की समस्या को हल करने में सतत् प्रयत्नशील है। विश्व स्वास्थ्य संगठन का उद्देश्य विश्व के देशों की आम जनता को स्वास्थ्य की उच्चतम दशा को प्राप्त करवाना है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त बच्चों को राहत पहुंचाने के उद्देश्य से यूनीसेफ की स्थापना हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य और पोषण तथा बाल कल्याण कार्यक्रमों के माध्यम से बाल कल्याण तथा स्वास्थ्य सम्बंधी कार्यों को प्रोत्साहन देना है। यू0एन0डी0पी0 का गठन 1965 में हुआ था। यह संस्था भी पूरे समर्थन के साथ विकासशील देशों के विकास हेतु कार्य कर रही है। केयर एक स्वतंत्र संस्था है जो महिलाओं एवं लड़कियों को सशक्त बनाने का कार्य करती है। अन्य संगठन भी अपने उद्देश्यों के साथ समुदाय के विकास में लगे हुए हैं।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **एफ0ए0ओ0:** खाद्य एवं कृषि संगठन

- **डब्लू0एच0ओ0:** विश्व स्वास्थ्य संगठन
- **यूनिसेफ:** संयुक्त राष्ट्र बाल कोष
- **यू0एन0डी0पी0:** संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम
- **यू0एन0एफ0पी0ए0:** संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष
- **यूएसएड:** अंतर्राष्ट्रीय विकास सहायता ऐजेंसी
- **केयर:** कोऑपरेटिव फॉर असिस्टेंस एण्ड रिलीफ ऐव्रीव्हैर

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. अंतर्राष्ट्रीय संगठन कार्यक्रम नियोजन, वित्त पोषण एवं सहायता सामग्री उपलब्ध करा कर सामाजिक पोषण का उत्थान कर सकते हैं।
2. सन् 1945
3. रोम, इटली
4. खाद्य उत्पादन बढ़ाना

अभ्यास प्रश्न 2

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. घ. विश्व स्वास्थ्य दिवस

b. क. जेनेवा

2. इकाई का मूल भाग देखें।
3. इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 1996
   b. न्यूयॉर्क
   c. गोबी
   d. शान्ति नोबल पुरस्कार
   e. छः

अभ्यास प्रश्न 4

1. 1945
2. इकाई का मूल भाग देखें।
3. इकाई का मूल भाग देखें।
4. 1965, न्यूयॉर्क
5. भारत में यू0एन0डी0पी0 वैश्विक शताब्दी विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है।

अभ्यास 5

1. जनसंख्या संबंधी कार्यक्रमों को बढ़ावा देना
2. 1974

a. घायलों तथा रोगियों की देखभाल करना।

3. ये दोनों संस्थाएं विकास कार्यक्रमों के लिए वित्त का प्रबन्ध करती हैं।

5.7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- Swaminathan M. (1985) Essentials of Food and Nutrition Vol I. Bangalore Printing Publishing Co. Ltd. Bangalore 630p.
- Sehgal S. and Raghuvanshi R.S. (Eds). 2007. Text book of community nutrition. ICAR, New Delhi. 524p.
- Park J.E., 1991. Text book of Preventive and social medicine. Banarasi Das Bharot. 512p.

इंटर्नेट स्रोत

- www.fao.org
- www.unicef.org

5.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. यूनिसेफ के कार्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।

2. विश्व स्वास्थ्य की गतिविधियाँ विकास की ओर लेकर जाती हैं। इस कथन को उदाहरण देकर सिद्ध करें।
3. पोषण से संबंधित किन्हीं दो अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का विवरण दीजिए।

इकाई 6: भारत में पोषण सम्बन्धी समस्याएं

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पोषण सम्बन्धी समस्याओं की व्यापकता
6.3.1 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण
6.3.2 एनीमिया/ रक्ताल्पता
6.3.3 विटामिन 'ए' की कमी
6.3.4 आयोडीन अल्पता विकार
6.3.5 अतिपोषण एवं अन्य अ पक्षयी विकार
6.4 कुपोषण को नियंत्रित करने के उपाय एवं योजना
6.5 सारांश
6.6 पारिभाषिक शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

अभी तक आप समुदाय से सम्बन्धित विभिन्न आयामों जैसे समुदाय का पोषण स्तर ज्ञात करना, समुदाय पोषण में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का योगदान तथा समुदाय पोषण को उत्तम बनाए रखने के लिये चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में पढ़ चुके हैं। अब हम भारत में विभिन्न पोषण सम्बन्धी समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। विभिन्न कार्यक्रमों, योजनाओं एवं संगठनों द्वारा पोषण स्तर को ज्ञात करने का कार्य किया जाता है। उसके फलस्वरूप प्राप्त नतीजों से समुदाय में व्याप्त पोषण सम्बन्धी समस्याओं के बारे में पता चलता है। भारत में कुपोषण नयी समस्या नहीं है, न ही कुपोषण की कोई एक विशिष्ट किस्म है। इसके अनेक रूप हैं जो अक्सर एक दूसरे के साथ मिलकर प्रकट होते हैं। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण, आयोडीन की कमी से उत्पन्न विकृतियां तथा लौह तत्व और विटामिन ए की कमी कुपोषण के अनेक रूपों के कुछ उदाहरण हैं। वैसे तो कुपोषण किसी भी उम्र में हो सकता है परन्तु बच्चे इससे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। विकाशसील देशों में

पाँच वर्ष से छोटे लगभग बीस करोड़ से अधिक बच्चे कुपोषण का शिकार हैं। आंकड़े बताते हैं कि पाँच साल से छोटे बच्चों की मृत्यु का मुख्य कारण कुपोषण है। क्षति की यह स्थिति मृत्यु तक ही सीमित नहीं है, कुपोषित बच्चों का मानसिक विकास उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। वे बार-बार बीमार पड़ते हैं और उनका पोषण स्तर गिरता जाता है। ऐसे बच्चे बड़े होकर राष्ट्र के विकास में सहयोग नहीं दे पाते। इस तरह कुपोषण अप्रत्यक्ष रूप से जीवन स्तर एवं राष्ट्र की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान पाएंगे कि;

- कुपोषण के मुख्य कारण क्या हैं तथा भारत में कुपोषण की क्या स्थिति है;
- प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण, एनीमिया, विटामिन ए की कमी तथा आयोडीन अल्पता विकार के कारण तथा लक्षण क्या हैं;
- अतिपोषण तथा अन्य अपक्षयी स्थितियों से सम्बन्धित विभिन्न विकार कौन-से हैं; तथा
- कुपोषण से बचाव के लिए कौन-से उपाय अपनाने चाहिए।

आइए सर्वप्रथम इन समस्याओं की व्यापकता पर चर्चा करें।

6.3 पोषण सम्बन्धी समस्याओं की व्यापकता

पोषण सम्बन्धी समस्याएं जैसे कुपोषण, एनीमिया, विटामिन ए की कमी, आयोडीन अल्पता विकार आदि सभी विश्व में व्यापक रूप से प्रसारित हैं। ये सभी जनस्वास्थ्य समस्याएं बन गई हैं। आइये भारत में कुछ पोषण सम्बन्धी समस्याओं की व्यापकता एवं उनके प्रभावों पर दृष्टि डालें।

साल 2011 तक भारत में कुपोषण के कारण सामान्य से कम लम्बाई के बच्चों की संख्या लगभग 6.17 करोड़ थी। जो विश्व में कुल कुपोषित बच्चों की संख्या का 37.9 फिसदी हिस्सा है (स्रोत: यूनिसेफ, 2013)। भारत में 70 फीसदी से ज्यादा महिलाएं और बच्चे गम्भीर पोषणज कमियों से ग्रसित हैं जिनमें एनीमिया प्रमुख है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 के अनुसार भारत में औसत से कम लम्बाई के बच्चों (तीन साल तक की उम्र के) की संख्या कम हुई है। तीन साल तक की उम्र के 43 प्रतिशत बच्चे कम वजन वाले हैं, जबकि 38 प्रतिशत स्टन्टेड (बौने) और 19 प्रतिशत वेस्टेड (क्षीण) हैं। शिशु मृत्यु दर 50 है एवं लगभग 22 प्रतिशत नवजात शिशु कम जन्म भार (2.5 किलो से

कम) के साथ पैदा होते हैं। बच्चों में एनीमिया की व्यापकता भी ज्यादा पायी गयी। तीन साल तक के बच्चों में एनीमिया की व्यापकता 70 प्रतिशत पायी गयी। यह भी पाया गया कि 12-13 महीने के सिर्फ 44 प्रतिशत बच्चों को ही सम्पूर्ण टीकाकरण कराया गया। 5 प्रतिशत बच्चों को कभी कोई भी टीका नहीं लगवाया गया। सर्वेक्षण में पाया गया कि लगभग 36 प्रतिशत महिलाओं का आधारीय चयापचय सूचकांक 18.5 से कम था अर्थात वे कम वजन की थीं। उनमें से 44 प्रतिशत महिलाएं मध्यम या गम्भीर रूप से कुपोषित थीं। 15-49 वर्ष की विवाहित महिलाओं में अधिक वजन एवं मोटापे की दर राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-2 में 11 प्रतिशत थी जो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 में बढ़कर 15 प्रतिशत हो गयी। यह भी देखा गया कि महिलाएं या तो अल्पपोषित हैं या अतिपोषित। महिलाओं में अल्पपोषण ग्रामीण क्षेत्रों में ज्यादा व्याप्त है। मोटापा एवं अतिभार शहरी इलाकों में ग्रामीण इलाकों से तीन गुना ज्यादा है। 15-19 वर्ष की लड़कियों में कुपोषण की दर 47 प्रतिशत है। उम्र के साथ-साथ अल्पपोषण की दर घटती जा रही है एवं अति पोषण बढ़ता जा रहा है। महिलाओं में एनीमिया की व्यापकता राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-2 से अधिक पाई गई। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-3 से पता चलता है कि शहरों में 50 प्रतिशत से ज्यादा महिलाएं एनीमिया से ग्रसित हैं। गर्भवती महिलाओं में एनीमिया की दर 59 प्रतिशत है।

माइक्रोन्यूट्रिऐन्ट इनिशिएटिव जो विश्व की सर्वाधिक संवेदनशील जनसंख्या में विटामिन एवं खनिज लवणों की कमी को खत्म करने के लिए कार्यरत एक प्रमुख अग्रणी संगठन है, ने भारत की स्थिति की रिपोर्ट में कहा है:

- भारत में 42 प्रतिशत बच्चे Stunted (बौने) हैं।
- भारत में सबसे ज्यादा विटामिन 'ए' की कमी से ग्रसित बच्चे हैं।
- लगभग 51 प्रतिशत शालापूर्व बच्चे विटामिन 'ए' की कमी से पीड़ित हैं। 5 प्रतिशत गर्भवती महिलाएं भी विटामिन 'ए' की कमी के प्रभाव के कारण रतौंधी से पीड़ित हैं।
- देश के 85 प्रतिशत जिलों में लोगों के आहार में आयोडीन की कमी है। कुपोषण के कारण बच्चों का संज्ञानात्मक विकास ठीक से नहीं हो पाता है। आंकलन के अनुसार बाल मृत्यु की 50 फीसदी घटनाओं की बड़ी वजह कुपोषण है।

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के क्रियान्वयन के पश्चात् 2005 से भारत की पोषण एवं स्वास्थ्य स्थिति में सकारात्मक बदलाव देखे गये हैं। इसके अनुसार:

- भारत में शिशु मृत्यु दर घट कर 30 प्रति 1 हजार जन्म लेने वाले बच्चों पर है।

- मातृ अनुपात घट कर 100 प्रति 1 लाख जन्म देने वाली माताओं में हुआ।
- कुल प्रजनन दर 2 प्रतिशत है।
- सभी पोषण सम्बन्धी बीमारियों जैसे घेंघा रोग, रतौंधी, एनीमिया की प्रसार दर कम हो रही है।
- भारत में मातृ मृत्यु दर 1990 से 2013 के बीच 65 प्रतिशत घटी है।

6.3.1 प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण विकासशील देशों की मुख्य जन स्वास्थ्य समस्या है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का मुख्य कारण बचपन में अपर्याप्त एवं असंतोषजनक आहार है। यह रोग मुख्यतः बच्चों को होता है। लगभग 70 प्रतिशत बच्चे जो माँ का दूध पीना जल्दी छोड़ देते हैं, प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ग्रसित हो जाते हैं। इस रोग के साथ अधिकतर संक्रमण भी हो जाते हैं। कुपोषण शरीर की मुख्य रोग प्रतिरोधी प्रतिक्रिया प्रणालियों को कमजोर करके शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता को क्षीण कर देता है। इसके कारण जल्दी-जल्दी, लम्बे समय तक गम्भीर बीमारियों से शरीर ग्रसित रहता है। बीमारियों के कारण कुपोषण और अधिक बढ़ जाता है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण उच्च बाल मृत्यु दर का महत्वपूर्ण कारण है। तीव्र कुपोषण में बच्चा यदि बच भी जाए तो उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध होता है जिससे सामाजिक एवं आर्थिक विकास दोनों ही प्रभावित होते हैं। जब शरीर को प्रोटीन ऊर्जा या दोनों की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है तब वह प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ग्रसित होता है। बच्चों में इसके कारण वृद्धि अवरोध होता है एवं वयस्कों में क्षीणता।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का वर्गीकरण

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण को तीव्रता अवधि एवं मुख्य पोषक तत्व की कमी के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।

तालिका 6.1: प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का वर्गीकरण

तीव्रता	अवधि	मुख्य पोषक तत्व
न्यून	अल्पकालिक	ऊर्जा
मध्यम	चिरकालिक	प्रोटीन
तीव्र	उपरोक्त दोनों	उपरोक्त दोनों

कुपोषण की तीव्रता को मानवमितीय मापों से नापा जाता है। जब तीव्र कुपोषण होता है तो उसे प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण कहते हैं। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण निम्नलिखित तीन प्रकार से परिलक्षित होता है।

(1) क्वाशियोरकर (Kwashiorkar)

(2) मरास्मस या सूखा रोग (Marasmus)

(3) मरास्मिक क्वाशियोरकर (Marasmic Kwashiorkar)

(1) क्वाशियोरकर: क्वाशियोरकर रोग 1-4 साल के बच्चों में होता है। 'क्वाशियोरकर' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1935 में सिसली विलियम्स ने किया था। यह एक अफ्रीकन शब्द है जिसका अर्थ उस रोग से है जो पहले बच्चे को दूसरे बच्चे के जन्म के बाद होता है (Disease which the child gets when the next baby is born)। क्वाशियोरकर रोग आहार में ऊर्जा की अपेक्षा प्रोटीन की कमी के कारण होता है। यह मुख्यतः तब होता है जब छोटे बच्चे से माँ का दूध छुड़ा दिया जाता है एवं उसे पूरक आहार के रूप में स्टार्च युक्त (कार्बोहाइड्रेट) आहार (जिसमें प्रोटीन की मात्रा न के बराबर या कम होती है) दिया जाता है। आहार में प्रोटीन या तो कम मात्रा में होता है या उसकी गुणवत्ता अच्छी नहीं होती है। आहार में प्रोटीन की लम्बे समय तक कमी रहने के कारण बच्चे का वजन कम होने लगता है। वजन में यह कमी बहुत ज्यादा नहीं होती है क्योंकि बच्चे को ऊर्जा तो मिल ही रही होती है। क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चों में निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं:

1. वृद्धि में रुकावट: क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चे की वृद्धि एवं विकास दोनों ही अवरुद्ध हो जाते हैं। बच्चे का वजन आयु के अनुरूप कम होता है। इन बच्चों की ऊँचाई भी आयु के अनुरूप कम रह जाती है। इस स्थिति को 'Stunting' (बौनापन) कहते हैं।

2. सूजन (Oedema): शरीर में प्रोटीन की कमी से सूजन हो जाती है। शरीर की सभी कोशिकाओं एवं ऊतकों के बीच पानी भर जाता है। सूजन की मात्रा प्रोटीन की कमी, रक्त में एल्ब्यूमिन की कमी, नमक एवं जल की अधिकता आदि पर निर्भर करती है। सूजन सबसे पहले पंजों एवं पैरों पर आती है। तत्पश्चात् जाँघों, हाथों और मुँह तक फैल जाती हैं। सूजन के कारण बच्चा तन्दुरुस्त दिखता है और उसके हाथ-पैर तथा मुँह मोटे तथा फूले हुए दिखते हैं।

3. माँसपेशियों का क्षय: शरीर की माँसपेशियाँ नष्ट होने लगती हैं। इसका प्रभाव बाँहों, हाथों की माँसपेशियों एवं टाँगों पर अधिक पड़ता है। ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा कम हो जाता है।

4. मानसिक परिवर्तन: बच्चे के स्वभाव में उदासीनता एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है। बच्चा बात-बात पर रोने लगता है। बच्चे को अपने आस-पास की किसी भी गतिविधि या खेल में रुचि नहीं होती है। बच्चा आलसी, सुस्त एवं थका-थका दिखाई देता है। अधिक तीव्रता की स्थिति में बच्चे बिस्तर पर सुस्त पड़े रहते हैं।

5. रक्ताल्पता: प्रोटीन की कमी के कारण हीमोग्लोबिन का निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है जिसके कारण रक्ताल्पता या एनीमिया रोग हो जाता है।

6. बालों में परिवर्तन: इस रोग के होने पर बाल रूखे, कड़क एवं चमकहीन हो जाते हैं। बालों के रंग में परिवर्तन आ जाता है। बालों का रंग फीका पड़ जाता है और उनमें भूरापन, सुनहरापन या सफेदी आ जाती है। बालों की वृद्धि रुक जाती है। प्रोटीन की कमी के कारण बाल झड़ने लगते हैं। बाल कमजोर होकर आसानी से खींच कर टूट जाते हैं।

7. त्वचा पर प्रभाव: प्रोटीन की कमी के कारण त्वचा का रंग भी बदल जाता है। त्वचा शुष्क, खुरदुरी एवं कांतिहीन हो जाती है। त्वचा पर जगह-जगह गहरे भूरे रंग के काले चकत्ते पड़ जाते हैं। ऐसा वर्णकों की अधिकता के कारण होता है।

8. चन्द्राकार मुख: ऊतकों एवं कोशिकाओं में पानी भर जाने के कारण शरीर में सूजन आ जाती है। हाथ, पैर तथा टाँगों के अतिरिक्त मुँह पर भी सूजन आ जाती है। इस सूजन के कारण बच्चे का मुख चन्द्रमा के समान गोल हो जाता है।

9. भूख में कमी एवं अतिसार: प्रोटीन की कमी से पाचन सम्बन्धी अनेकों गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। भोजन को पचाने के लिए पाचक रसों एवं विभिन्न एन्जाइमों की आवश्यकता होती है क्योंकि एन्जाइम का निर्माण प्रोटीन से ही होता है, इसलिए प्रोटीन के अभाव में पाचन में प्रयोग होने वाले एन्जाइमों का निर्माण उचित प्रकार नहीं हो पाता है, जिससे पाचन, अवशोषण एवं चयापचय की क्रिया बाधित होती है। फलस्वरूप पाचन शक्ति क्षीण होने लगती है। पाचन शक्ति क्षीण होने के कारण बच्चे को ठीक प्रकार से भूख नहीं लगती है तथा बच्चे को अतिसार हो जाता है। अतिसार होने पर शरीर से अधिक मात्रा में पोटेशियम एवं अन्य खनिज लवणों का निष्कासन होने लगता है जिससे बच्चे की स्थिति गम्भीर हो सकती है।

10. श्लैष्मिक झिल्लियों का प्रभाव: प्रोटीन की कमी के कारण श्लैष्मिक झिल्लियाँ प्रभावित होती हैं। होंठ फटने एवं कटने लगते हैं। जीभ की सतह चिकनी हो जाती है।

11. नाड़ी संस्थान पर प्रभाव: प्रोटीन की कमी से न केवल बच्चे का शारीरिक विकास ही अवरुद्ध होता है बल्कि मानसिक एवं बौद्धिक विकास भी बाधित होता है। ऐसे बच्चों की सीखने की क्षमता कम हो जाती है।

12. यकृत में वसा का जमाव: प्रोटीन की कमी से यकृत पर वसा का जमाव हो जाता है, जिसके कारण इसके आकार में वृद्धि हो जाती है। यकृत छूने पर कठोर महसूस होता है। अग्नाशय का आकार छोटा हो जाता है।

13. विटामिन की कमी: रोगग्रस्त बच्चे के शरीर में विटामिन की कमी भी दिखाई देने लगती है। बच्चे के शरीर में विटामिन 'बी' एवं विटामिन 'ए' की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं।

14. संक्रमण का खतरा: क्वाशियोरकर से पीड़ित बच्चों में संक्रमण का खतरा हमेशा बना रहता है।

(2) मरास्मस: जब बालक के आहार में प्रोटीन एवं ऊर्जा दोनों की कमी हो जाती है तब उसे मरास्मस हो जाता है। यह रोग 6 माह से लेकर 18 माह तक के शिशु को होता है। यह रोग अधिकांशतः निर्धन वर्ग के बच्चों में होता है क्योंकि उनके आहार में प्रोटीन के साथ-साथ ऊर्जा की भी कमी होती है। इसका मुख्य कारण अपर्याप्त आहार है। स्त्री का जल्दी-जल्दी माँ बनना एवं बच्चे को कम उम्र में ही स्तनपान रोककर बोतल से दूध पिलाना शुरु करना भी इस रोग का महत्वपूर्ण कारण है। बोतल में दूध देने की प्रक्रिया में दूध में पानी मिलाना, बोतल को ठीक प्रकार से साफ न करना आदि क्रियाएं इस रोग को बढ़ावा देती हैं। बच्चे को पूरक आहार के नाम पर उचित पोषक भोजन न देना भी इसका मुख्य कारण है।

मरास्मस रोग क्वाशियोरकर से भी अधिक हानिकारक होता है। इस रोग के मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं:

1. माँसपेशियों का क्षय अत्यधिक होता है। अतः हाथ, पैर पतले एवं कमजोर दिखते हैं। अति तीव्र अवस्था में त्वचा अस्थियों से चिपकी हुई दिखाई देती है।
2. रोगग्रस्त बच्चे का वजन एवं लम्बाई उसकी आयु के अनुरूप बहुत कम होता है।
3. ऐसे बच्चे का ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा 11.5 सेमी से कम हो जाता है।
4. बच्चे की त्वचा पर झुर्रियां पड़ जाती हैं और बच्चे का चेहरा बन्दर जैसा पिचका हुआ दिखाई देता है।
5. आंत्र मार्ग में संक्रमण के कारण बार-बार निर्जलीकरण हो जाता है।
6. बालक अधिक उम्र का दिखाई देता है।
7. बाल रूखे एवं मटमैले हो जाते हैं।

मरास्मस में काफी लक्षण क्वाशियोरकर की तरह ही दृष्टिगोचर होते हैं। क्वाशियोरकर एवं मरास्मस में मुख्य अन्तर निम्न तालिका में दिए जा रहे हैं।

तालिका 6.2: क्वाशियोरकर एवं मरास्मस के लक्षणों में अन्तर

क्रम सं0	लक्षण	क्वाशियोरकर	मरास्मस
1.	मुख्य कारण	आहार में कम प्रोटीन	आहार में कम ऊर्जा के साथ कम प्रोटीन
2.	रोग होने की अवधि	हफ्तों में	महीनों से वर्ष भर
3.	वृद्धि अवरोध	होता है	बहुत अधिक होता है
4.	क्षीणता (Wasting)	अधिक स्पष्ट नहीं	बहुत अधिक
5.	सूजन	टाँगों के निचले भाग, चेहरे या सारे शरीर पर	बिल्कुल नहीं
6.	बालों में परिवर्तन	रंग बदल जाता है	बाल रूखे हो जाते हैं
7.	मानसिक लक्षण	दिखाई देते हैं	नहीं दिखाई देते
8.	त्वचा में परिवर्तन	त्वचा का अंश बदल जाता है	नहीं होता
9.	भूख	नहीं लगती	बहुत लगती है
10.	एनीमिया	गम्भीर/तीव्र	न्यून
11.	त्वचा के नीचे वसा	उपस्थित (कम मात्रा में)	बिल्कुल नहीं
12.	हार्मोन प्रतिक्रिया	इंसुलिन की उच्च मात्रा कॉर्टिसोल की न्यून मात्रा	इंसुलिन की न्यून मात्रा कॉर्टिसोल की उच्च मात्रा
13.	मुख	चन्द्राकार मुख	त्वचा पर झुर्रियाँ, पिचका हुआ बन्दर जैसा
14.	यकृत में वसा	बहुधा	कोई नहीं

(3) मरास्मिक क्वाशियोरकर

अविकसित एवं विकासशील देशों में, जहाँ प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण अधिक है, वहाँ के बच्चों में मरास्मस एवं क्वाशियोरकर दोनों के लक्षण एक साथ दिखाई देते हैं। शिशु प्रारम्भ में क्वाशियोरकर से ग्रसित होता है। धीरे-धीरे जब उसके आहार में प्रोटीन के साथ-साथ कैलोरी भी कम हो जाती है तब उसे मरास्मस भी हो जाता है।

वयस्कों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण होने पर उनका वजन कम होने लगता है, वसा घट जाती है, रक्ताल्पता (एनीमिया) हो जाता है, व्यक्ति पर रोगाणुओं का प्रभाव आसानी से होने लगता है, उसे बार-बार अतिसार होता है। इन सब के कारण व्यक्ति जीवन के बाद के वर्षों में कठोर परिश्रम नहीं कर पाता तथा उचित धनोपार्जन नहीं कर पाता।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की पहचान

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की पहचान या आंकलन करने के लिए पोषण स्तर के आंकलन में जो भी विधियाँ प्रयुक्त होती हैं उनका प्रयोग किया जाता है। इन विधियों के बारे में आप इकाई दो में भली प्रकार पढ़ चुके हैं। निम्नलिखित तालिका में बच्चों एवं वयस्कों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण को पहचानने की विधियाँ दी जा रही है। इनके विषय में अधिक जानकारी के लिए इकाई 2 का पुन: अध्ययन करें।

तालिका 6.3: प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की पहचान

शिशु एवं बालकों में	वयस्कों में
• आयु के अनुरूप लम्बाई • आयु के अनुरूप वजन • लम्बाई के अनुरूप वजन • ऊपरी बाँह के मध्य भाग का घेरा • एडीमा/सूजन	बी0 एम0 आई0 (बॉडी मास इन्डेक्स)

तालिका 6.4: बच्चों एवं वयस्कों में प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का प्रभाव

शिशु एवं बालकों में
• रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है। • संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। • वृद्धि अवरोध। • थकान व उदासीनता बढ़ जाती है। • शिशु एवं बाल मृत्यु की सम्भावना बढ़ जाती है। • मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास अवरुद्ध हो जाता है। • सीखने की प्रक्रिया में अवरोध।

महिलाओं में • गर्भावस्था के दौरान जटिलताओं का खतरा बढ़ जाता है। • सहज गर्भपात, मृत प्रसव एवं शिशु मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है। • भ्रूण के मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो जाता है। • मातृ मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है। • कम वजन के बच्चे पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है। • कार्यक्षमता कम होने से बच्चों की उचित देखभाल नहीं होती। • बच्चों में कुपोषण का खतरा बढ़ जाता है।
वयस्कों में • कार्यक्षमता कम हो जाती है। • संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। • बीमारी के कारण ज्यादा छुट्टी जिससे उत्पादकता में कमी होती है।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण के कारण

उपरोक्त सभी शीर्षकों से पता चलता है कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का मुख्य कारण अपर्याप्त एवं असंतुलित आहार है। इसके अलावा परिवार में ज्यादा बच्चे, निर्धनता, अज्ञानता, अंधविश्वास एवं प्रथाएं, बच्चों में संक्रमण, साफ-सफाई का अभाव, माता का कुपोषण आदि भी इसके कारण हैं। इन सभी कारणों की चर्चा हम इकाई 2 में कर चुके हैं।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण का उपचार

अब आप भली प्रकार से जान चुके हैं कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण एक बहुमुखी समस्या है। इसलिए इसकी उपचारात्मक योजना भी उसी प्रकार बनायी जाती है। उपचार प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य वजन कम होने के रोकना, शरीर के वर्तमान वजन को बनाए रखना एवं ऐसे पोषक तत्वों को आहार में देना जिससे वजन बढ़ सके। उपचार की योजना में पोषणात्मक प्रबन्ध एवं चिकित्सकीय प्रबन्ध सम्मिलित किए जाते हैं।

पोषणात्मक प्रबन्ध

पोषणात्मक प्रबन्ध के अन्तर्गत आहार सुधार, पोषण शिक्षा, मौखिक पूरक आहार देना, ट्यूब फीडिंग एवं अंत:शिरा पोषण आदि क्रियाएं सम्मिलित हैं। उपचार के लिए कौन-सा तरीका अपनाना

है यह बात पूरी तरह से रोगी की अवस्था एवं लक्षणों पर निर्भर करती है। कभी-कभी एक से ज्यादा तरीकों को उपयोग में लाया जा सकता है।

आहार सुधार का मुख्य उद्देश्य संतुलित आहार प्रदान करना है। कुपोषण की पहचान के बाद शीघ्रातिशीघ्र बच्चे को उचित आहार प्रदान किया जाता है। आहार की योजना इस प्रकार बनायी जाती है कि कुपोषित रोगी को अधिकतम पोषण लाभ मिल सके। बच्चे को ऊर्जा एवं प्रोटीन उसकी आयु तथा दैनिक आवश्यकतानुसार देने चाहिए। ऐसी स्थिति में बहुत ज्यादा मात्रा में आहार देना कभी-कभी बच्चे को नुकसान दे सकता है। अधिक मात्रा में आहार अपच, अतिसार आदि समस्याएं उत्पन्न कर सकता है।

शिशुओं के लिए पूरक आहार बनाते समय खासतौर पर सावधानी बरतनी चाहिए। प्रोटीन की गुणवत्ता विशेषत: अच्छी एवं उच्च प्रकार की होनी चाहिए। ऊर्जा की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। आहार सुधार का मुख्य उद्देश्य आहार में पोषण सघनता को बढ़ाना होना चाहिए। अत्यधिक वसायुक्त भोज्य पदार्थों का उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि उनसे आहार की मात्रा एवं पोषक तत्वों की मात्रा कम हो जाती है। वसायुक्त भोज्य पदार्थ भूख को शान्त/कम कर देते हैं। बच्चे को दिन में दो या तीन बार अधिक मात्रा में भोजन देने के बजाय थोड़ी-थोड़ी मात्रा में पाँच या छः बार भोजन देना अधिक श्रेयस्कर रहता है। मुख्य भोजन के बीच कोई उच्च ऊर्जा-प्रोटीन पेय या नाश्ता दिया जा सकता है। जब बच्चे की हालत सुधरने लगे तो आहार में भोज्य पदार्थों की मात्रा को धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। शिशुओं के लिए दूध एवं पूरक आहार बनाते समय साफ-सफाई का उचित ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए भली प्रकार से उबला हुआ पानी प्रयोग करना चाहिए एवं दूध की बोतल को भी रोगाणु मुक्त रखना चाहिए।

पोषण शिक्षा का उद्देश्य भी आहार की मात्रा को बढ़ाना एवं संतुलित भोजन का प्रयोग है। देखभाल करने वाले व्यक्ति या बच्चों की माँ को पोषण शिक्षा के प्रति जागरुक किया जा सकता है कि वह लोग कैसे कुपोषित बच्चे या व्यक्ति का उपचार कर सकते हैं। पोषण शिक्षा के अंतर्गत आहार विविधिकरण पर बल दिया जाता है।

पोषण शिक्षा में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

1. माताओं एवं समुदाय के लोगों को स्तनपान का महत्व समझाना।
2. साफ-सफाई एवं स्वच्छता पर बल देना तथा लोगों को स्वच्छता की महत्ता समझाना।
3. टीकाकरण की आवश्यकता एवं लाभ समझाना।

4. बागवानी को प्रोत्साहित करना एवं घर के पीछे छोटे हिस्से में पोषक भोज्य पदार्थों को उगा कर ग्रहण करने की शिक्षा देना।
5. भोजन अंतर्ग्रहण से सम्बंधित भेदभाव दूर करने के लिए समाज को जागरुक करना।
6. बच्चों के लिए उचित पोषण का महत्व एवं देखरेख के अन्य उचित तरीके बताना।
7. पूरक आहार सम्बन्धी अंधविश्वास, मान्यताएं आदि के विषय में उचित जानकारी देकर उचित पोषण सम्बन्धी जानकारी देना।

मौखिक आहार सम्बन्धित उपचार निम्नलिखित तरीकों से करने चाहिए:

1. बच्चे को वसारहित दूध दिया जाना चाहिए क्योंकि वसायुक्त दूध कठिनता से पचता है।
2. वसारहित दूध में खिचड़ी, पके फल, दलिया आदि मिलाकर देने चाहिए।
3. तरल पेय पदार्थों जैसे सब्जियों का सूप, मूँग की घुटी दाल, फलों का रस, छाछ, दाल का पानी आदि पिलाना चाहिए। इस प्रकार का वसारहित भोजन बच्चे को कम से कम 3-4 सप्ताह तक दिया जाना चाहिए। जब ऐसा भोजन बच्चे को पचने लगे तब धीरे-धीरे भोज्य पदार्थों की मात्रा एवं गुणवत्ता बढ़ायी जानी चाहिए।
4. विटामिनों एवं खनिज लवणों की पूर्ति हेतु हरी पत्तेदार सब्जियों के रस, पीले फल, संतरा, मौसमी आदि फलों के रस का प्रयोग करना चाहिए।
5. मिश्रित भोज्य पदार्थों का उपयोग किया जाना चाहिए जैसे दाल-सब्जी एवं अनाज मिलाकर खिचड़ी, दूध-दलिया, खिचड़ी के साथ दूध या दही मिलाकर खिलाना चाहिए।
6. मरास्मस की स्थिति में बच्चों में ऊर्जा की भी कमी हो जाती है। अतः बच्चे के प्रति किलो ग्राम वजन के अनुसार उसे 140-150 किलो कैलोरी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अतः उसकी ऊर्जा की माँग की पूर्ति के लिए अधिक कैलोरीयुक्त भोज्य पदार्थ खिलाने चाहिए।
7. आसानी से पचने योग्य उत्तम किस्म का प्रोटीन देना चाहिए। इसके लिए दालों, फलियों, अण्डों, वसा रहित माँस का प्रयोग किया जाना चाहिए।

चिकित्सकीय प्रबन्धन

यदि कुपोषण की स्थिति गम्भीर है तो भोजन में सुधार के साथ-साथ चिकित्सकीय उपचार भी आवश्यक है। ऐसी अवस्था में बच्चे को अस्पताल ले जाना चाहिए जहाँ पर बीमारी, संक्रमण एवं चयापचय संबंधी इलाज किये जा सकें। सर्वप्रथम बच्चे की बीमारियों जैसे कम रक्त शर्करा, अत्यधिक ठंड लगना, एनीमिया, अतिसार, वमन आदि का चिकित्सीय इलाज किया जाता है।

प्रोटीन, ऊर्जा की कमी से उत्पन्न कुपोषण में रोगाणुओं का प्रकोप अधिक होता है। इसी कारण एंटीबायटिक औषधियां देनी आवश्यक हैं। एक और सावधानी यह रखी जाती है कि ऐसे बच्चे को गर्म वस्त्र पहना कर गर्म स्थान पर रखना चाहिए।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की रोकथाम

जैसा कि आप अध्ययन कर चुके हैं कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण एक गम्भीर समस्या है। इससे समुदाय, समाज एवं राष्ट्र के विकास में बाधाएं आती हैं। इसलिये समय रहते कुपोषण की रोकथाम के उपाय कर लेने चाहिए। जो संसाधन कुपोषण के उपचार में लगाये जा रहे हैं यदि उसी तरह से रोकथाम पर बल दिया जाए तो कुपोषण के दुष्परिणामों से बचा जा सकता है।

प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण की रोकथाम का सबसे उत्तम एवं सरल उपाय पोषण शिक्षा है। समुदायों में लोगों को आहार एवं पोषण संबंधी उचित जानकारी प्रदान करके जागरुक करना चाहिए।
- माताओं को उचित जानकारी होनी चाहिए कि शिशुओं को छः माह तक सिर्फ स्तनपान कराना चाहिए। छः महीने के पश्चात् पूरक आहार देना शुरु कर देना चाहिए। दूध पिलाने के लिए बोतल की अपेक्षा कप या कटोरी चम्मच का प्रयोग करना चाहिए।
- बच्चों को पूरक आहार धीरे-धीरे पहले तरल, फिर अर्द्ध ठोस, उसके पश्चात् ठोस एवं परिवार वाले आहार के रूप में देना चाहिए।
- परिवारों को व्यक्तिगत तथा पर्यावरणीय स्वच्छता के बारे में जागरुक करना एवं उसके लाभ समझाना।
- सभी माता-पिता को अपने पाँच साल से छोटे बच्चों को समय-समय पर स्वास्थ्य केन्द्र ले जाना चाहिए।
- सभी बच्चों का पूर्ण टीकाकरण होना चाहिए। समुदाय के लोगों को स्वयं भी इसके लिए जागरुक होना चाहिए।
- परिवार में भोजन का वितरण उचित प्रकार से होना चाहिए। महिलाओं के साथ भोजन संबंधी भेदभाव नहीं होना चाहिए।
- समय पर निदान एवं उपचार से गम्भीर कुपोषण की रोकथाम हो जाती है।
- आहार में प्रतिदिन फल, सब्जियाँ, प्रोटीन युक्त पदार्थ एवं साबुत अनाज होने चाहिए।

- रोगाणुओं से उत्पन्न रोगों एवं अतिसार का शीघ्र उपचार करना चाहिए।
- महामारी, अकाल, आपात आदि स्थितियों में बच्चों के पूरक आहार का प्रबन्ध होना चाहिए।
- बच्चों को समय-समय पर पेट के कीड़ों की दवाई देनी चाहिए।
- समुदाय में सभी को बागवानी करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

उपरोक्त सभी बातों से ज्ञात हो चुका है कि प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से लड़ने के लिए एक साथ बहुत सी दिशाओं में कार्य करना चाहिए। इसके लिए मुख्य रूप से आहार को पोषक तत्वों से पुष्ट करना एवं पोषण संबंधी व्यवहारिक जानकारी का प्रसार बढ़ाना है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. मरास्मस होता है:

(क) प्रोटीन एवं ऊर्जा दोनों की कमी से (ख) खनिज लवणों की कमी से

(ग) प्रोटीन की कमी से (घ) ऊर्जा की कमी से

b. मरास्मस के मुख्य लक्षण हैं:

(क) वजन में कमी (ख) माँसपेशियों में क्षीणता

(ग) रक्त में एल्ब्यूमिन की कमी (घ) उपरोक्त सभी

c. क्वाशियोरकर एवं मरास्मस अलग-अलग तरह के .... हैं:

(क) खनिज कुपोषण (ख) प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण

(ग) विटामिन कुपोषण (घ) उपरोक्त सभी

6.3.2 एनीमिया/ रक्ताल्पता

एनीमिया एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है "रक्तहीन"। एनीमिया नाम उन विकार रोगों के समूह को दिया गया है जिसमें शरीर में लाल कोशिकाओं की गुणात्मक या मात्रात्मक कमी हो जाती है। सामान्य से कम लाल रक्त कोशिका, हीमोग्लोबिन की मात्रा या रक्त में उपस्थित लाल कोशिकाओं की मात्रा को एनीमिया कहा जाता है। सामान्य भाषा में रक्ताल्पता का अर्थ रक्त की कमी से है। सटीक शब्दों में एनीमिया या रक्ताल्पता लाल रक्त कोशिकाओं में पाए जाने वाले पदार्थ

हीमोग्लोबिन की कमी से होता है। हीमोग्लोबिन पूरे शरीर में ऑक्सीजन को प्रवाहित करता है। एनीमिया में शरीर में ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी आ जाती है।

लोहा हीमोग्लोबिन के निर्माण कि लिए अत्यन्त आवश्यक खनिज लवण है। हीमोग्लोबिन में हीम (लोहा) तथा ग्लोबिन (प्रोटीन) होता है।

हीमोग्लोबिन की मात्रा

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विभिन्न आयु वर्गों के लोगों में हीमोग्लोबिन की ग्राम प्रति मि.ली. की मात्रा का सामान्य स्तर निश्चित है। उस स्तर से कम होने की स्थिति को एनीमिया कहा जाता है। विभिन्न आयु वर्गों के हीमोग्लोबिन का सामान्य स्तर नीचे दी गई तालिका में दिया गया है। निम्न तालिका के अनुसार महिलाओं में 12 ग्राम प्रति मि.ली. जबकि पुरूषों में 13 ग्राम प्रति मि.ली. हीमोग्लोबिन की मात्रा होनी चाहिए।

तालिका 6.5: सामान्य हीमोग्लोबिन स्तर

आयु वर्ग	**हीमोग्लोबिन स्तर (ग्राम/मि.ली.)**
बच्चे (5 माह से 5 वर्ष तक)	11.0
बच्चे (5 वर्ष से 12 वर्ष तक)	11.5
बच्चे (12 वर्ष से 15 वर्ष तक)	12.0
महिलाएं (15 वर्ष से अधिक)	12.0
पुरुष (15 वर्ष से अधिक)	13.0
गर्भवती महिलाएं	11.0

एनीमिया का वर्गीकरण हीमोग्लोबिन स्तर के अनुसार किया जाता है। सामान्य से कम हीमोग्लोबिन के आधार पर एनीमिया को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है। (तालिका 6.6)

तालिका 6.6: एनीमिया का वर्गीकरण

स्तर	**हीमोग्लोबिन स्तर (ग्राम/मि.ली.)**
सामान्य	12 या उससे ज्यादा
न्यून	10-12
मध्यम	7-9.9
गंभीर	7 से कम

स्रोतः विश्व स्वास्थ्य संगठन

बढ़ते बच्चों, गर्भवती माताओं, किशोरियों एवं बीमार व्यक्तियों में एनीमिया का खतरा ज्यादा होता है।

एनीमिया के प्रकार

जैसा कि पूर्व में बताया गया है कि एक रोगों के समूह को एनीमिया नाम दिया गया है। एनीमिया के कई प्रकार हैं।

1. हाइपोक्रोमिक माइक्रोसीटिक एनीमिया (Hypochromic and Microcytic Anaemia): यदि शरीर में लाल रक्त कोशिकाओं का आकार सामान्य से छोटा हो जाता है तो उसे माइक्रोसीटिक एनीमिया कहते हैं। ऐसा तब होता है जब हीमोग्लोबिन का स्तर लौह तत्व की कमी के कारण गिर जाता है। ऐसी स्थिति में लाल रक्त कोशिकाएं पीली एवं छोटी दिखाई देती हैं।

2. मेगालोब्लास्टिक एनीमिया (Megaloblastic Anaemia): एनीमिया के इस प्रकार में लाल रक्त कोशिका सामान्य आकार से काफी बड़ी हो जाती हैं। यह फोलिक अम्ल एवं विटामिन बी-12 की कमी से होता है।

3. हाइपोक्रोमिक एवं मैक्रोसिटिक एनीमिया (Hypochromic and Macrocytic Anaemia): इस प्रकार के एनीमिया में लाल रक्त कोशिकाओं का आकार सामान्य से बढ़ जाता है एवं हीमोग्लोबिन का स्तर घट जाता है। इस प्रकार का एनीमिया लौह तत्व एवं फोलिक अम्ल या विटामिन बी-12 की कमी से होता है।

4. परनीसियस एनीमिया: इस प्रकार का एनीमिया तब होता है जब रक्त में लाल कोशिकाएं कम हो जाती हैं एवं जो कोशिआएं पूर्व से ही विद्यमान हैं उनका आकार सामान्य से बड़ा हो जाता है। इस एनीमिया में हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य रहता है। परनीसियस एनीमिया का मुख्य कारण विटामिन बी-12 का अवशोषण उचित प्रकार से न हो पाना है।

5. रक्तस्राव के कारण एनीमिया: इस प्रकार का एनीमिया अत्यधिक रक्तस्राव के कारण होता है। रक्तस्राव सर्जरी के बाद, बार-बार रक्तदान करने से या पाचन तंत्र में कीड़ों की उपस्थिति एवं मासिक धर्म में अत्यधिक स्राव के कारण हो सकता है।

6. पोषणज एनीमिया: विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किसी एक या अधिक पोषक तत्वों की कमी के कारण हीमोग्लोबिन की मात्रा में कमी आने वाली स्थिति को पोषणज एनीमिया कहते हैं। लौह तत्व, फोलिक अम्ल एवं विटामिन बी-12 की कमी से होने वाले एनीमिया, पोषणज एनीमिया की श्रेणी में आते हैं। इस इकाई में हम पोषणज एनीमिया के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया

भारत में सबसे ज्यादा लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया व्याप्त है। गर्भवती महिलाओं और बच्चों में यह मुख्य रूप से पाया जाता है क्योंकि इस उम्र में शरीर में लौह तत्व की आवश्यकता अधिक होती है। लौह तत्व, हीमोग्लोबिन अणु का महत्वपूर्ण हिस्सा है। हीमोग्लोबिन के सामान्य संश्लेषण के लिए शरीर में लौह तत्व की समुचित आपूर्ति होनी आवश्यक है।

लाल रक्त कोशिकाओं की जीवन अवधि 120 दिन की होती है, उसके बाद वह परिसंचरण से हट जाते हैं। नष्ट लाल रक्त कोशिकाओं से लौह तत्व अस्थि मज्जा में वापस लाया जाता है। अस्थि मज्जा में निरन्तर लाल रक्त कोशिकाओं का निर्माण होता रहता है। यह लौह तत्व नवगठित लाल कोशिकाओं में पुनः शामिल कर लिया जाता है। शरीर को लौह तत्व की आवश्यकता चयापचयिक हानि, मासिक धर्म हानि एवं शारीरिक वृद्धि के लिए होती है। शरीर में लौह तत्व की कमी से एनीमिया आहार में लौह तत्व के अपर्याप्त सेवन से या लाल रक्त कोशिकाओं में उपस्थित लौह तत्व के अपर्याप्त पुनरुपयोग से होता है।

एक अनुमान के अनुसार विश्व की 20 प्रतिशत जनसंख्या में लौह तत्व की कमी है। लौह तत्व की कमी से होने वाला एनीमिया हाइपोक्रोमिक (लाल रक्त कोशिकाओं का कम रंग) एवं माइक्रोसिटिक (लाल रक्त कोशिकाओं का छोटा आकार) होता है। लाल रक्त कोशिकाओं का रंग फीका इसलिए पड़ जाता है क्योंकि उनमें सामान्य से कम मात्रा में हीमोग्लोबिन होता है। कोशिकाओं का छोटा आकार हीमोग्लोबिन का स्तर कम होने कारण होता है। लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया की पहचान करने के लिए विभिन्न प्रयोगशाला परीक्षण किये जा सकते हैं। सबसे पहला परीक्षण रक्त में हीमोग्लोबिन की जाँच का होता है। हीमोग्लोबिन का स्तर जानने के बाद अन्य परीक्षण जैसे सीरम Ferritin, सीरम लौह तत्व एवं सीरम Iron binding capacity भी किये जा सकते हैं। सामुदायिक स्तर पर सिर्फ हीमोग्लोबिन का स्तर जाँच कर ही एनीमिया की पहचान की जाती है।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया के कारण

मानव शरीर में लौह तत्व की कमी कई कारणों से हो सकती है।

1. अपर्याप्त आहार: शरीर में लौह तत्व की कमी का मुख्य कारण अपर्याप्त आहार है। लम्बे समय तक आहार से लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन कम या न करना एनीमिया का प्रमुख कारण है। यदि आहार में लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थ उपस्थित भी हों परन्तु वह अवशोषित न होने वाले हों, ऐसी स्थिति में भी एनीमिया हो जाता है।

2. असंतुलित आहार: आहार में प्रोटीन की तुलना में अधिक कार्बोहाइड्रेट का समावेश आहार के माध्यम से अधिक फॉस्फेट, फाइटेट एवं रेशे प्रदान करता है। ये सभी तत्व लौह लवण के साथ मिलकर अघुलनशील लवण बनाते हैं जिससे लौह लवण का अवशोषण उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। प्रतिदिन ज्यादा चाय, कॉफी पीने से भी लौह लवण के अवशोषण में बाधा पड़ती है। आहार में लौह लवण युक्त भोज्य पदार्थों जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, पोहा, अंकुरित दालें आदि को सम्मलित न करना एवं आहार में लौह लवण के अवशोषण अवरोधक की उपस्थिति एनीमिया रोग का कारण बनती है।

3. लौह लवण की अधिक माँग: मानव शरीर में लौह लवण की माँग आयु की विभिन्न अवस्थाओं में बढ़ जाती है। शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था आदि में शरीर की लौह तत्व की माँग बढ़ जाती है। इन अवस्थाओं में यदि उचित मात्रा में लौह तत्व प्रतिदिन न लिया जाए तो एनीमिया हो जाता है।

4. अत्यधिक रक्तस्राव होने से: अत्यधिक रक्तस्राव भी एनीमिया का बड़ा कारण है। रक्तस्राव दुर्घटना के कारण, मासिक धर्म में अत्यधिक स्राव, बीमारी जैसे अल्सर, मलेरिया, पेट का कैंसर, प्रसव के समय, गर्भपात होने से, आंतों में परजीवियों की उपस्थिति से हो सकता है। इन सभी कारणों से भी एनीमिया हो जाता है।

5. जल्दी-जल्दी रक्तदान: साल भर में दो बार से अधिक रक्तदान एनीमिया का कारण बन सकता है।

6. दवाईयां: कुछ दवाईयों का निरन्तर प्रयोग एनीमिया का कारण बन सकता है। दर्द निवारक दवा, शराब एवं कीमोथेरेपी में प्रयोग होने वाली दवाएं एनीमिया की स्थिति पैदा कर सकती हैं।

7. अन्य कारण: अन्य कारण जैसे प्रोटीन-ऊर्जा कुपोषण, आहार में अवशोषण के सहायक तत्वों की कमी, आमाशय द्वारा जठर रस का पर्याप्त स्रावण नहीं होना, अतिसार दस्त आदि की स्थिति, अस्थियों का ट्यूमर आदि से भी एनीमिया हो सकता है।

एनीमिया के लक्षण

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया से पीड़ित व्यक्ति में लक्षण साफ-साफ नहीं दिखाई देते हैं। जब एनीमिया गम्भीर रूप धारण कर लेता है तब इसके लक्षण दिखाई देते हैं। यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है। एनीमिया के सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं:

- शीघ्र थकावट महसूस करना
- त्वचा का रंग पीला पड़ जाना
- सांस लेने में कठिनाई
- चक्कर/सिर में दर्द
- हाथ-पैरों में दर्द
- भूख में कमी
- बच्चों में सुस्तता एवं उदासीनता
- जीभ चिकनी एवं चमकदार
- नाखून भंगुर एवं नाजुक हो जाते हैं। बाद में वे चपटे और पतले होने लगते हैं और अन्त में नाखून चम्मच जैसे आकार के हो जाते हैं, इसे कोइलोनाकिया/Koilonychia कहते हैं।

एनीमिया काम करने की क्षमता विशेषकर निरन्तर शारीरिक क्रियाकलाप के सामर्थ्य को कम कर देता है। गर्भावस्था में लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया माता एवं भ्रूण दोनों के लिए खतरे उत्पन्न करता है। गर्भवती महिलाएं एनीमिया से ग्रस्त होकर बीमार रहती हैं, जिससे मातृ एवं शिशु मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी महिलाएं कम भार वाले शिशु को जन्म देती हैं।शैशव और बचपन के प्रारम्भिक दौर में लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया बच्चे के मनोवैज्ञानिक विकास में देरी कर सकता है और उनके संज्ञानात्मक विकास में बाधा डाल सकता है। इससे उनकी बुद्धिलब्धि (आई. क्यू.) कम हो सकती है। स्कूल पूर्व आयु के बच्चे एनीमिया के कारण किसी चीज पर ध्यान लगाये रखने और विभिन्न दृश्यों को अलग-अलग ढंग से समझने में कठिनाई महसूस करते हैं। प्राथमिक स्कूल आयु एवं किशोरावस्था में स्कूल में सफलता की कमी को भी लौह तत्व की कमी से जोड़ कर ही देखा जाता है। लौह तत्व की कमी के कारण होने वाला एनीमिया संक्रमण का प्रतिरोध कम कर देता है। महिलाओं में लौह तत्व की कमी से बाल झड़ने लगते हैं। लौह तत्व की कमी में विशेषकर बर्फ, मिट्टी, नमक, स्टार्च आदि खाने की अत्यधिक इच्छा होती है।

फोलिक अम्ल की कमी से उत्पन्न एनीमिया

फोलिक अम्ल एक जल में घुलनशील विटामिन है। यह बहुत से पादप जन्य भोज्य पदार्थों एवं पशु जन्य भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। जल में घुलनशील होने के कारण मानव शरीर में फोलिक अम्ल

का अत्यधिक संग्रह नहीं हो सकता है। इसलिए यदि फोलिक अम्ल का दैनिक आवश्यकतानुसार सेवन नहीं किया जाता है तो इसकी कमी के लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

फोलिक अम्ल की कमी से मेगालोब्लास्टिक एनीमिया हो जाता है। फोलिक अम्ल की न्यूनता से अस्थिमज्जा में लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण पर असर पड़ता है। लाल रक्त कोशिकाओं का आकार बढ़ने लगता है एवं उनकी संख्या घटने लगती है।

मेगालोब्लास्टिक एनीमिया के कारण

यह एनीमिया विशेषकर गर्भवती माताओं तथा शिशुओं को होता है। यह निम्न कारणों से होता है:

- पौष्टिक तथा सन्तुलित आहार का सेवन न करने से।
- आहार में फोलिक अम्ल की कमी से।
- भोज्य पदार्थों का ठीक प्रकार से अवशोषण न होने पर ।
- बार-बार (जल्दी) गर्भधारण से।
- कुछ विशिष्ट दवाओं के सेवन से।
- अत्यधिक शारीरिक माँग होने के बावजूद उसके अनुरूप पौष्टिक भोजन का सेवन न करने से।
- बार-बार अतिसार होने से।
- संक्रमण एवं बीमारी के कारण।
- शल्य चिकित्सा के कारण।
- अत्यधिक शराब के सेवन से ।

लक्षण

मेगालोब्लास्टिक एनीमिया में भी लौह तत्व की कमी जैसे ही लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इसके अलावा इसमें अतिसार तथा वजन में हानि भी हो सकती है।

विटामिन बी-12 की कमी से होने वाला एनीमिया

विटामिन बी-12 को साएनोकोबैलेमिन (Cyanocobalamin) कहते हैं। मनुष्य ऊतकों में विटामिन बी-12 का निर्माण नहीं होता है। इसलिये विटामिन बी-12 हमें आहारीय स्रोतों से लेना आवश्यक होता है। विटामिन बी-12 केवल पशुजन्य भोज्य पदार्थों में पाया जाता है। मांस, यकृत, मछली, अंडा आदि इसके उत्कृष्ट स्रोत हैं। विटामिन बी-12 की कमी से मैगालोब्लास्टिक एनीमिया होता है। विटामिन बी-12 अस्थि मज्जा में परिपक्व लाल रक्त कोशिकाओं के निर्माण के लिए आवश्यक है।

अतः इसे रक्त वर्धक तत्व भी कहते हैं। यह शरीर में डीएनए के निर्माण के लिए आवश्यक है। यह तंत्रीय ऊतकों की रक्षा करने वाले वसीय पदार्थ माइलिन के निर्माण के लिए आवश्यक है।

कमी के कारण: आहार में विटामिन बी-12 की कमी अथवा विशुद्ध शाकाहारी होने से शरीर में विटामिन बी-12 की कमी हो जाती है।

रोग के लक्षण: लाल रक्त कोशिकाएं आकार में बड़ी होकर संख्या में घट जाती हैं। हीमोब्लोबिन का स्तर काफी नीचे गिर जाता है। मुंह में छाले हो जाते हैं तथा त्वचा का रंग पीला दिखने लगता है। भूख न लगना भी इसका महत्वपूर्ण लक्षण है।

परनीसियस एनीमिया

यह एनीमिया आमाशयिक रस में पर्याप्त मात्रा में अन्तः कारक (Intrinsic Factor) तत्व न उपस्थित होने से शरीर में विटामिन बी-12 के ठीक प्रकार से अवशोषित न होने के कारण होता है। इस रोग की व्यापकता अधिक नहीं है। यह विटामिन बी-12 की सामान्य कमी से भिन्न है।

पोषण संबंधी एनीमिया का उपचार

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया दुनिया में पोषण संबंधी सबसे व्यापक समस्या है। भारत में आधी से अधिक महिलाएं एवं काफी बड़े अनुपात में छोटे बच्चे इसका शिकार हैं। एनीमिया का उपचार आवश्यक है क्योंकि जनसंख्या का बड़ा हिस्सा इससे प्रभावित है। एनीमिया के उपचार में कारण को पहचानना एवं उसका उपचार, प्रभावित पोषक तत्व की कमी को दूर करना एवं लक्षणों को समाप्त करना सम्मिलित है।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया में सिर्फ हीमोग्लोबिन ही कम नहीं होता अपितु संग्रहित लौह तत्व भी समाप्त हो जाते हैं। एनीमिया के उपचार के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाने चाहिए:

1. आहार में सुधार

लौह तत्व की कमी को ठीक करने के लिए आहार संशोधन प्रभावी उपाय है। आहार संशोधन का मुख्य उद्देश्य समुदाय के लोगों के रक्त में लौह तत्व का स्तर बढ़ाना एवं उसे उचित स्तर पर बनाये रखना है।

आहार में सुधार के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:

- दैनिक आहार में ताजे फल, हरी पत्तेदार सब्जियां, खट्टे फल आदि अवश्य रूप से सम्मलित करने चाहिए। सस्ते फल जैसे अमरूद, केला, तरबूज लौह तत्व के अच्छे स्रोत हैं।

- लौह तत्व के उचित अवशोषण के लिए विटामिन सी युक्त आहार लेना चाहिए।
- दूध एवं दूध से बने पदार्थों का उपयोग भोजन के साथ न करके दो आहारों के मध्य नाश्ते के रूप में करना चाहिए।
- चाय, कॉफी का सेवन भोजन के दो घन्टे पहले एवं बाद में नहीं करना चाहिए।
- संभव हो तो भोजन को लोहे के बर्तन में पकाना चाहिए।
- भोजन से लौह तत्व की उपलब्धता बढ़ाने के लिए खमीरीकरण, अंकुरण आदि का उपयोग करके भोजन पकाया जा सकता है।

2. नियमित कृमिनाशक का प्रयोग

सुभेद्य समूहों को कृमिनाशक दवा देना जरूरी होता है। कृमिनाशक दवा से रक्त हानि एवं एनीमिया से तो बचाव होता ही है, साथ-साथ इसके प्रयोग से भूख भी ज्यादा लगती है और पेट एवं सिरदर्द जैसी समस्या समाप्त हो जाती हैं। साल में तीन बार एलबेन्डाजोल की गोली चिकित्सक की सलाह पर प्रदान की जा सकती है।

3. मलेरिया की रोकथाम एवं उपचार

जन समूहों में एनीमिया का महत्वपूर्ण कारण मलेरिया है। इसलिए समय रहते मलेरिया का उपचार आवश्यक है। इसके लिए दवा उपलब्ध कराना तथा समुदायों को मलेरिया से बचाव के लिए जागरुक करना आवश्यक है।

4. सम्पूर्ण टीकाकरण

बच्चों को संक्रमण से बचाने के लिए सभी प्रकार के टीके अवश्य लगवाने चाहिए।

5. स्वास्थ्य एवं पोषण शिक्षा

एनीमिया से बचाव एवं रोकथाम के लिये वृहत पोषण शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसमें स्कूली शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

6. महिलाओं की उचित देखभाल

प्रजनन आयु में महिलाओं की उचित देखभाल अति आवश्यक है। प्रसव एवं प्रसवोपरान्त उचित देखभाल एवं लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों के नियमित उपयोग को प्रोत्साहित करना चाहिए।

7. हीमोग्लोबिन का स्तर बढ़ाने के लिए दवा

200 मिली ग्राम फैरस सल्फेट वाली तीन गोलियाँ तीस दिन तक प्रतिदिन खाने से हीमोग्लोबिन का स्तर सामान्य होने के बाद भी दवा का प्रयोग करते रहना चाहिए जिससे शरीर का लौह भण्डार पुन: सामान्य हो सके।

लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया की रोकथाम

- एनीमिया से संबंधित जागरुकता पैदा करने के लिए समुदायों में पोषण शिक्षा प्रदान करना।
- समय-समय पर लौह तत्व एवं फोलिक अम्ल की गोलियां देना।
- छः महीने तक की आयु के शिशु को सिर्फ स्तनपान कराने के लिए प्रोत्साहित करना।
- बचपन से आहार एवं पोषण संबंधी अच्छी आदतों के निर्माण के लिए स्कूली शिक्षा।
- बच्चों को छः महीने पश्चात् पूरक आहार देने के लिए जागरुकता फैलाना।
- लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों के उपयोग को प्रोत्साहित करना एवं उन्हें अपने रसोई उद्यान में उगाने के लिए जागरुक तथा प्रोत्साहित करना।

फोलिक अम्ल की कमी का उपचार

फोलिक अम्ल की कमी से उत्पन्न एनीमिया को दूर करने के लिए सबसे पहले जिस कारण से कमी उत्पन्न हो रही है उसे दूर करना आवश्यक है।

- इस प्रकार के एनीमिया के निवारण हेतु वयस्कों को 5-20 मिली ग्राम फोलिक अम्ल मुंह के द्वारा दिया जाता है। रोग की तीव्रता की स्थिति में 2-5 मिली ग्राम फोलिक अम्ल इंजेक्शन के माध्यम से रोगी की मांसपेशियों में दिया जा सकता है।
- एक अच्छा संतुलित आहार भी इस प्रकार के एनीमिया के निवारण में उपयोगी होता है।
- आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन एवं खनिज लवण होने चाहिए। हरी पत्तेदार सब्जियां, मांस, अण्डे, साबुत अनाज एवं फलों को आहार में दैनिक रूप से सम्मलित करना चाहिए।
- गर्भवती महिलाओं को कम से कम 400 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल प्रतिदिन लेना चाहिए।

विटामिन बी-12 की कमी का उपचार

उपचार में आहारीय संशोधन एवं विटामिन बी-12 का खुराक इंजेक्शन सम्मलित है। आहार में पर्याप्त दूध, दही, अंडे आदि के सेवन से कमी को दूर किया जा सकता है। साधारणतया मैगालोब्लास्टिक एनीमिया के लिए मुख द्वारा प्रतिदिन 50 से 100 माइक्रोग्राम विटामिन बी-12 दिया जाता है। साथ ही खान-पान पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। पर्याप्त मात्रा में दूध, हरी

पत्तेदार सब्जियां, फल, अंडे आदि का सेवन करना चाहिए ताकि विटामिन बी-12 के साथ फोलिक अम्ल भी प्राप्त हो सके। संतुलित भोजन करना चाहिए। यदि व्यक्ति मांसाहारी है तो यकृत का सेवन अधिकाधिक करना चाहिए। उच्च प्रोटीन युक्त आहार का सेवन करना चाहिए।

लौह लवण का अवशोषण

लौह लवण का अवशोषण छोटी आंत के पक्वाशय एवं जेजुनम वाले भाग में होता है। भोज्य पदार्थों में उपस्थित लौह तत्व पाचन के पश्चात् फेरस रूप में बदल जाता है। लौह लवण का अवशोषण आंत में फेरस रूप (Fe^{++}, Ferrous form) में ही होता है। आंत में लौह लवण का अवशोषण अनेक कारकों पर निर्भर करता है।

- **लौह तत्व का प्रकार**

भोजन में उपस्थित लौह लवण को मुख्य रूप से दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

- हीम लौह तत्व (Haem iron)
- नॉन हीम लौह तत्व (Non-haem iron)

हीम लौह तत्व रक्त में हीमोग्लोबिन में उपस्थित रहता है। यह यकृत, मांस, मछली, पेशीयुक्त मांस आदि में उपस्थित रहता है। इन भोज्य पदार्थों में उपस्थित लौह लवण का 60-70 प्रतिशत अवशोषित हो जाता है।

नॉन हीम लौह तत्व का अवशोषण शीघ्रता एवं पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। इसके उचित अवशोषण के लिए अवशोषण को बढ़ावा देने वाले तत्वों (Enhancers) की आवश्यकता पड़ती है।

लौह लवण का अवशोषण उसकी प्रकृति पर भी निर्भर करता है। लौह लवण का अवशोषण फेरस रूप (Fe^{++}, Ferrous form) में सुगमता से होता है। फेरिक रूप (Fe^{3+}, Ferric form) में लौह तत्व का अवशोषण नहीं हो पाता है। जब फेरिक रूप, फेरस रूप में बदलता है तभी उसका समुचित अवशोषण हो पाता है। हीम लौह तत्व फेरस रूप में होता है एवं नॉन हीम लौह तव फेरिक रूप में होता है।

- **लौह लवण के अवशोषण में अवरोधक (Inhibitors of Iron Absorption)**

लौह लवण के अवशोषण में बहुत से खाद्य पदार्थों के तत्व अवरोधक या बाधक का कार्य करते हैं। यह तत्व कॉफी, चाय, दूध, दूध उत्पाद, अंडे, साबुत अनाज में ऑक्जलेट, फाइटेट, फॉस्फेट, टैनिन आदि के रूप में उपस्थित होते हैं। यह तत्व नॉन हीम लौह तत्व के अवशोषण को प्रभावित करते हैं।

लौह लवण के अवशोषण में सहायक तत्व

नॉन हीम लौह तत्व के अवशोषण में विटामिन सी, लैक्टिक ऐसिड, प्रोटीन, विटामिन ई सहायक तत्व हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. पादप खाद्य पदार्थों में पाया जाने वाला नॉन हीम लौह तत्व विटामिन .... की उपस्थिति में बेहतर अवशोषित होता है:

(क) विटामिन ए (ख) विटामिन के

(ग) विटामिन सी (घ) विटामिन ई

b. लौह तत्व की आवश्यकता में वृद्धि होती है:

(क) वयस्क पुरुष में (ख) धात्री माता में

(ग) एनीमिया से ग्रस्त बच्चों में (घ) 50 साल से अधिक उम्र की महिला में

c. निम्नलिखित खाद्य पदार्थों में किस की उपस्थिति में लौह लवण की अवशोषण की संभावना कम होती है:

(क) संतरे का रस (ख) मछली

(ग) दाल (घ) चाय

d. लौह लवण की कमी से होने वाले एनीमिया का लक्षण है:

(क) तेज धड़कन (ख) थकान

(ग) बुखार (घ) तेज याद्दाशत

e. किस जनसंख्या समूह में विटामिन बी-12 की कमी का खतरा रहता है:

(क) गर्भवती महिला (ख) शुद्ध शाकाहारी

(ग) शिशु (घ) किशोर

f. निम्नलिखित में से किस बीमारी के कारण एनीमिया हो सकता है:

(क) निमोनिया (ख) दिमागी बुखार

(ग) पेट के कीड़े (घ) कब्ज

आइए अब विटामिन ए की कमी से सम्बंधित समस्याओं के बारे में जानें।

6.3.3 विटामिन 'ए' की कमी

विटामिन 'ए' की कमी दूसरी बड़ी जन स्वास्थ्य समस्या है। विटामिन ए की कमी से दुनिया भर में करोड़ों छोटे बच्चे प्रभावित होते हैं। यह बच्चों में दृष्टिहीनता का एक बड़ा कारण है। शोधों से स्पष्ट हो चुका है कि विटामिन ए की कम मात्रा में कमी भी रोगप्रतिरोधी क्षमता को काफी कम कर देती है।

विटामिन ए की भूमिका

विटामिन ए सामान्यतः यकृत में संग्रहित होता है। आप यह जानते हैं कि विटामिन ए आँखो के उत्तम स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी होता है। हल्की रोशनी में देखने की क्षमता विटामिन ए से ही मिलती है। यह आच्छादक ऊतकों के उत्तम स्वास्थ्य को बनाये रखने में अमूल्य भूमिका निभाता है। विटामिन ए त्वचा को कोमल, चमकदार एवं स्वस्थ बनाये रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह रोगरोधक प्रणाली के सुचारु संचालन में सहायक होता है। यह शारीरिक वृद्धि के लिए आवश्यक विटामिन है।

विटामिन ए की कमी के कारण

विटामिन ए माँ के दूध, कलेजी, अण्डों, मक्खन और गाय के दूध में मिलता है। वनस्पति खाद्य स्रोतों जैसे हरी पत्तेदार सब्जियों, संतरे, पीले फल एवं सब्जियों, गाजर और लाल खजूर के तेल में विटामिन ए बीटा-कैरोटीन रूप में उपस्थित होता है जो पेट की भीतरी दीवारों में रेटीनॉल में परिवर्तित हो जाता है। खाद्य पदार्थों में व्यापक रूप से विटामिन ए की उपलब्धता के बाद भी विटामिन ए की कमी जनसंख्या में उल्लेखनीय रूप से व्याप्त है। इसकी कमी के निम्नलिखित कारण हैं:

- इसका प्रबल और मुख्य कारण आहार में उचित मात्रा में विटामिन ए सम्मलित न करना है।
- दूसरा महत्वपूर्ण कारण आहार में अत्यधिक कम मात्रा में वसा का उपयोग होना है। वसा के अभाव में विटामिन ए का सही प्रकार से अवशोषण नहीं हो पाता है।
- आहार में प्रोटीन की कमी से भी विटामिन ए की कमी उत्पन्न हो सकती है क्योंकि विटामिन ए के परिवहन में प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है।
- माँ के दूध में अच्छी मात्रा में विटामिन ए होता है। यदि शिशु को छः माह से पहले माँ का दूध देना बन्द कर दिया जाए तो बच्चे में विटामिन ए की कमी उत्पन्न हो सकती है। वहीं दूसरी ओर छः महीने के पश्चात भी यदि शिशु को सिर्फ माँ का ही दूध दिया जाता है तो भी विटामिन ए की कमी उत्पन्न हो सकती है। छः माह के बाद सिर्फ माँ के दूध से बच्चे की विटामिन ए की

आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है। पूरक आहार में भी यदि विटामिन ए के स्रोत नहीं हैं तो भी कमी हो सकती है।

- बचपन का संक्रमण, विशेष तौर पर खसरा का संक्रमण शरीर से विटामिन ए के भंडार को कम कर देता है जिससे जिरोपथेलमिया होने की आशंका बढ़ जाती है।
- व्यक्तिगत एवं पर्यावरणीय स्वच्छता का अभाव, कृमि संक्रमण आदि शरीर में विटामिन ए के उचित अवशोषण में बाधा डालते हैं जिससे विटामिन ए की थोड़ी- सी कमी भी जल्द ही बढ़ कर विकराल रूप धारण कर लेती है।
- परिवार में खाद्य असुरक्षा, भोजन उपलब्धता का अभाव, निर्धनता, अशिक्षा, ज्ञान का अभाव, अंधविश्वास, मान्यताएँ एवं खाने-पीने संबंधी आदतें आदि अनेक अप्रत्यक्ष कारण हैं जिनसे विटामिन ए की कमी हो सकती है या विटामिन ए की कमी को बढ़ावा मिलता है ।

विटामिन ए की कमी के लक्षण

विटामिन ए की कमी की पहचान निम्नलिखित लक्षणों से की जा सकती है:

1. विटामिन ए की कमी वाले बच्चों की रोग प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाती है जिससे उन्हें संक्रमण होने की आशंका बढ़ जाती है। पहले से मौजूद सक्रंमण और अधिक तीव्र हो जाते हैं। इस प्रकार बच्चा संक्रमण एवं विटामिन ए की कमी के कुचक्र में फंसा रह जाता है।

2. विटामिन ए की कमी विकासशील देशों में बच्चों में अन्धेपन का मुख्य कारण है। विटामिन ए की कमी की तीव्रता के अनुसार आँखों में तकलीफ होने लगती है। यदि आहार में निरंतर विटामिन ए की कमी बनी रहती है तो जिरोफथैलमिया रोग हो जाता है। इस रोग में आंखों की कॉर्निया की श्लैष्मिक झिल्ली सूख जाती है एवं कॉर्निया में सूजन आ जाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने नैदानिक लक्षणों के आधार पर जिरोफथैलमिया का निम्न वर्गीकरण किया है:

रतौंधी: यह जिरोफथैलमिया का प्रथम लक्षण है। रतौंधी की स्थिति में अंधेरे में या कम रोशनी में नहीं दिखाई देता है। इसके साथ-साथ रोशनी से अंधेरे में जाने पर कम या नहीं के बराबर दिखाई देता है। आप पहले भी पढ़ चुके हैं कि आंखों के रेटीना में रॉड्स होते हैं, जिनमें रोडोप्सिन नामक वर्णक होता है। यह रोडोप्सिन धुंधले प्रकाश में देखने की क्रिया को नियंत्रित करता है। रोडोप्सिन ऑप्सिन (प्रोटीन) एवं विटामिन ए (ऐल्डोहाइड रूप) से मिलकर बनता है। विटामिन ए के अभाव में रोडोप्सिन की क्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति को अंधेरे या कम प्रकाश में कुछ भी नहीं दिखाई देता है।

कन्जेक्टाइवल जेरोसिस: विटामिन ए की कमी से कन्जक्टाइवा सूखकर मोटी हो जाती है। कन्जक्टाइवा पर झुर्रियां दिखाई देने लगती हैं। ऐसा आंखों की स्लैष्मिक झिल्लियों के ठीक प्रकार से काम न करने के कारण होता है। स्लैष्मिक झिल्लियों के सूखने से कन्जक्टाइवा में धुंए जैसी सफेदी छा जाती है।

बिटॉट स्पॉट: यह कन्जक्टाइवा पर त्रिकोणीय, चमकदार, भूरे/सफेद रंग के झागदार धब्बे होते हैं। अधिकतर यह धब्बे उठे हुए होते हैं। ये विटामिन ए की कमी के स्पष्ट संकेत देते हैं।

कॉर्नियल जेरोसिस: इस स्थिति में कॉर्निया धुंधला और शुष्क हो जाता है। यह नम या भीगा हुआ दिखाई नहीं देता और अन्ततः अपारदर्शी हो जाता है। यह एक गम्भीर अवस्था होती है। विटामिन ए की अत्यधिक कमी होने पर कॉर्निया में जख्म बन जाता है।

केरेटोमलेशिया: इस स्थिति में कॉर्निया की स्लैष्मिक झिल्ली टूटने लगती है एवं कॉर्निया का द्रवीकरण होने लगता है, जिससे कॉर्निया अपारदर्शी हो जाता है। जब कॉर्निया का भीतरी हिस्सा गल जाता है तब इसमें घाव होने लगते हैं। इन घावों पर जीवाणुओं का संक्रमण होने लगता है जिससे कॉर्निया तअथा नेत्रगोलक नष्ट होने लगते हैं। यह स्थिति दोनों आंखों में या सिर्फ एक आंख में भी हो सकती है।

कॉर्नियल स्कार: केरेटोमलेशिया के ठीक होने पर घाव का निशान रह जाता है। उसे कॉर्नियल स्कार कहते हैं। इसके कारण दृष्टि पूर्णतः या आंशिक रूप से कम हो जाती है।

विटामिन ए की कमी से उत्पन्न आंखों की बीमारियाँ भारत में अन्धेपन के सर्वाधिक सामान्य कारण हैं।

1. आंखों के अतिरिक्त विटामिन ए की कमी त्वचा पर भी दिखाई देती है। विटामिन ए के अभाव में त्वचा की स्वेद ग्रंथियां ठीक प्रकार से कार्य नहीं करती हैं, जिसके कारण पसीना नहीं निकलता है तथा त्वचा सूखी, खुरदरी, रूक्ष, कठोर एवं खूंटीदार हो जाती है। त्वचा पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। त्वचा के इस रोग को 'टोड स्किन' कहते हैं।
2. विटामिन ए की कमी के कारण शारीरिक वृद्धि में अवरोध आ जाता है।
3. विटामिन ए के अभाव में शरीर के इपीथीलिएल ऊतकों में परिवर्तन होने लगता है।
4. विटामिन ए की कमी नाक की स्लेष्मा झिल्ली, गले एवं श्वसन नली को खुरदरा और शुष्क बना देती है जिसके कारण संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है।

विटामिन ए की कमी को दूर करने के उपाय

आहार संशोधन: इस विधि के अंतर्गत विटामिन ए से भरपूर पदार्थ जैसे हरी पत्तेदार सब्जियां, नारंगी तथा पीले फल एवं सब्जियां आदि के उपयोग एवं उत्पादन पर बल दिया जाना चाहिए। लाल ताड़ का तेल एवं पशु जन्य भोज्य पदार्थ भी विटामिन ए के अच्छे स्रोत हैं इसलिए छः माह तक के बच्चों को सिर्फ माँ का दूध ही देना चाहिए। यह एक दूरदर्शी उपाय है। यदि जनसंख्या के ज्यादातर लोग विटामिन ए से युक्त भोज्य पदार्थों के बारे में जानकारी रखेंगे एवं अपने रसोई उद्यान में प्रतिदिन उपयोग हेतु भोज्य पदार्थ उगाएंगे तो विटामिन ए की कमी से आसानी से निजात पाया जा सकता है।

प्रबलीकरण (Fortification): अनेक देशों ने अपनी आबादी का विटामिन ए का स्तर सुधारने के लिए प्रतिदिन प्रयुक्त होने वाले भोज्य पदार्थों को विटामिन ए से पुष्ट कर कमी को पूर्ण करने में सफलता प्राप्त की है। दूध, घी, तेल, मक्खन आदि को विटामिन ए से प्रबल किया जाता है। आटे, नमक एवं चावल को विटामिन ए से प्रबल कर इस रोग की व्यापकता कम की जा सकती है।

प्रबलीकरण की प्रक्रिया की सफलता कई बातों पर निर्भर करती है:

- विटामिन ए की कमी हेतु संवेदनशील जनसंख्या नियमित रूप से प्रबल किये हुए आहार की इतनी मात्रा ग्रहण करे जिससे उसे लाभ हो।
- प्रबलीकरण से ग्राहकों के लिए उत्पाद के स्वाद या रंग-रूप में कोई बदलाव न हो।
- प्रबलीकृत खाद्य पदार्थ की कीमत अधिक न हो।

विटामिन ए की कमी का उपचार

प्रभावी उपचार समयपूर्ण निदान, विटामिन ए की पूरक खुराक एवं कारणों के उपचार पर निर्भर करता है। विटामिन ए शरीर में 6 से 9 माह तक संचित रह सकता है और धीरे-धीरे मुक्त होता है। बच्चों में विटामिन ए की कमी के निदान हेतु विटामिन ए की मौखिक खुराक तेल में (रेटिनॉल पामीटेट 200,000 IU की एक अकेली खुराक मुख द्वारा हर 6 महीने बाद स्कूल पूर्व बच्चों में (1 वर्ष से 6 वर्ष) तथा इसकी आधी खुराक 100,000 IU 6 माह से 1 वर्ष की आयु के बच्चों में प्रदान की जाती है। इस प्रकार की मौखिक खुराक से जेरोफथैलिमया और अन्धेपन की रोकथाम हो सकती है। रतौंधी एवं कन्जक्टाइवल जिरोसिस में 300,000 IU विटामिन ए से युक्त एक कैप्सूल मुख द्वारा प्रतिदिन एक सप्ताह तक देनी चाहिए। यदि कॉर्निया क्षतिग्रस्त हो जाता है तो एक सप्ताह तक प्रतिदिन 200,000 IU विटामिन ए अन्तः पेशीय इन्जेक्शन द्वारा देना चाहिए और इसके पश्चात् विटामिन ए को मुख द्वारा दिया जा सकता है।

विटामिन ए की कमी को रोकने तथा उपचार के लिए भारत सरकार द्वारा एक वृहद कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इसमें 6 माह से 6 वर्ष तक के बच्चों को 200,000 IU विटामिन ए की एक खुराक पिलायी जाती है। दूसरी खुराक 6 माह के बाद दी जाती है। कुल 5-6 खुराकें दी जाती हैं। विटामिन ए घोल के रूप में भी पिलाया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. विटामिन .... की कमी से रतौंधी होती है:
(क) विटामिन ए (ख) विटामिन बी
(ग) विटामिन सी (घ) विटामिन डी

b. .... विटामिन ए का उत्कृष्ट खाद्य स्रोत है:
(क) आलू (ख) गाजर
(ग) टमाटर (घ) सन्तरा

c. कन्जक्टाइवा का सूखना, शुष्क और परतदार त्वचा एवं बाल झड़ने के लक्षण किस पोषक तत्व की कमी के कारण दिखाई देते हैं:
(क) विटामिन सी (ख) प्रोटीन
(ग) विटामिन ए (घ) उपरोक्त में कोई नहीं

d. विटामिन ए शरीर के किस अंग में संगृहित होता है:
(क) यकृत (ख) गुर्दे
(ग) बाल (घ) आँत

e. बच्चों के लिए विटामिन ए की खुराक की मात्रा .... है:
(क) कुछ नहीं (ख) 1000 IU
(ग) 30,000 IU (घ) 200,000 IU

f. कन्जक्टाइवा पर सफेद भूरे झागदार धब्बे .... कहलाते हैं:
(क) जिरोफथैलमिया (ख) किरेटोमलेशिया
(ग) बिटॉट स्पॉट (घ) उपरोक्त सभी

अब हम आयोडीन अल्पता विकार पर चर्चा करेंगे।

6.3.4 आयोडीन अल्पता विकार

स्वस्थ जीवन के लिए आयोडीन अत्यन्त ही आवश्यक खनिज लवण है। मानव शरीर की वृद्धि एवं विकास आयोडीन पर निर्भर है। थायरॉक्सिन हार्मोन का स्रावण थायरॉइड ग्रंथि से होता है। थायरॉइड ग्रंथि को उचित मात्रा में थायरॉक्सिन हार्मोन बनाने के लिए 60 माइक्रोग्राम आयोडीन की आवश्यकता होती है। भोजन में आयोडीन की कमी होने से थायरॉक्सिन हार्मोन का निर्माण नहीं हो पाता है। एक स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में सामान्यतः 15-20 मिलीग्राम आयोडीन होता है जिसमें से लगभग एक तिहाई हिस्सा थायरॉइड ग्रंथि में उपस्थित रहता है। शेष आयोडीन रक्त एवं अन्य ऊतकों में उपस्थित होता है।

दैनिक आवश्यकता

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रस्तावित आयोडीन की दैनिक आवश्यकता की मात्रा तालिका 6.7 में दी जा रही है।

तालिका 6.7: प्रस्तावित आयोडीन आवश्यकता

	आयु	आयोडीन की मात्रा (माइक्रोग्राम में)
बच्चे	0-6 महीने	40
	6-12 महीने	50
	1-3 वर्ष	70
	4-6 वर्ष	90
	10-18 वर्ष	140
वयस्क	वयस्क पुरुष	150
	स्त्री	150
	गर्भवती स्त्री	175
	दूध पिलाने वाली स्त्री	200

स्रोत: विश्व स्वास्थ्य संगठन

वयस्कों के लिए आयोडीन की दैनिक आवश्यकता 150 माइक्रोग्राम है। बढ़ते हुए बच्चों, किशोरों, गर्भवती एवं दूध पिलाने वाली स्त्रियों और मानसिक दबाव में रहने वाले लोगों को प्रतिदिन अधिक आयोडीन की आवश्यकता होती है।

आयोडीन के कार्य

1. थाइरोग्लोब्यूलिन एवं थायरॉक्सिन हार्मोन के निर्माण में
2. आधारीय चयापचय को नियमित एवं नियंत्रित करना
3. शिशु के मानसिक विकास में
4. शरीर के ताप नियंत्रण में
5. शारीरिक वृद्धि एवं विकास में
6. कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करने में

आयोडीन अल्पता विकार (Iodine Deficiency Disorder)

आयोडीन की कमी मस्तिष्क में होने वाली गड़बड़ी और मानसिक वृद्धि अवरोध का सबसे बड़ा कारण है और इसे रोका जा सकता है। आयोडीन की कमी के प्रमुख लक्षण गलगण्ड या घेंघा या गॉयटर तथा क्रेटिनिज्म हैं।

आयोडीन की कमी के यह लक्षण सिर्फ दिखाई देने वाले हैं जिनकी व्यापकता विस्तृत है। आयोडीन की कमी के शिकार लोग बौनेपन, गूँगे-बहरेपन, निचले अंगों के लकवे जैसे रोगों की चपेट में आ जाते हैं। वयस्कों और बच्चों में आयोडीन की कमी होने पर उनका बौद्धिक स्तर 10 से 15 प्रतिशत घट जाता है। आयोडीन की कमी से गर्भपात और मृत शिशु पैदा होने का खतरा बहुत बढ़ जाता है।

आयोडीन की कमी के कारण

आयोडीन अल्पता का मुख्य कारण आहार में आयोडीन की कमी है। शरीर में आयोडीन की कमी आयोडीन के दोषपूर्ण अवशोषण के कारण भी हो सकती है। आयोडीन की कमी इसलिये ज्यादा प्रचलित है क्योंकि भोज्य पदार्थों से उचित मात्रा में आयोडीन प्राप्त नहीं हो पाता है। यह इसलिये क्योंकि जिस मिट्टी में उन्हें उगाया जाता है उसमें ही आयोडीन की कमी होती है। वर्षा के पानी के साथ मिट्टी का आयोडीन बह कर समुद्र में चला जाता है तथा उस मिट्टी में उगाए जा रहे पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाता। जिन स्थानों पर मिट्टी तथा जल में आयोडीन कम होता है उन्हीं स्थानों पर आयोडीन की कमी के विकारों की व्यापकता ज्यादा पायी जाती है। आयोडीन की कमी का दूसरा बड़ा कारण आहार में गलगण्डजनक तत्वों की उपस्थिति है। ये तत्व गलगण्ड को उत्पन्न करने वाले रसायनिक पदार्थ होते हैं। ये तत्व थायरॉइड ग्रंथि के द्वारा आयोडीन के उपभोग में बाधा उत्पन्न करते हैं। यह गलगण्डजनक तत्व ग्लूकोसिनोलेट्स एवं थायोसायनेट्स के रूप में उपस्थित होते हैं। यह बन्दगोभी, पत्तागोभी, शलजम, मूँगफली आदि में पाये जाते हैं। गलगण्डजनक तत्व कठोर जल में भी

पाये जाते हैं। जल में उपस्थित गन्दगी एवं सूक्ष्म जीवाणु भी आयोडीन की उपलब्धता पर प्रभाव डालते हैं।

आयोडीन की कमी के विकारों की पहचान

जनसंख्या में आयोडीन की कमी से उत्पन्न विकृतियों का आंकलन गलगण्ड को छूकर किया जा सकता है लेकिन इसके लिए काफी प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। गलगण्ड को छूकर तथा उसके आकार के आंकलन द्वारा आयोडीन की कमी के स्तर का पता चलता है। मूत्र में विसर्जित आयोडीन इसकी खपत का अच्छा संकेतक है, इसलिए मूत्र के नमूनों की जाँच करके आयोडीन की कमी से उत्पन्न विकारों की भरोसेमन्द पहचान की जा सकती है।

आयोडीन की कमी के विकारों के लक्षण

1. घेंघा या गलगण्ड (Goiter): जब भोजन द्वारा आयोडीन की पूर्ति नहीं होती है तो दैनिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करने के लिए थायरॉइड ग्रंथि को थायरॉक्सिन हार्मोन के स्रावण हेतु अधिक कार्य करना पड़ता है। फलस्वरूप थायरॉइड ग्रंथि की कोशिकाएं निरन्तर विभाजित होती रहती हैं जिससे ग्रंथि का आकार बढ़ जाता है। इसी गाँठ को घेंघा या गलगण्ड कहते हैं।

2. क्रेटिनिजम (Cretinism): जिन बच्चों की माताओं ने गर्भावस्था के दौरान पर्याप्त मात्रा में आयोडीन का सेवन न किया हो, उन बच्चों को क्रेटिनिजम नामक रोग हो जाता है। इस रोग में बच्चे का शारीरिक एवं मानसिक विकास रुक जाता है। बच्चे की लम्बाई काफी कम (बौनापन) रह जाती है। बच्चे की चयापचय दर अत्यन्त कम हो जाती है जिससे उसे भूख नहीं लगती है। इनमें से बहुत से बच्चे गूंगे या बहरे रह जाते हैं।

3. मिक्सीडीमा (Myxedema): यह रोग वयस्कों में होता है। यह क्रेटिनिजम से कम गम्भीर रोग है। यह रोग थायरॉइड ग्रंथि की कम क्रियाशीलता के कारण होता है। इस रोग में रोगी हमेशा थकावट एवं सुस्ती महसूस करता है।

4. गर्भावस्था में आयोडीन की कमी से गर्भपात का खतरा बढ़ जाता है तथा कभी-कभी गर्भाशय में ही भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। शिशु समय से पहले भी जन्म ले सकता है एवं उसकी मानसिक तथा शारीरिक वृद्धि में बाधा पड़ती है।

उपचार

आयोडीन की कमी का उपचार आयोडीन युक्त नमक के प्रयोग से किया जाता है। आयोडीन युक्त नमक साधारण नमक है जिसमें बहुत शुद्ध मात्रा में पोटेशियम आयोडाइड मिलाकर उसे आयोडीन

से प्रबल किया जाता है। भारत में सादे नमक को 30 पी.पी.एम. तक के स्तर तक आयोडीन से युक्त किया जाता है, जिसमें से 50 प्रतिशत आयोडीन आयात, भंडार एवं वितरण के समय नष्ट हो जाता है। गर्भवती माताओं को आयोडीन युक्त भोज्य पदार्थ अवश्य देने चाहिए। घेंघा रोग होने पर पोटेशियम आयोडेट (6 मिली ग्राम) की गोली प्रतिदिन प्रदान की जाती है। गम्भीर घेंघा रोग दवा से भी ठीक नहीं होता है, ऐसी स्थिति में सर्जरी का प्रयोग किया जाता है।

रोकथाम

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय आयोडीन अल्पता रोग नियंत्रण कार्यक्रम 1962 में शुरु किया गया था। इसका उद्देश्य घेंघा रोग से प्रभावित इलाकों की खोज करना एवं आयोडीन को नमक में मिलाकर सकल जनसंख्या को देना है जिससे घेंघा रोग एवं इसके अन्य नुकसानों से बचा जा सके।

अभ्यास प्रश्न 4

---

1. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. .... के उत्पादन के लिए आयोडीन आवश्यक है:

(क) इन्सुलिन (ख) थायरॉइड हार्मोन

(ग) घेंघा (घ) लौह तत्व

b. आयोडीन की कमी से .... रोग नहीं होता है।

(क) घेंघा रोग (ख) एनीमिया

(ग) क्रेटिनिजम (घ) मिक्सीडीमा

c. आयोडीन नमक में घरेलू स्तर पर आयोडीन की .... मात्रा होनी चाहिए।

(क) 15 ppm (ख) 30 ppm

(ग) 60 ppm (घ) 20 gm

6.3.5 अतिपोषण एवं अन्य अपक्षयी विकार

अतिपोषण लम्बे समय तक अत्यधिक भोजन ग्रहण करने के कारण उत्पन्न रोग की दशा है। इससे मोटापे, मधुमेह, उच्च रक्तचाप एवं बड़ी धमनियों में ‘एथेरोमा’ बन जाता है। इकाई के पिछले भाग में आपने अल्प पोषण के विभिन्न रूपों के बारे में जानकारी प्राप्त की। इकाई के इस भाग में आप अति पोषण एवं अन्य अपक्षयी रोगों के बारे में जानकारी लेंगे। अतिपोषण के कारण होने वाली सबसे

आम समस्या अधिक वजन एवं मोटापे की है। आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण करने पर शरीर में वसा एकत्रित होने लगती है। शरीर में आवश्यकता से अधिक वसा को मोटापा कहा जाता है। तकनीकी तौर पर आदर्श शारीरिक वजन से 20 प्रतिशत से अधिक वजन मोटापा माना जाता है। अधिक भार में शरीर का वजन आदर्श शारीरिक वजन की तुलना में 10-20 प्रतिशत अधिक हो जाता है।

मोटापे का आंकलन

शरीर द्रव्यमान सूचकांक या बॉडी मास इंडेक्स (BMI) शरीर के आकार का आंकलन करने की सबसे उपयुक्त विधि मानी जाती है। बी.एम.आई. वजन (किलो ग्राम) को लम्बाई (वर्ग मीटर) से भाग देकर निर्धारित किया जाता है। 18.5 से 25 तक बी.एम.आई. के माप को स्वस्थ माना जाता है। लेकिन 25 से ऊपर बी.एम.आई. को सामान्य वजन से ज्यादा माना जाता है और यह माप अधिक मोटापे की निशानी होता है।

तालिका 6.8: शरीर द्रव्यमान सूचकांक

बी.एम.आई. भार (किग्रा)/लम्बाई (वर्ग मीटर)	वर्गीकरण
≤18.5	कम भार
18.5-24.9	सामान्य भार
25.0-29.9	सामान्य से अधिक भार
30.0-34.9	श्रेणी-1 मोटापा
35.0-39.9	श्रेणी-2 मोटापा
≥40.0	श्रेणी-3 मोटापा

मोटापे के कारण

मोटापा एक दीर्घकालीन अवस्था है जो बहुकारकीय एवं जटिल है। इसका मुख्य कारण अतिपोषण है। इसके अन्य कारण निम्नलिखित हैं:

- आनुवंशिकता
- खान-पान की गलत आदतें
- मानसिक अवसाद
- बढ़ती उम्र
- कम क्रियाशीलता
- हार्मोनल प्रभाव
- पारिवारिक प्रभाव
- गर्भावस्था

- पर्याप्त शारीरिक श्रम न करना
- दवाईयां
- उच्च आर्थिक स्तर
- रजोनिवृति

मोटापे के लक्षण

मोटापा एक ऐसी स्थिति है जिसमें शरीर में अत्यधिक वसा का जमाव होने लगता है। यह वसा का जमाव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसके निम्नलिखित लक्षण हैं:

- वजन बढ़ना
- उच्च सीरम ट्राइग्लिसराइड स्तर
- शरीर का बड़ा आकार
- नींद संबंधी विकार
- साँस लेने में तकलीफ
- गतिहीनता
- अन्य जटिलताएं जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, पित्त की पथरी, प्रजनन विकार, कैन्सर।

उपचार

मोटापे का इलाज आसान है लेकिन लम्बे समय तक वजन घटाना एवं उसे बनाए रखना मुश्किल है। वजन कम करने से स्वास्थ्य लाभ होता है। इसलिए मोटे व्यक्तियों को वजन कम करना ही चाहिए।

मोटापे से ग्रस्त रोगियों के लिए आहारीय दिशानिर्देश (प्रतिदिन)

1. मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को कम से कम 50 ग्राम कार्बोहाइड्रेट का सेवन करना चाहिए।
2. न्यूनतम 25 से 30 ग्राम आहारीय रेशा (फाइबर) प्रतिदिन फल, सब्जी, साबुत अनाज से लेना चाहिए।
3. आहार में प्रोटीन की मात्रा एक ग्राम प्रति आदर्श शारीरिक वजन के अनुसार होनी चाहिए।
4. कुल वसा का सेवन, कुल ऊर्जा के सेवन का 30 प्रतिशत से कम होना चाहिए।
5. संतृप्त वसा का सेवन कुल ऊर्जा के सेवन का 10 प्रतिशत होना चाहिए।
6. बहुअसंतृप्त वसा का सेवन कुल ऊर्जा के सेवन का 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए।
7. एकल संतृप्त वसा का सेवन कुल ऊर्जा सेवन का 10-15 प्रतिशत होना चाहिए।
8. कोलेस्ट्रॉल की मात्रा 300 ग्राम प्रतिदिन से अधिक नहीं होनी चाहिए।

9. आहार में सोडियम की मात्रा तीन ग्राम प्रतिदिन से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि व्यक्ति उच्च रक्तचाप से भी ग्रस्त है तो सोडियम की मात्रा 2.4 ग्राम प्रतिदिन तक सीमित कर देनी चाहिए।

मोटापे के उपचार में आहारीय परिवर्तन

1. आहार में सभी परिवर्तन मोटापे से ग्रस्त रोगी की जरूरत एवं पसन्द को ध्यान में रखकर ही किए जाते हैं। भोजन के सेवन को कम करने के लिए लचीला दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।
2. अनावश्यक रूप से प्रतिबंधित एवं असन्तुलित आहार का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि ये दीर्घकालिक समय के लिए प्रभावी नहीं होते हैं एवं उनके हानिकारक प्रभाव भी देखे गये हैं।
3. मोटापे के उपचार में आहारीय परिवर्तन को प्रोत्साहित करना चाहिए, चाहे मोटापा कम हो या न हो। आहारीय परिवर्तन से अन्य स्वास्थ्य लाभ जैसे रक्तचाप में कमी, कोलेस्ट्रॉल की मात्रा में कमी आदि प्राप्त किये जा सकते हैं।
4. प्रतिदिन कुल ऊर्जा का सेवन, कुल ऊर्जा के खर्च से कम होना चाहिए।
5. स्थायी वजन घटाने के लिए कम वसायुक्त आहार का प्रयोग करना चाहिए।
6. कम ऊर्जायुक्त आहार (1000-1500 किलो कैलोरी) वजन तो कम करते हैं परन्तु यह पोषण मापदण्डों के अनुसार उचित नहीं हैं। अत्यन्त कम ऊर्जायुक्त आहार का उपयोग कभी-कभी उपवास के लिए किया जा सकता है।
8. 600 किलो कैलोरी या उससे कम किसी भी आहार का प्रयोग चिकित्सक या आहारीय मार्गदर्शक की निगरानी में ही करना चाहिए।
9. आहार में छोटे-छोटे क्रमिक बदलाव फायदेमंद होते हैं।
10. बच्चों और किशोरों को आहार कम करने के साथ-साथ स्वस्थ खाने की आदतों के बारे में भी शिक्षित किया जाना चाहिए।
11. आहारीय परिवर्तन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि प्रमुख खाद्य समूहों में से कोई समूह पूरी तरह से वर्जित नहीं हो रहा हो।

शारीरिक गतिविधि वजन को नियंत्रित करने के लिए अन्य महत्वपूर्ण विधि है। यह विधि वजन प्रबंधन और रखरखाव में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शारीरिक गतिविधियाँ बढ़ाने से ऊर्जा की खपत बढ़ जाती है, जिससे वजन कम होने लगता है। लगातार और नियमित शारीरिक व्यायाम प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ाता है, साथ-साथ हृदय रोग, रक्त वाहिका रोग, मधुमेह एवं मोटापा आदि रोगों को रोकने में मदद मिलती है।

मोटापे के इलाज में शारीरिक गतिविधि के सन्दर्भ में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए:

- सभी वयस्कों को प्रतिदिन 30 मिनट तक मध्यम तीव्रता की कोई शारीरिक गतिविधि अवश्य रूप से अपनानी चाहिए।
- वयस्कों में यदि शारीरिक गतिविधि बढ़ाने से भी वजन कम न हो रहा हो, तब भी शारीरिक गतिविधि की दिनचर्या नहीं छोड़नी चाहिए क्योंकि शारीरिक गतिविधि बढ़ाने से अन्य सकारात्मक स्वास्थ्य लाभ जैसे हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह आदि के जोखिम काफी कम हो जाते हैं।
- यदि कोई व्यक्ति लम्बे समय (30 मिनट) तक व्यायाम नहीं कर सकता तो उसे समय के छोटे-छोटे टुकड़ों में (10-10 मिनट) व्यायाम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जैसे यदि कोई व्यक्ति एक समय में 30 मिनट तक पैदल नहीं चल सकता तो उसे 10-10 मिनट तक दिन में तीन बार घूमना चाहिए। इस प्रक्रिया से भी लगभग वैसे ही लाभ प्राप्त होते हैं।
- सभी को अपनी जीवन शैली में बदलाव लाना चाहिए।

अन्य अपक्षयी रोग

आम तौर पर मान लिया जाता है कि कुपोषण की समस्या सिर्फ गरीब समुदाय तक सीमित है लेकिन इसका दूसरा पहलू यह है कि देश के महानगरों में रहने वाले आर्थिक रूप से सम्पन्न परिवारों में भी कुपोषण (अति कुपोषण) की समस्या गहराती जा रही है। महानगरों में वयस्क एवं प्रौढ़ों के साथ बच्चों के बीच भी मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापे या हृदय रोग जैसी घातक बीमारियों के मामले बढ़ रहे हैं।

आइए कुछ प्रमुख अपक्षयी रोगों के बारे में चर्चा करें।

1. मधुमेह

मधुमेह विश्व का एक मुख्य समस्यात्मक रोग है। इसे डायबिटीज मलाइटस (Diabetes Mellitus) भी कहते हैं। शरीर में इन्सुलिन हार्मोन के उत्पादन अथवा उपयोग की कमी से उत्पन्न रोग ‘मधुमेह’ कहलाता है। इन्सुलिन हार्मोन अग्नाशय के लैंगरहैन्स की द्वीपिकाओं के द्वारा स्रावित होता है। इन्सुलिन कार्बोहाइड्रेट के चयापचय को नियंत्रित करता है। भोजन करने के पश्चात् जैसे ही रक्त में ग्लूकोज की मात्रा बढ़ती है, इन्सुलिन अधिक मात्रा में उत्पन्न होकर ग्लूकोज को यकृत तक पहुँचाने का कार्य करता है। जब अग्नाशय से इन्सुलिन स्रावण कम हो जाता है तो रक्त शर्करा चयापचय के लिए प्रयोग नहीं हो पाती है, इस स्थिति को मधुमेह कहते हैं।

मधुमेह के कारण

मधुमेह के अनेक कारण हो सकते हैं:

- वंशानुगत
- गर्भावस्था
- बढ़ती उम्र
- खान-पान की गलत आदतें
- मोटापा
- अतिपोषण
- मानसिक तनाव
- कम क्रियाशील जीवन

मधुमेह की पहचान

उपवासीय रक्त शर्करा अर्थात् रात को खाना खाने के बाद से 12 घंटे तक कुछ न खाने के पश्चात् सुबह ली गई रक्त शर्करा 80 से 110 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर रक्त होती है। भोजनोत्तर रक्त शर्करा अर्थात् दोपहर का खाना खाने के दो से ढाई घंटे बाद की रक्त शर्करा 110 से 170 मिलीग्राम प्रति 100 मिलीलीटर रक्त होती है। रक्त शर्करा का इससे बढ़ा हुआ स्तर मधुमेह की स्थिति को दर्शाता है।

मधुमेह के लक्षण

मधुमेह की स्थिति में निम्न लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं:

- पॉलीयूरिया- अत्यधिक मूत्र
- पॉलीफेजिया- अत्यधिक भूख
- पॉलीडिप्सिया- अत्यधिक प्यास
- निर्जलीकरण- शरीर का जल संतुलन खराब हो जाता है।
- थकान
- रोग प्रतिरोधक क्षमता का अभाव
- घाव देर से भरना
- एडीमा/सूजन
- माँसपेशियों का क्षय
- रेटीनाइटिस (आँख सम्बन्धी विकार)
- हृदय रोग

उपचार

मधुमेह को नियंत्रित रखना ही इसका उपचार है। मोटापे से ग्रस्त व्यक्ति को यदि मधुमेह है तो वजन पर नियंत्रण करना अत्यन्त आवश्यक है। आहार में परिवर्तन एवं आवश्यक सुधार करके मधुमेह पर अंकुश लगाया जा सकता है। मधुमेह पर नियंत्रण के लिए जीवनशैली एवं आहार में निम्नलिखित बदलाव करने चाहिए:

- आहार से प्राप्त ऊर्जा रोगी व्यक्ति की कुल शारीरिक ऊर्जा माँग से 5 प्रतिशत कम होनी चाहिए।
- भोजन में कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा प्रोटीन का अनुपात (ऊर्जा प्राप्ति के लिए) 65:10-15:20-25 होना चाहिए।
- आहार में सुपाच्य एवं उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन युक्त भोज्य पदार्थ शामिल करने चाहिए।
- आहार में संतृप्त वसा की मात्रा कम से कम होनी चाहिए।
- खनिज लवण एवं विटामिनों की पूर्ति सब्जियों के प्रचुर प्रयोग से करनी चाहिए।
- पूरे दिन के आहार को छोटे-छोटे भागों में विभाजित कर छोटे-छोटे अंतराल में लेना चाहिए।
- नियमित रूप से व्यायाम करना चाहिए।
- चीनी, शहद, चॉकलेट, चीनी युक्त मिठाई का प्रयोग संयमित मात्रा में करना चाहिए।
- आलू, अरबी, चावल, मैदा आदि का प्रयोग संयमित मात्रा में करना चाहिए।
- आहार में रक्त शर्करा कम करने वाले पदार्थ जैसे मेथी दाना, अलसी बीज, रेशेयुक्त आहार का प्रयोग किया जा सकता है।

2. उच्च रक्तचाप

उच्च रक्तचाप वह रोग है जिसमें हृदय के संकुचन की अवस्था में रक्त वाहिकाओं में रक्त का दबाव पारे के 140 mm Hg से ज्यादा या हृदय के विस्तारण की अवस्था में 90 mm Hg से ज्यादा रहता है या दोनों अवस्थाओं में ज्यादा रहता है। मधुमेह और उच्च रक्तचाप दोनों ही रोगों में हृदय रोग, वृक्क रोग एवं अन्य घातक जटिलताओं का जोखिम रहता है। एक स्वस्थ व्यक्ति का रक्तचाप 120/80 mm Hg होता है। ऊपर की संख्या हृदय संकुचन चाप को बतलाती है तथा नीचे की संख्या हृदय विस्तारण चाप की द्योतक है। इससे अधिक रक्तचाप उच्च रक्तचाप को दर्शाता है। रक्तचाप रक्तदाबमापी (Sphygmomanometer) से नापा जाता है।

उच्च रक्तचाप के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

- आयु: 40 की उम्र के पश्चात् रक्तचाप बढ़ने लगता है।
- धूम्रपान एवं मद्यपान

- वंशानुक्रम
- मोटापा
- बुढ़ापा
- शारीरिक क्रियाशीलता में कमी
- मानसिक तनाव, चिंता, उद्वेग, क्रोध, दुख एवं भय
- धमनियों में वसा का जमाव
- दीर्घकाल तक नमक का अधिक प्रयोग
- आहार में वसा की अधिकता, अधिक शर्करायुक्त भोजन, घी, अंडा, मक्खन आदि का अधिक प्रयोग
- गुर्दे में विकार एवं दोष हो जाने से
- एड्रीनल ग्रंथियों में ट्यूमर होने से
- मूत्रनली में संक्रमण से
- व्यायाम का अभाव
- भोजन संबंधी आदतें

उच्च रक्तचाप के लक्षण

- सिर दर्द
- कमजोरी एवं चक्कर आना
- बेचैनी महसूस होना
- कब्ज
- आंखों के आगे धुँधलापन छा जाना
- हृदय की धड़कन अनियमित होते-होते रुक जाना
- हृदय की धड़कन बहुत अधिक बढ़ जाना

उपचार

उच्च रक्तचाप में सामान्य प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के साथ कम ऊर्जा वाला, कम वसा तथा कम सोडियम वाले आहार को ग्रहण करने का परामर्श दिया जाता है।

- प्रतिकिलोग्राम शरीर के भार पर 20 किलो कैलोरी का प्रयोग सबसे उत्तम होता है।
- मोटे व्यक्तियों को आहार में और भी कम कैलोरी का प्रयोग करना चाहिए।
- प्रति किलोग्राम शरीर के भार पर एक ग्राम प्रोटीन लेने का परामर्श दिया जाता है।
- आहार में वसा का प्रयोग कम से कम होना चाहिए।
- नमक का प्रयोग 2-3 ग्राम या इससे कम प्रतिदिन होना चाहिए।
- धूम्रपान करना तथा तम्बाकू चबाना पूर्णतया छोड़ देना चाहिए।

- परिरक्षित खाद्य पदार्थों जैसे अचार, डिब्बा-बंद भोज्य वस्तुओं, चटनी, मसालों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- रोगी को पर्याप्त शारीरिक एवं मानसिक विश्राम दिया जाना चाहिए।
- रक्तचाप कम करने की दवाईयों का प्रयोग किया जा सकता है।
- रोगी को गाढ़ी चाय, कॉफी आदि पीने को नहीं देनी चाहिए क्योंकि इन पेय पदार्थों में कैफीन होता है, जो रक्तचाप को बढ़ाता है।
- उच्च रक्तचाप पर नियंत्रण पाने हेतु रोगी को मानसिक तनाव, चिन्ता, भय, उद्वेग आदि से बचना चाहिए।
- व्यायाम नियमित रूप से करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 5

1. मोटापे के मुख्य कारण क्या हैं?

   ....

   ....

2. मधुमेह के मुख्य लक्षण क्या हैं?

   ....

   ....

3. एक स्वस्थ व्यक्ति का रक्तचाप .... होता है।
4. रक्तचाप किस उपकरण से नापा जाता है?

   ....

6.4 कुपोषण को नियंत्रित करने के उपाय एवं योजना

वर्तमान में कुपोषण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए चिंता का विषय बन गया है। कुपोषण कई सामाजिक-राजनैतिक कारणों का परिणाम है। कुपोषण एक जटिल समस्या है। इसके लिए घरेलू खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है जब ऐसी नीतियां बनायी जाएं जो कुपोषण और भूख को समाप्त करने के प्रति लक्ष्यबद्ध हों।

यह माना जा चुका है कि उपलब्ध नई तकनीकों के उपयोग, पर्याप्त पौष्टिक आहार तथा सुरक्षित पेयजल की व्यवस्था के द्वारा शिशु एवं बाल मृत्यु दरों में कमी लाई जा सकती है तथा बीमारियों एवं कुपोषण का मुकाबला किया जा सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में परिवार की खाद्य सुरक्षा के लिए कृषि संसाधनों को मजबूत एवं सुलभ करना आवश्यक है। शहरी क्षेत्रों में खाने-पीने का सामान अधिकतर बाजार से खरीदा जाता है। इसलिए खाद्य सुरक्षा हेतु आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार की खाद्य सामग्री उचित मूल्य पर उपलब्ध हो। परिवार में खाद्य सुरक्षा, खाद्य सामग्री की वित्तीय, भौतिक और सामाजिक सुलभता के आधार पर भिन्न होती है। यह खाद्य सामग्री की उपलब्धता से एकदम भिन्न है। उदाहरण के लिए बाजार में भले ही पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध हो लेकिन अगर निर्धन परिवार उसे खरीद नहीं सकते तो उन्हें खाद्य सुरक्षा प्राप्त नहीं होगी।

परिवार की खाद्य सुरक्षा बनाए रखने में महिलाओं की विशेष भूमिका है। अधिकांश समुदायों में परिवार के लिए आहार तैयार करना, पकाना, उसे सुरक्षित और संग्रहित करना सिर्फ महिलाओं की जिम्मेदारी है। कई समाजों में तो खाद्य सामग्री के उत्पादन और खरीद की बुनियादी जिम्मेदारी भी उन्हीं पर होती है। परिवार की खाद्य सुरक्षा के लिए महिलाओं के स्वास्थ्य एवं पोषण का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। अच्छे स्वास्थ्य के लिए एक बुनियादी आवश्यकता यह भी है कि परिवारों को अपने साधनों के भीतर रोगों के उपचार और रोकथाम के लिए अच्छी किस्म की स्वास्थ्य सेवाएं सुलभ हों।

नीचे दी गई तालिका में आप कुपोषण के लिए उत्तरदायी कुछ कारकों के नियंत्रण हेतु प्रस्तावित पहलुओं पर नजर डालें।

तालिका 6.9: कुपोषण नियंत्रण पर प्रस्तावित पहल

कुपोषण के कारण	प्रस्तावित पहल
पारिवारिक खाद्य संकट	• कृषि को अधिक उत्पादक बनाना ताकि बेहतर पोषण उपलब्ध हो सके। • खाद्यान्न दरों को नियंत्रित रखना। • खाद्य असुरक्षा की सतत् निगरानी करना। • खाद्य सहायता/उपलब्धता सुनिश्चित रखना।
महिलाओं और बच्चों की देखरेख	• समाज और घर में महिलाओं की भूमिका को मजबूत करना।

	• महिलाओं के प्रति भेदभाव को समाप्त करना। • घरेलू हिंसा को रोकना।
शुद्ध जल और स्वच्छता	• स्वास्थ्य का विस्तार करना। • स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता बढ़ाना। • स्वास्थ्य सेवाओं के साथ पोषण को भी सम्मिलित करना। • उचित मात्रा में गुणवत्तापूर्ण जल की पहुँच बढ़ाना। • अच्छे स्तर की स्वच्छता सुनिश्चित करना।
आर्थिक विकास	• आर्थिक वृद्धि के गरीबी कम करने वाले प्रभाव को बढ़ाना। • लोकतंत्र को बढ़ावा देना और मानव अधिकारों की रक्षा करना।
वैश्वीकरण	• वैश्वीकरण के खतरों से गरीबों की रक्षा करना और उन्हें अधिक अवसर और दक्षता प्रदान करना।

यूनिसेफ के अनुसार कुपोषण की समाप्ति से मानव समुदाय को अधिक रचनात्मकता, शक्ति, उत्पादकता, खुशहाली और सम्पन्नता की दृष्टि से जो लाभ होगा जिसे किसी पैमाने पर मापा नहीं जा सकता।

6.5 सारांश

भारत में पोषण संबंधी सभी समस्याएं व्यापक रूप से फैली हैं। एनीमिया सबसे ज्यादा महिलाओं और बच्चों को प्रभावित करता है। इससे उनके शारीरिक एवं संज्ञानात्मक विकास में अवरोध पैदा होता है। एनीमिया, विटामिन ए की कमी, आयोडीन अल्पता विकार आदि सभी समस्याएं जन स्वास्थ्य समस्या का रूप ले चुकी हैं। विकासशील देशों में कुपोषण ज्यादा पाया जाता है। प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण अधिकतर गर्भावस्था में शुरु हो जाता है। माँ कुपोषित हो तो शिशु भी कुपोषित हो सकता है। बुखार, दस्त, खाँसी से बच्चा क्षीण हो जाता है और उसकी भूख भी कम हो जाती है। इससे बच्चा कुपोषण और बीमारियों के दुश्चक्र में फंस जाता है। कुपोषण क्वाशियोरकर एवं मरास्मस के रूप में परिलक्षित होता है।

विश्व में भारतीय महिलाओं एवं बच्चों में एनीमिया सर्वाधिक पाया जाता है। लौह तत्व की कमी से होने वाली खून की कमी विश्व में पोषण संबंधी सबसे आम विकृति है। इसके असर से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर पड़ जाती है तथा शारीरिक एवं मानसिक क्षमता भी कम हो जाती है। शिशुओं में पोषण की कमी बौद्धिक विकास को प्रभावित करती है। विटामिन ए की कमी

विकासशील देशों में बच्चों के अन्धेपन का भी मुख्य कारण है। आयोडीन की कमी मस्तिष्क में होने वाली गड़बड़ी और मानसिक वृद्धि के अवरोध का सबसे बड़ा कारण है जिसे रोका जा सकता है। ज्यादातर हानि गर्भ में ही होने लगती है। आयोडीन की कमी से गर्भपात और मृत शिशु के पैदा होने का खतरा बढ़ जाता है। आयोडीन की कमी का प्रमुख लक्षण गलगण्ड है।

अति पोषण की समस्या भी दिनों दिन बढ़ रही है। यह आमतौर पर बहुत अधिक मात्रा में आहार लेने एवं शारीरिक गतिविधियों में कमी के कारण होता है।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **कुपोषण:** अल्प पोषण या अधिक पोषण।
- **स्टिल बर्थ (Still birth):** एक स्टिल बर्थ शिशु उसे कहते हैं जो गर्भावस्था के 24वें सप्ताह के बाद पैदा हुआ हो एवं पैदा होने के पश्चात उसमें जीवन के कोई लक्षण न दिखाई दिए हों।
- **रक्तदाबमापी (Sphygmomanometer):** रक्तचाप मापने का यंत्र।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (क)
   b. (ख)
   c. (ख)

अभ्यास प्रश्न 2

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (ग)
   b. (ग)
   c. (घ)
   d. (ख)
   e. (ख)
   f. (ग)

अभ्यास प्रश्न 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (क)
   b. (ख)
   c. (ग)
   d. (क)
   e. (घ)
   f. (ग)

अभ्यास प्रश्न 4

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (ख)
   b. (ख)
   c. (क)

अभ्यास प्रश्न 5

1. मोटापे के मुख्य कारण:

- आनुवंशिकता
- मानसिक अवसाद
- कम क्रियाशीलता
- पारिवारिक प्रभाव
- पर्याप्त शारीरिक श्रम न करना
- उच्च आर्थिक स्तर
- खान-पान की गलत आदतें
- बढ़ती उम्र
- हार्मोनल प्रभाव
- गर्भावस्था
- दवाईयां
- रजोनिवृति

2. मधुमेह के मुख्य लक्षण:

- पॉलीयूरिया- अत्यधिक मूत्र
- पॉलीफेजिया- अत्यधिक भूख
- पॉलीडिप्सिया- अत्यधिक प्यास
- निर्जलीकरण- शरीर का जल संतुलन खराब हो जाता है।
- थकान

- रोग प्रतिरोधक क्षमता का अभाव
- घाव देर से भरना
- एडीमा/सूजन
- माँसपेशियों का क्षय
- रेटीनाइटिस (आँख सम्बन्धी विकार)

3. 120/80 mm Hg
4. रक्तदाबमापी (Sphygmomanometer)

6.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- Swaminathan.M.1996. Advanced Text book on Food and Nutrition. Volume I and II Bappco. Reprint
- Seghal S. and Raghuvanshi R.S. (Eds) 2007. Text book of Community Nutrition. ICAR. New Delhi 524.p
- Raghuvanshi R.S. and Mittal M. (2013). Food Nutrition and Diet Threapy. Westville Publishers New Delhi.362p.

इंटर्नेट स्रोत

- www.unicef.org
- www.who.org

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण समुदाय के अस्तित्व के लिए जोखिम कारक है। उदाहरण सहित समझाइये।
2. आयोडीन की कमी के विकारों एवं रोकथाम के तरीकों का विवरण दीजिए।
3. विटामिन ए की कमी से होने वाले आंखों के रोगों का क्रमवार वर्णन कीजिए।
4. लौह तत्व की कमी से उत्पन्न एनीमिया, परनीसियस एनीमिया एवं मैक्रोसिटिक एनीमिया में अन्तर बताइये।

इकाई 7: खाद्य उपभोग स्वरूप एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत के विभिन्न भागों में खाद्य पदार्थों का उपभोग स्वरूप एवं उपलब्धता
7.4 खाद्य बैलेंस शीट
7.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)
7.6 भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India)
7.7 भारत में खाद्यान्न उत्पादन
7.8 खाद्य सुरक्षा एवं गरीबी
7.9 सारांश
7.10 पारिभाषिक शब्दावली
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

किसी भी अर्थव्यवस्था के कार्य एवं प्रदर्शन को व्यापक आर्थिक चरों जैसे राष्ट्रीय आय, उपभोग का स्वरूप, बचत, निवेश एवं रोजगार आदि के सन्दर्भ में मापा जाता है। प्रति व्यक्ति आय एवं खाद्य उपभोग दोनों ही मानव विकास के संकेतक हैं लेकिन खाद्य उपभोग स्वरूप मानव कल्याण का एक बेहतर संकेतक है। 1990 के दशक के दौरान तेजी से हुए आर्थिक विकास के कारण प्रति व्यक्ति आय (व्यय) में विस्तार हुआ है। परिणामस्वरूप लोगों के खाद्य उपभोग स्वरूप में बदलाव देखा जा रहा है। खाद्य उपभोग भोज्य आदतों, उपलब्धता एवं आय पर निर्भर करता है।

खाद्य बैलैंस शीट, सार्वजनिक वितरण प्रणाली से भोज्य उपलब्धता एवं उपभोग स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इनसे प्राप्त आंकड़े भुखमरी का आंकलन करने के लिए उपयोग किये जाते हैं। भुखमरी कम करने के मामले में वैश्विक स्तर पर 1990 के दशक से प्रगति हुई है। उचित भोजन उपलब्धता द्वारा विश्व में भोजन की कमी झेल रहे लोगों की संख्या को काफी हद तक कम किया जा सकता है। आंकड़ों के अनुसार विश्व में हर आठवां व्यक्ति भुखमरी से पीड़ित है। साल 2010 में

विश्वस्तर पर भोजन की कमी से जूझ रहे लोगों की संख्या में कमी आई। भोजन की कमी से जूझ रहे लोगों की संख्या में कमी का बड़ा कारण विकासशील देशों की तेज आर्थिक प्रगति और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खाद्य पदार्थों की कीमतों में हुई गिरावट को माना जाता है। उपभोग स्वरूप एवं उपलब्धता की जानकारी कैलोरी उपभोग, पोषण स्तर, बीमारी आदि के आंकलन में काम आती है। इससे ज्ञात होता है कि आबादी का कितना हिस्सा अभी तक उचित भोजन से वंचित है। यह आंकड़े भोजन सुरक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- भारत के विभिन्न भागों में खाद्य उपभोग स्वरूप एवं उपलब्धता के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- जान सकेंगे कि खाद्य बैलेंस शीट क्या होती है तथा उनका उपयोग क्या है;
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकेंगे एवं खाद्य उपलब्धता में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका समझ सकेंगे;
- भारतीय खाद्य निगम की भूमिका तथा भारत में खाद्य उत्पादन की स्थिति को समझ सकेंगे; तथा
- खाद्य सुरक्षा के विभिन्न आयामों को समझ सकेंगे एवं खाद्य सुरक्षा तथा गरीबी के अंतर्सम्बन्धों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

7.3 भारत के विभिन्न भागों में खाद्य पदार्थों का उपभोग स्वरुप एवं उपलब्धता

वैश्विक स्तर पर खाद्य एवं कृषि संगठन प्रत्येक देश के खाद्य उत्पादन, खाद्य उपलब्धता एवं उपभोग पर नजर रखता है। भारत में यह कार्य राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एन0एस0एस0ओ0) द्वारा किया जाता है। यह सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा 1950 में स्थापित एक सर्वेक्षण संगठन है। यह निश्चित समयानुसार राज्यों के खाद्य उपभोग स्वरूप पर आंकड़े एकत्रित कर उपलब्ध कराता है। एन0एस एस0ओ0 सामाजिक-आर्थिक योजना और नीति निर्माण में सहायता करने के लिए राष्ट्रव्यापी पैमाने पर नमूना सर्वेक्षणों के माध्यम से भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलूओं पर आंकड़े एकत्रित करता है। पिछले पाँच दशकों में विकासशील देशों में विभिन्न खाद्य पदार्थों के उपभोग में बड़ा बदलाव आया है। गत वर्षों में ऊर्जा प्राप्त करने के लिए वसा (तेल), मांस, सब्जियों एवं चीनी का प्रयोग बढ़ा है। जबकि दालों, जड़ों एवं कन्द के प्रयोग में कमी आयी है। नब्बे

के दशक तक अनाजों के प्रयोग में वृद्धि देखी गयी लेकिन उसके पश्चात् अनाजों के प्रयोग में कमी आयी है।

सन् 2004-2005 में अनाज आहार का सबसे बड़ा घटक था। पहले की अपेक्षा दालों का उपभोग कम था। यह दालों के मूल्यों में वृद्धि के कारण हो सकता है। दूध, फल और सब्जियों एवं पशुजन्य भोज्य पदार्थों का उपभोग भी कम देखा गया। इन सभी खाद्य पदार्थों का उपभोग आय के साथ बढ़ता जाता है। राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (एन0एन0एम0बी0) के आकँड़ो से भी यह ज्ञात होता है कि उच्च आय वर्ग में ऊर्जा युक्त भोज्य पदार्थों का उपभोग निम्न आय वर्ग से काफी अधिक होता है।

विभिन्न सर्वेक्षणों से ज्ञात हुआ है कि भारत के ज्यादात्तर हिस्सों में, ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों में अनाज आहार का मुख्य भाग है। इसके पश्चात् दूध एवं फल का स्थान आता है। अनाज में मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग में काफी अंतर देखे गये हैं। यह अंतर उपभोग एवं उपलब्धता में अंतर के कारण भी हो सकता है। जैसे लक्षद्वीप, अंडमान एवं निकोबार द्वीप, गोआ आदि क्षेत्रों में मछली का उपभोग अधिक होता है क्योंकि इन क्षेत्रों में समुद्री जीवों की उपलब्धता अधिक है। पंजाब में दूध एवं फलों का अधिक सेवन, प्रति व्यक्ति अधिक आय से संबंधित है। उत्तर प्रदेश में ग्रामीण एवं शहरी स्तर पर अनाजों की मात्रा के उपभोग में अन्तर देखा गया है, जो उपलब्धता या आय में अन्तर के कारण या दोनों के कारण हो सकता है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि निम्न आय वर्ग में अनाज पर व्यय के अनुपात में कमी के बावजूद इस वर्ग में अनाज के उपभोग की मात्रा बढ़ गयी है। यह इसलिए है क्योंकि पिछले कुछ वर्षों में अनाज की कीमतों में कमी हुई है, विशेष रूप से जो अनाज सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आपूर्तित किया जाता है।

सबसे कम आय समूह के बीच अनाज के प्रकार के उपभोग में परिवर्तन आया है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से गेहूँ और चावल की उपलब्धता बढ़ने के साथ आबादी के गरीब वर्ग ने भी चावल एवं गेहूँ को अपने मुख्य अनाज के रूप में अपना लिया है। वहीं दूसरी ओर सूक्ष्म पोषक तत्वों एवं खनिजों से समृद्ध मोटे अनाज जैसे बाजरा, रागी, ज्वार, मक्का आदि का प्रयोग आबादी के किसी भी आय वर्ग द्वारा पर्याप्त मात्रा में नहीं किया जाता है। एन0एस0एस0ओ0 के सर्वेक्षणों से यह भी ज्ञात होता है कि गत वर्षों में गेहूँ के उपभोग में लगातार वृद्धि हुई है एवं मोटे अनाजों के उपभोग में दिन प्रतिदिन कमी आती जा रही है। विभिन्न क्षेत्रों में परम्परागत रूप से प्रयोग होने वाले मोटे अनाज, लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से एक रियायती मूल्य पर गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे (बी0पी0एल0) परिवारों को उपलब्ध कराये जा सकते हैं। यह कदम ग्रामीण क्षेत्रों में मोटे अनाजों के स्थानीय उत्पादन, खरीद एवं वितरण को प्रोत्साहित करने वाला होगा।

भारतीय आहार में दालें प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं। व्यक्ति की आय का दालों पर खर्च बढ़ने के बावजूद शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के सभी आय वर्गों में दालों के उपभोग में गिरावट आई है। सर्वेक्षण

में पाया गया कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के आय समूहों में दालों के उपभोग में लगभग तीन गुना अन्तर है। यह पिछले कुछ वर्षों में दालों की कीमतों में भारी वृद्धि के कारण हो सकता है। एन0एन0एम0बी0 के सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि दालों का उपभोग सदैव ही दैनिक अनुशंसित मात्रा से कम रहा है जो वर्ष प्रति वर्ष और कम होता जा रहा है। निम्न आय वर्ग में प्रोटीन के उचित उपभोग को सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि दालों की विविध प्रजातियों की खेती में निवेश बढ़ाया जाए। दालों को भी सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से रियायती मूल्यों पर उपलब्ध करा कर इनका उपभोग बढ़ाया जा सकता है।

गत वर्षों में दूध एवं दूध से बने उत्पादनों के उपभोग में कोई विशेष परिवर्तन नहीं देखा गया है। ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में दूध का उपभोग करने वाले परिवारों का प्रतिशत बढ़ा है। अंडे, मछली, माँस/मटन और चिकन का उपभोग ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक है। अंडों का आहार में उपभोग पिछले दस वर्षों में बढ़ा है।

भारत में तेल के उपभोग में वृद्धि देखी गयी है। खाद्य तेल के प्रति व्यक्ति उपभोग में ग्रामीण क्षेत्रों में 30 प्रतिशत एवं शहरी क्षेत्रों में 18 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है। दोनों क्षेत्रों में मूँगफली तेल, सरसों तेल, नारियल तेल एवं वनस्पति तेलों का उपभोग दोगुने से भी अधिक बढ़ा है। पारंपरिक रूप से प्रयोग किये जाने वाले तेल जैसे तिल, सरसों, मूँगफली, नारियल के साथ नए तेल जैसे सूरजमूखी तेल, सोयाबीन का तेल, चावल की भूसी का तेल आदि का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है।

फलों के उपभोग में पिछले दस वर्षों में कोई परिवर्तन नहीं देखा गया है। शहरी क्षेत्रों में फलों का उपभोग, ग्रामीण क्षेत्रों से अधिक पाया गया है। सब्जियों के उपभोग में वृद्धि देखी गयी है। भारत में अन्य सब्जियों की अपेक्षा आलू का उपभोग सबसे अधिक किया जाता है। शहरी क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में आलू का उपभोग ज्यादा है। शहरी क्षेत्रों में अन्य सब्जियों का प्रयोग आलू की अपेक्षा ज्यादा किया जाता है।

चीनी के उपभोग में भी वृद्धि देखी गई है। मधुमेह के प्रति जागरुक होने के बावजूद चीनी एवं चीनी से बनी मिठाईयों एवं अन्य उत्पादों का उपभोग गत वर्षों में बढ़ा है।

यह तथ्य व्यापक रूप से स्वीकार्य है कि भारत में पिछले 30 वर्षों में दैनिक आहार पद्धति में कई बदलाव आए हैं, विशेषकर अनाज के उपभोग के संदर्भ में। अनाज की खपत में मोटे अनाजों की कमी देखी गई है। चावल और गेहूँ के संदर्भ में प्रति व्यक्ति उत्पादन में लगातार वृद्धि हुई है लेकिन आयात प्रतिस्थापन तथा स्टॉक संवर्धन के कारण खपत की उपलब्धता में बढ़ोत्तरी उत्पादन से कम हो हुई है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. भारत में अनाजों एवं दालों के उपभोग स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।

....

....

2. भारत में दूध, फल, सब्जियों के उपभोग का स्वरूप क्या है?

....

....

अब हम खाद्य बैलेंस शीट पर चर्चा करेंगे।

7.4 खाद्य बैलेंस शीट

खाद्य बैलेंस शीट से किसी देश के खाद्य आपूर्ति स्वरूप की एक संक्षिप्त चित्र का ज्ञान होता है। प्रत्येक भोजन मद के लिए यह उसके आपूर्ति के स्रोतों एवं उसके पोषक मूल्यों के सन्दर्भ में आंकड़े प्रदान करती है।

"एक खाद्य बैलेंस शीट, एक विशेष समय अवधि के दौरान, किसी चयनित देश की खाद्य आपूर्ति का एक व्यापक संकलन है"।

खाद्य बैलेंस शीट से मानव उपभोग के लिए खाद्य पदार्थों के बारे में पता चलता है, साथ-साथ यह कि उस खाद्य पदार्थ का उत्पादन कैसे किया गया है, उसका प्रयोग, आयात-निर्यात एवं वह खाद्य पदार्थ समाज को कैसे लाभ पहुँचाता है या उसकी प्रति व्यक्ति आपूर्ति क्या है, इत्यादि। खाद्य बैलेंस शीट तैयार करने का पहला प्रयास प्रथम विश्व युद्ध के समय किया गया था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान खाद्य बैलेंस शीट के प्रयोग में और वृद्धि हुई। युद्ध के बाद विश्व भर में भोजन की कमी को दूर करने के लिए खाद्य आवंटन और वितरण की समस्या से निपटने के लिए खाद्य बैलेंस शीट ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके पश्चात् धीरे-धीरे ज्यादातर देशों ने स्वयं की खाद्य बैलेंस शीट बनाना शुरु किया।

खाद्य बैलेंस शीट तीन घटकों के माध्यम से देश की खाद्य प्रणाली पर आवश्यक जानकारी प्रदान करती है:

- घरेलू खाद्य आपूर्ति के सन्दर्भ में उत्पादन, आयात एवं अंशभाग परिवर्तन।
- घरेलू खाद्य उपयोग जिसमें चारा, बीज, प्रसंस्करण, अपशिष्ट, निर्यात एवं अन्य उपयोग शामिल हैं।
- सभी खाद्य वस्तुओं की प्रति व्यक्ति आपूर्ति (प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष किलोग्राम में)। इसी के अन्तर्गत ऊर्जा, प्रोटीन एवं वसा की आपूर्ति भी शामिल है।

वार्षिक खाद्य बैलेंस शीट समग्र राष्ट्रीय खाद्य आपूर्ति की प्रवृत्ति को दर्शाती हैं। इससे भोजन प्रकार में परिवर्तन स्पष्ट होता है एवं यह पता चलता है कि देश की खाद्य आपूर्ति, पोषण संबंधी आवश्यकताओं के संबंध में कितनी उचित है। खाद्य बैलेंस शीट अन्य प्रासंगिक सांख्यिकी आंकड़े

भी उपलब्ध कराती है जिनका प्रयोग देशों में भुखमरी को कम करने के लिए नीतियाँ बनाने में किया जाता है। खाद्य बैलेंस शीट में किसी एक देश/प्रदेश/संभाग में भोज्य पदार्थों की कुल मात्रा (उत्पादित एवं उपलब्ध) को एकत्र किया जाता है। अलग-अलग स्रोतों से एक निश्चित अवधि तक साल में जितनी बार भोज्य पदार्थ (उदाहरण-गेहूँ) उत्पादित हुआ है, उसका लेखा प्राप्त किया जाता है। भोज्य पदार्थ की उत्पादित कुल मात्रा में से जितनी मात्रा जानवरों के चारे में उपयोग में लाई गई, निर्यात की गई, बीज के रूप में संग्रहित की गई तथा संग्रहण/परिवहन या वितरण में नष्ट हुई, उस मात्रा का पूरा विवरण भी एकत्र किया जाता है।

सांख्यिकी के आधार पर उक्त भोज्य पदार्थ की प्रति इकाई प्रतिदिन उपलब्ध मात्रा की गणना की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र उपयोग में लाया जाता है:

$$\frac{\text{प्रति इकाई प्रतिदिन}}{\text{उपलब्ध मात्रा (ग्राम में)}} = \frac{\text{कुल उपलब्ध मात्रा} - \left[\dfrac{\text{मनुष्य के अलावा}}{\text{अन्य साधनों में प्रयुक्त मात्रा}}\right]}{\text{जनसंख्या} \times 365}$$

कुल उपलब्ध मात्रा = पूर्व वर्ष की शेष मात्रा + चालू वर्ष की उत्पादित कुल मात्रा + आयातीत मात्रा

मनुष्य के अलावा अन्य साधनों में प्रयुक्त मात्रा = वर्ष के अन्त में शेष मात्रा + निर्यात की गई मात्रा + बीज हेतु रखी गई मात्रा + पशु चारा की मात्रा + संग्रहण में नष्ट हुयी मात्रा

खाद्य बैलेंस शीट विधि के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त अवधि में संबंधित स्थान के मनुष्यों को उपयोग हेतु भोज्य पदार्थ विशेष की कितनी मात्रा उपलब्ध है। यह विधि कुछ योजनाओं को लागू करने एवं उन पर नियन्त्रण रखने हेतु प्रभावशाली है। उत्पादन नष्ट होने जैसी आपात स्थितियों पर नियंत्रण करने के लिए भी उक्त विधि उपयोगी है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. खाद्य बैलेंस शीट क्या होती है?

   ....

   ....

2. भोज्य पदार्थ की प्रति इकाई प्रतिदिन उपलब्ध मात्रा की गणना कैसे की जाती है?

....

....

3. खाद्य बैलेंस शीट का क्या उपयोग है?

....

....

7.5 सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System)

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पी0डी0एस0) का विकास

उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के अंतर्गत भारत सरकार द्वारा स्थापित भारतीय खाद्य सुरक्षा प्रणाली गरीब परिवारों को कम मूल्य पर खाद्य एवं गैर-खाद्य वस्तुएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से स्थापित की गई। इस योजना की शुरुआत पहली बार फरवरी 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई और वर्तमान रूप यह योजना में जून 1947 में शुरु की गई थी। देश भर में कई राज्यों में स्थापित उचित मूल्य की दुकानों जिन्हें राशन की दुकानों के रूप में भी जाना जाता है, के माध्यम से इस प्रणाली को स्थापित किया गया जिनके माध्यम से प्रमुख खाद्य पदार्थों जैसे गेहूँ, चावल, चीनी तथा मिट्टी के तेल को वितरित किया गया। सरकारी स्वामित्व वाला भारतीय खाद्य निगम, सार्वजनिक वितरण प्रणाली की खरीद और रखरखाव का कार्य करता है। समाज के सभी वर्गों के लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिहाज से सार्वजनिक वितरण प्रणाली सरकार द्वारा चलायी जा रही सबसे बड़ी योजना है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पृष्ठभूमि

हरित क्रान्ति के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय कृषि उत्पादकता में वृद्धि के उपरान्त 1970 एवं 1980 के दशक में गरीबी प्रभावी क्षेत्रों एवं जनजातीय भागों तक सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार हुआ। जून, 1992 में पूरे देश के 1775 भागों में पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली शुरु की गई। पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली 1992 में बिना किसी विनिर्दिष्टा लक्ष्य के साथ सभी उपभोक्ताओं के लिए एक सामान्य हकदारी योजना के रूप में शुरु की गई थी। पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सशक्त एवं कारगर बनाने के आशय से शुरु की गई थी। दूर-दराज, पर्वतीय एवं अगम्य क्षेत्रों तक पुनर्गठित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की पहुँच महत्वपूर्ण थी।

जून, 1997 से **लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Targeted Public Distribution System/ टी0पी0डी0एस0)** की शुरुआत हुई। भारत सरकार ने समुदाय में गरीबों को ध्यान में रखकर लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरुआत की थी। सरकार द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से खाद्यान्नों के मूल्यों में बढ़ोतरी पर नियंत्रण में योगदान एवं शहरी उपभोक्ताओं

तक अन्न पहुँचाना सुनिश्चित किया गया। पिछले कई वर्षों से सार्वजनिक वितरण प्रणाली देश में अन्न अर्थव्यवस्था के प्रबन्धन के लिए सरकार की नीतियों का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई है।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टी0पी0डी0एस0) भारत सरकार की अत्यन्त महत्वपूर्ण योजनाओं में से एक है। उपभोक्ता मामले तथा खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन यह योजना देश में 6 करोड़ 50 लाख निर्धन परिवारों को कवर करती है। 5 लाख उचित दर की दुकानों के नेटवर्क सहित लक्षित सार्वजनिक वितण प्रणाली विश्वि में अपने किस्म का सार्वजनिक खाद्य वितरण का सबसे बड़ा नेटवर्क है। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अधीन गरीबी रेखा से नीचे के परिवार सब्सिडी प्राप्त दरों पर चावल, गेहूँ, चीनी तथा कैरोसीन की निर्धारित मात्रा प्राप्त करते हैं। इन वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ राज्य नमक, दालें तथा प्रसंस्कृत वस्तुएं जैसे गेहूँ का आटा भी प्रदान करते हैं। इन वस्तुओं को उचित दर की दुकानों (Fair price shops) के नेटवर्क द्वारा वितरित किया जाता है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) के मुख्य वितरण केन्द्र तक खाद्यान्न को पहुंचाने और उसके उपार्जन का जिम्मा केन्द्र सरकार का है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की पहचान करना, राशन कार्ड के वितरण की व्यवस्था करना तथा समाज के कमजोर वर्ग को उचित मूल्य की दुकानों के माध्यम से खाद्यान्न प्रदान कराने का जिम्मा राज्य सरकारों का है।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रमुख रूप से निम्न उद्धेश्य हैं:

- आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
- आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों को स्थिर रखना।
- कुछ मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करना।

टी0पी0डी0एस0 का लक्ष्य गरीब परिवारों की पहचान करना और उन्हें तय खाद्यान्न अनुदानित मूल्य पर प्रदान कराना है। टी0पी0डी0एस0 के अन्तर्गत निर्धनतर और निर्धनतम परिवारों को अत्यंत रियायती मूल्य पर खाद्यान्न प्रदान कराया जाता है। गरीबी रेखा से ऊपर रहने वाले परिवारों को भी टी0पी0डी0एस0 के अंतर्गत खाद्यान्न उपलब्ध कराया जाता है लेकिन इसके मूल्य पर अनुदान कम होता है। लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को अधिक केंद्रित तथा गरीब आबादी के अत्यंत गरीब वर्ग तक पहुंचने के लिए "अन्त्योदय अन्न योजना" (ए0ए0वाई) को दिसंबर, 2000 में शुरु किया गया। अन्त्योदय अन्न योजना, राज्यों में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत आने वाले बीपीएल परिवारों में से अत्यंत गरीब परिवारों की पहचान करके अत्यधिक रियायती दर पर यानी 2 रू0 प्रति किलो गेहूँ और 3 रू0 प्रति किलो चावल उपलब्ध कराती है। वितरण लागत, व्यापारियों तथा खुदरा विक्रेताओं का लाभ और परिवहन लागत राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को वहन करना पड़ता

है। अत: इस योजना के अंतर्गत पूरी खाद्य सब्सिडी उपभोक्ताओं को मिलती है। अन्त्योदय परिवारों की पहचान और ऐसे परिवारों को विशिष्ट राशन कार्ड जारी करना संबंधित राज्य सरकारों की जिम्मेदारी होती है। इस योजना के अन्तर्गत आवंटन के लिए खाद्यान्न, पहचाने गए अन्त्योदय परिवारों को विशिष्ट अन्त्योदय अन्न योजना राशन कार्ड जारी करने के आधार पर राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को जारी किए जाते हैं। ए0ए0वाई0 के अंतर्गत 31 दिसंबर, 2012 तक मासिक आवंटन लगभग 8.51 लाख टन था। इस योजना के अंतर्गत शुरुआत में खाद्यान्न का आवंटन 25 किलो प्रति परिवार प्रति महीना था जिसे अप्रैल, 2002 से 35 किलो प्रति परिवार प्रति महीना तक बढ़ा दिया गया। अन्त्योदय अन्न योजना गरीबी रेखा के नीचे के परिवारों की पहचान कर 1 करोड़ परिवारों के लिए शुरु की गई थी। इस योजना के अंतर्गत राशि को तीन बार यानी 2003-04, 2004-05 और 2005-06 के दौरान हर बार अतिरिक्त 50 लाख परिवारों के लिए बढ़ाया गया। इस प्रकार ए0ए0वाई0 के अंतर्गत कुल 2.50 करोड़ परिवारों (अर्थात बीपीएल का 38 प्रतिशत) तक पहुंचाया गया।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एन0एफ0एस0ए0) वर्ष 2013 में लागू किया गया तथा मई, 2014 तक यह केवल 11 राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में लागू किया जा रहा था। वर्ष 2016 में सरकार द्वारा इसके क्रियान्वयन पर विशेष बल दिया गया जिसमें शेष राज्यों/ संघ शासित प्रदेशों में इस अधिनियम के कार्यान्वयन में तेजी लाने के लिए बैठकों, सम्मेलनों, वीडियो सम्मेलनों, पत्राचार, यात्रा आदि के माध्यम से निरंतर प्रयास किया गया। इन प्रयासों के नतीजतन 13 और राज्य/संघ शासित प्रदेश इस अधिनियम में सम्मिलित हुए तथा अब इस अधिनियम को सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में कार्यान्वित किया जा रहा है। वर्तमान में इस अधिनियम में लगभग 80 करोड़ व्यक्ति सम्मिलित हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत निर्दिष्ट खाद्यान्नों की कीमत निम्न प्रकार है:

चावल के लिए प्रति किलोग्राम 3 रुपये, गेहूँ के लिए प्रति किलोग्राम 2 रुपये तथा मोटे अनाजों के लिए प्रति किलोग्राम 1 रुपया, जो जुलाई, 2016 तक वैध थे तथा जिन्हें मार्च, 2017 तक जारी रखा गया। इस प्रकार केन्द्र सरकार देश में लगभग 80 करोड़ लाभार्थियों को अत्यधिक रियायती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध करा रही है।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली में मुख्य सुधार

वर्ष 2016-17 के दौरान लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली तथा अन्य कल्याण योजनाओं के अंतर्गत राज्यों/संघ शासित प्रदेशों को 83 लाख मीट्रिक टन खाद्यान्नों का आवंटन किया गया। निरंतर प्रयासों से टी0पी0डी0एस0 में महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं जो इसे अधिक पारदर्शी तथा खाद्य

सब्सिडी हेतु बेहतर लक्ष्यीकृत बनाते हैं। इन उद्देश्यों हेतु महत्वपूर्ण घटकों में प्रमुख सुधार के बिंदु निम्न प्रकार हैं:

तालिका 7.1: लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के घटकों में मुख्य सुधार

	मई, 2014	**दिसंबर, 2016 (27.12.2016 तक)**
स्वचालित उचित मूल्य की दुकानें	5,835	1,77,391
राशन कार्ड का डिजिटलीकरण	75%	100%
राशन कार्ड को आधार से जोड़ना	2%	71.96%
खाद्यान्नों के ऑनलाइन आवंटन की शुरुआत	9 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश	29 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश
कम्प्यूटरीकृत आपूर्ति श्रृंखला	4 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश	19 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश
टोल फ्री नंबर / ऑनलाइन शिकायत निवारण प्रणाली का कार्यान्वयन	25 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश	36 राज्य /केंद्र शासित प्रदेश
सार्वजनिक वितरण प्रणाली में प्रत्यक्ष नकद स्थानांतरण की शुरुआत	शून्य	3 केंद्र शासित प्रदेश

3 केंद्र शासित प्रदेशों (चंडीगढ़, पुंडुचेरी एवं दादरा और नगर हवेली) में खाद्यान्नों हेतु प्रत्यक्ष नकद स्थानांतरण की शुरुआत प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (डी0बी0टी0) योजना के अंतर्गत की गई। यह योजना 1 जनवरी, 2013 को भारत सरकार द्वारा शुरु की गई जो सरकार का सब्सिडी के हस्तांतरण की व्यवस्था को बदलने का एक प्रयास है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों को उनके बैंक खातों के माध्यम से सीधे सब्सिडी हस्तांतरण करना है। बैंक खातों में सीधे सब्सिडी के हस्तांतरण से यह उम्मीद की गई कि इस प्रकार पूर्ण लाभ न मिल पाना तथा लाभों में देरी जैसी समस्याओं को सीधे तौर पर दूर किया जा सकेगा।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की कमियां

विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि टी0पी0डी0एस0 में कुछ कमियां हैं, जैसे

- निर्धनतम परिवारों की पहचान ठीक तरीके से नहीं हो पाना।
- उचित मूल्य की दुकानों का प्रभावशाली न होना।
- खाद्यान्न के दामों में स्थिरता न ला पाना।
- टी0पी0डी0एस0 के अन्तर्गत प्रदान किए जाने वाले खाद्यान्न को लाभार्थियों तक पहुंचाने के क्रम में उसका कुछ हिस्सा दूसरे हाथों में चला जाता है।

- वितरण प्रणाली का पारदर्शी न होना।
- खाद्यान्नों की निम्न गुणवत्ता।

लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुदृढ़ करने के उपाय

1. जिलाधिकारी/जिलापूर्ति अधिकारी को जाली राशन कार्ड समाप्त करने के लिए गरीबी रेखा से नीचे/अन्त्योदय अन्न योजना सूचियों की समीक्षा करने के लिए सतत् अभियान आरम्भ करने चाहिए।
2. खाद्यान्नों के त्रुटि मुक्त वितरण को सुनिश्चित करने के लिए दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए।
3. लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के कार्यान्वयन में पारदर्शिता के लिए, अन्त्योदय अन्न योजना परिवारों की पहचान करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं/स्थानीय नगर पालिका निकायों के चुने हुए सदस्यों, सतर्कता समितियों की सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
4. जहाँ तक सम्भव हो उचित दर की दुकानों के लाइसेन्स/अनुबन्ध स्वयं सेवी समूहों, ग्राम पंचायतों, सहकारी समितियों आदि को दिए जाने चाहिए।
5. गरीबी रेखा से नीचे/अन्त्योदय अन्न योजना और गरीबी रेखा से ऊपर के परिवारों की सूचियां सभी उचित दर की दुकानों पर प्रदर्शित की जाएं।
6. खाद्यान्न के जिलावार तथा उचित दर दुकानदार आवंटन, जनता की समीक्षा के लिए वेबसाइटों पर डाले जाने चाहिए तथा अन्य प्रमुख स्थानों पर भी लगाए जाने चाहिए।
7. जहाँ तक सम्भव हो राज्यों की उचित दर की दुकानों को खाद्यान्नों का वितरण उनके द्वार पर ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
8. प्रत्येक माह समय पर उचित दर दुकानों पर खाद्यान्नों की उपलब्धता तथा राशन-कार्ड धारियों को उनका वितरण सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
9. उचित दर की दुकानों की निगरानी के लिए उपयुक्त प्रणाली सुनिश्चित की जानी चाहिए।
10. उचित दर की दुकानों के स्तरीय सतर्कता समिति के सदस्यों को प्रशिक्षण देना सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
11. लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली प्रचालनों का सम्पूर्ण कम्प्यूटरीकरण किया जाना चाहिए।
12. भारतीय खाद्य निगम द्वारा निधियों का इलेक्ट्रॉनिक अन्तरण सुचारु किया जाना चाहिए।
13. भारतीय खाद्य निगम के गोदामों से उचित दर की दुकानों तक खाद्यान्नों के संचलन पर नजर रखने के प्रबन्ध किए जाने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली की स्थापना कब हुई थी?

....

....

2. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत निर्दिष्ट खाद्यान्नों की कीमतें क्या हैं?

....

....

7.6 भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India)

भारत सरकार द्वारा इस सार्वजनिक उपक्रम की स्थापना 14 जनवरी, 1965 में की गयी थी। इस निगम के जिला कार्यालय की स्थापना तमिलनाडु के तंजावुर में की गई तथा मुख्यालय चेन्नई में स्थापित हुआ जिसे बाद में दिल्ली में स्थानांतरित किया गया। यह देश में खाद्यान्न के भण्डारण और वितरण से जुड़ा एक महत्वपूर्ण घटक है। भारतीय खाद्य निगम (एफसीआई) द्वारा देश में सरकार द्वारा प्राप्त खाद्यान्नों तथा आवश्यक खाद्य वस्तुओं का सुरक्षित भण्डारण किया जाता है। इस निगम की स्थापना खाद्य निगम अधिनियम 1964 के अंतर्गत राष्ट्रीय खाद्य नीति के निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करने हेतु हुई थी:

- किसानों के हितों को सुरक्षित रखने के लिए उन्हें फसल का लाभकारी मूल्य उपलब्ध कराना।
- उचित मूल्यों पर खाद्यान्न उपलब्ध कराना, विशेष रूप से समाज के कमजोर वर्ग को।
- सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत देशभर में खाद्यान्नों का उचित वितरण सुनिश्चित करना।
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए खाद्यान्नों के प्रचालन तथा बफर स्टॉक के संतोषजनक स्तर को बनाए रखना।
- मूल्य स्थिरिता के लिए बाजार में हस्तक्षेप करना।

राष्ट्र सेवा में अपनी 50 वर्षों से अधिक की समयावधि के दौरान, भारतीय खाद्य निगम ने आपदा प्रबंधन-मुखी खाद्य व्यवस्था को स्थिर सुरक्षा प्रणाली में सफलतापूर्वक रूपांतरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय खाद्य निगम भारत सरकार की एक केन्द्रीय एजेन्सी है, जो अन्य राज्य एजेन्सियों के साथ मिलकर मूल्य समर्थन योजना के अधीन गेहूँ, धान तथा मोटे अनाजों की अधिप्राप्ति करता है तथा सांविधिक लेवी योजना (Statutory levy scheme) के अधीन चावल की अधिप्राप्ति करता है। मूल्य समर्थन के अंतर्गत अधिप्राप्ति मुख्यतः किसानों को उनकी फसल का लाभकारी मूल्य सुनिश्चित करने के लिए की जाती है ताकि वे बेहतर फसल उत्पादन के लिए प्रोत्साहित हो सकें। एफसीआई के पास 2017 में उपलब्ध कुल प्रभावी भण्डारण क्षमता 343.73 लाख मिलियन टन थी।

भारतीय खाद्य निगम के कार्य

भारतीय खाद्य निगम के कार्यों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

- देश के सभी जिलों अपने खाद्य गोदामों (Warehouses) की व्यवस्था करना।
- देश में खाद्यान्नों का "बफर स्टॉक (Buffer stock) का भण्डारण। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्यान्न के संचालन और बफर स्टॉक के संतोषजनक स्तर को बनाए रखना।
- सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्यों (Minimum Support Prices) पर लिए जाने वाले खाद्यान्नों की प्राप्ति।
- सरकार द्वारा चलायी जा रही सार्वजनिक वितरण प्रणाली (Public Distribution System) के अंतर्गत खाद्यान्नों की जिला स्तरीय आपूर्ति।
- किसी क्षेत्र विशेष में गेहूँ या चावल के मूल्य यदि खुले बाजार में किसी कारणवश बढ़ते हैं, तो भारतीय खाद्य निगम स्वयं के भण्डारित खाद्यान्नों द्वारा सम्बन्धित बाजार में थोक स्तर (Wholesale) पर आपूर्ति कर (सरकार की सलाह पर) खाद्यान्नों के मूल्यों को स्थिरीकृत करने की कोशिश करता है। इस तरह की मुक्त बिक्री (Open sale) द्वारा भारतीय खाद्य निगम आहार में मूल्य स्थिरीकरण (Price stabilization) की भूमिका निभाता है।
- खाद्यान्नों का निर्गम (issue) करने से प्राप्त धन निगम द्वारा ही प्राप्त किया जाता है, साथ ही खाद्यान्नों की आर्थिक लागत (Economic cost) का वहन भी खाद्य निगम के द्वारा ही किया जाता है। इसके अन्तर्गत खाद्यान्नों की खरीद, उनकी ढुलाई, भण्डारण, क्षय इत्यादि पर होने वाले व्यय को जोड़ा जाता है।

भण्डारण प्रबंधन

निगम के विविध कार्यकलापों का महत्वपूर्ण पहलू इसके द्वारा अधिप्राप्त मिलियन टनों खाद्यान्न के लिए उचित भण्डारण का प्रावधान करना है। अभावग्रस्त, दूर-दराज और दुर्गम क्षेत्रों में आसान वास्तविक पहुंच मुहैया कराने के लिए भारतीय खाद्य निगम के पास अखिल भारतीय स्तर पर भण्डारण डिपो का तंत्र है। इनमें साइलो, गोदाम और भारतीय खाद्य निगम द्वारा विकसित स्वदेशी पद्धति वाले कवर और प्लिंथ कैप कहे जाने वाले डिपो (CAP) सम्मिलित हैं। कैप भण्डारण का अर्थ है पर्याप्त रोकथाम जैसे कि रॉट एंड डैम्प प्रूफ प्लिंथ, ड्रेनेज का प्रयोग और विशेष रूप से बने पॉलीथीन कवर आदि सहित चट्टों की कवरिंग सहित खुले में खाद्यान्न भण्डारण। भारतीय खाद्य निगम के पास अखिल भारतीय स्तर पर 1451 गोदामों से भी ज्यादा में 24.18 मिलियन टन स्वयं और किराए की भण्डारण क्षमता उपलब्ध है।

7.7 भारत में खाद्यान्न उत्पादन

भारतीय कृषि ने पिछले 50-60 वर्षों में शानदार उपलब्धि हासिल की है। 1950 में जो खाद्यान्न उत्पादन 50 मिलियन टन था वो 2016-2017 में बढ़कर 275 मिलियन टन हो गया। भारतीय कृषि

की मानसून वर्षाओं (जून से सितम्बर) पर अधिक निर्भरता के बावजूद, विगत पांच वर्षों में खाद्य और अन्य फसलों के उत्पादन में पर्याप्त उछाल आया है। वर्ष 2016 में मानसून के दौरान बहुत अच्छी वर्षा और सरकार द्वारा उठाए गए विभिन्न नीतिगत पहलों के परिणामस्वरूप देश में वर्ष 2016-17 में रिकॉर्ड खाद्यान्न उत्पादन देखा गया।

चावल

चावल क्षेत्र, उत्पादन और उपभोक्ता प्राथमिकता के विषय की दृष्टि से भारत की एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल है। भारत में चावल का उत्पादन कुल वैश्विक उत्पादन का 22.3% भाग है। भारत विश्व में चावल का दूसरा सर्वाधिक उत्पादक एवं उपभोक्ता है। विभिन्न पहलों के परिणामस्वरूप जैसे बेहतर फसल किस्मों को प्रारंभ करना, आदानों, सिंचाई और मूल्य समर्थन का गहन प्रयोग सरकार द्वारा चलाए गए अधिप्राप्ति प्रचालन से चावल का उत्पादन वर्ष 2016-17 में 109.70 मिलियन टन के रिकॉर्ड स्तर पर पहुँचा। यह स्तर 2015-16 में 104.41 मिलियन टन था।

गेहूँ

विगत वर्षों से सिंचाई सुविधाओं के क्षेत्र में वृद्धि, बीज उपचार, बेहतर किस्मों, रतुआ प्रबंधन और आवधिक ताप दबाव से बचने के लिए बिजाई के इष्टतम समय प्रबंधन के कारण गेहूँ के उत्पादन में वृद्धि हुई है। गेहूँ का उत्पादन जो वर्ष 2015-16 में 92.29 मिलियन टन था वह वर्ष 2016-17 में 98.51 मिलियन टन हुआ। गेहूँ की उत्पादकता में मुख्य वृद्धि हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश राज्यों में देखी गई है।

मोटे अनाज

मोटे अनाजों में ज्वार, बाजरा, रागी, अन्य छोटे कदन्न (कुटकी, सांवा, फॉक्सटेल) और मक्का हैं, जो भारत में परम्परागत रूप से निम्न आय वर्ग के आहार का मुख्य भाग हैं। ये फसलें मुख्य रूप से कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और गुजरात के वर्षा सिंचित क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। मोटे अनाजों का कुल उत्पादन 2015-16 में 38.52 मिलियन टन था, 2016-17 में 43.77 मिलियन टन के अब तक के सर्वाधिक स्तर तक बढ़ा। मोटे अनाजों के अंतर्गत क्षेत्र की औसत वार्षिक वृद्धि दर 1990 के दशक की तुलना में निरंतर नकारात्मक रही है, हालांकि पिछले दशक में गिरावट धीमी रही।

मक्का मोटे अनाजों के उत्पादन से आधे से थोड़ा अधिक का लेखा जोखा देते हुए प्रमुख मोटा अनाज है। मक्का के उत्पादन को बढ़ावा देने के विषय में, एकीकृत तिलहन, दलहन, पाम आयल एवं मक्का स्कीम (आइसोपाम) की एक उप-स्कीम त्वरित मक्का विकास कार्यक्रम (एएमडीपी) 2004 से कार्यान्वयनाधीन है। मक्का का कुल उत्पादन 2015-16 में 22.57 मिलियन टन था, 2016-17 में 25.90 मिलियन टन के अब तक के सर्वाधिक स्तर तक बढ़ा।

दलहन

प्रोटीन से समृद्ध होने के कारण दलहन न केवल मनुष्य के आहार का प्रमुख अंग है बल्कि आहारीय प्रोटीन के संतुलन में भी प्रमुख भूमिका निभाता है। भारत विश्व में दलहन उत्पादन और खपत में पहला स्थान रखता है। भारत की महत्वपूर्ण दलहन फसलें हैं चना, अरहर, उड़द, मूंग, मसूर। भारत के प्रमुख दलहन उत्पादक राज्य मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और आन्ध्र प्रदेश हैं। कुल दलहन उत्पादन में 2015-16 के 16.35 मिलियन टन से 2016-17 में 23.13 मिलियन टन की रिकॉर्ड स्तर की वृद्धि दर्ज की गयी जो अब तक का सबसे अधिक उत्पादन है। दलहन की खेती अधिकांश (85% क्षेत्र) संसाधन रहित किसानों द्वारा कम उपजाऊ मृदा पर, सीमांत भूमि पर, वर्षा सिंचित परिस्थितियों के अंतर्गत की जाती है। उच्च पैदावार किस्मों की गैर-उपलब्धता, निम्न बीज प्रतिस्थापन दर, कीटों के लिए उच्च संवेदनशीलता, अपर्याप्त मण्डी सम्पर्क दलहन के कम पैदावार के लिए प्राथमिक कारण हैं।

दलहन उत्पादन में अपनाई जाने वाली सर्वोत्तम प्रणालियाँ:

- प्रमाणित बीजों का वितरण
- समेकित पोषक तत्व प्रबंधन
- समेकित कीट प्रबंधन
- नवीन उत्पादन तथा संरक्षण प्रौद्योगिकियों पर प्रदर्शन क्षमता सृजन (किसानों के लिए प्रशिक्षण)

तिलहन

अधिक आयात के परिणामस्वरूप खाद्य तेलों की खपत घरेलू उत्पादन को पीछे छोड़ते हुए, निरंतर रूप से बढ़ती जा रही है। वर्ष 2016-17 के दौरान सभी तिलहनों (मूँगफली, अरंडी तेल, तिल, रामतिल, रेपसीड और सरसों, अलसी, कुसुम्भ, सूरजमुखी, सोयाबीन) का कुल उत्पादन 312.76 लाख टन था, जो कि 2015-16 में रिकॉर्ड किए गए 252.51 लाख टन से बहुत अधिक है। पूरे देश में सीमांत भूमि पर लगभग 26 मिलियन हैक्टेयर क्षेत्र में तिलहन की खेती की जाती है, जो वर्षा पर निर्भर है, लगभग 72 प्रतिशत तिलहन उत्पादन क्षेत्र निम्न स्तर वर्षा से सिंचित है। तिलहन के बेहतर उत्पादन को समर्थन देने हेतु नवीन उत्पादन प्रौद्योगिकियों, बेहतर आदान आपूर्ति तथा विपणन हेतु विस्तार सेवा समर्थन, कटाई-उपरान्त प्रौद्योगिकी को शामिल करते हुए समेकित कार्यक्रम को अपनाया गया है।

गन्ना

गन्ना भारत की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नकदी फसलों में एक है जिसकी उप कटिबंधीय तथा कटिबंधीय क्षेत्रों में व्यापक रूप से खेती की जाती है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, गुजरात, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा के कटिबंधीय क्षेत्रों तथा मध्य प्रदेश के कुछ हिस्सों में गन्ने की खेती की जाती है जो कुल क्षेत्र का लगभग 45 प्रतिशत है। कटिबंधीय क्षेत्र जिसमें उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, हरियाणा,

पंजाब, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा उत्तर-पूर्वी राज्य शामिल हैं, का उत्पादन देश में कुल गन्ना उत्पादन का लगभग 55 प्रतिशत है तथा लगभग 56 टन प्रति हैक्टेयर की औसत उत्पादकता के साथ उत्पादन कुल गन्ना उत्पादन का लगभग 45 प्रतिशत है। गन्ने का योगदान फसल क्षेत्र के उपज का लगभग 4.4 प्रतिशत मूल्य का है तथा इसकी खेती भारत के कुल फसलित क्षेत्र के लगभग 2.4 प्रतिशत में की जाती है। भारत में गन्ने की खेती लगभग 5 मिलियन हैक्टेयर में की जाती है तथा चीनी के उत्पादन में ब्राजील के पश्चात भारत का दूसरा स्थान है। वर्ष 2015-16 के दौरान गन्ने का कुल उत्पादन 3484.48 लाख टन था तथा 2016-17 के दौरान इसका उत्पादन 3060.69 लाख टन हुआ।

तालिका 7.2: कृषि सांख्यिकी प्रभाग, अर्थ एवं सांख्यिकी निदेशालय, कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग द्वारा दिए गए वर्ष 2017-18 के लिए वाणिज्यिक फसलों के उत्पादन का दूसरा अग्रिम अनुमान

फसल		**2017-18**	
		लक्ष्य (मिलियन टन)	**दूसरा अग्रिम अनुमान** (मिलियन टन)
चावल	खरीफ	94.50	96.48
	रबी	14.00	14.53
	कुल	108.50	111.01
गेहूँ	रबी	97.50	97.11
मोटे अनाज	खरीफ	33.75	33.15
	रबी	11.90	12.27
	कुल	45.65	45.42
कुल दलहन	खरीफ	8.75	8.83
	रबी	14.15	15.11
	कुल	22.90	23.95
कुल खाद्यान्न	खरीफ	137.00	138.46
	रबी	137.55	139.02
	कुल	274.55	277.49
कुल तिलहन	खरीफ	254.00 लाख टन	203.61 लाख टन
	रबी	101.00 लाख टन	95.20 लाख टन
	कुल	355.00 लाख टन	298.82 लाख टन
गन्ना	कुल	3550.00 लाख टन	3532.26 लाख टन

तालिका 7.3: वर्ष 2015-16 के दौरान महत्वपूर्ण फसलों के तीन सबसे बड़े उत्पादक राज्य

फसल	राज्य	उत्पादन (मिलियन टन)	सम्पूर्ण भारत के उत्पादन में हिस्सेदारी का प्रतिशत
अनाज			
चावल	पश्चिम बंगाल	15.75	15.10
	उत्तर प्रदेश	12.51	11.99
	पंजाब	11.82	11.33
	सम्पूर्ण भारत	104.32	100.00
गेहूँ	उत्तर प्रदेश	26.87	28.74
	मध्य प्रदेश	17.69	18.92
	पंजाब	16.08	17.20
	सम्पूर्ण भारत	93.50	100.00
मोटा अनाज	राजस्थान	5.91	15.57
	कर्नाटक	5.70	15.04
	मध्य प्रदेश	3.83	10.09
	सम्पूर्ण भारत	37.94	100.00
दालें	मध्य प्रदेश	5.12	31.07
	राजस्थान	1.95	11.86
	महाराष्ट्र	1.41	8.56
	सम्पूर्ण भारत	16.47	100.00
कुल खाद्यान्न	उत्तर प्रदेश	44.01	17.45
	मध्य प्रदेश	30.21	11.98
	पंजाब	28.41	11.26
	सम्पूर्ण भारत	252.22	100.00
तिलहन			
मूँगफली	गुजरात	2.36	34.84
	राजस्थान	1.06	15.60
	तमिलनाडु	0.88	13.03
	सम्पूर्ण भारत	6.77	100.00
रेपसीड तथा	राजस्थान	3.27	47.93

सरसों	हरियाणा	0.81	11.80
	मध्य प्रदेश	0.70	10.26
	सम्पूर्ण भारत	6.82	100.00
सोयाबीन	मध्य प्रदेश	4.91	57.13
	महाराष्ट्र	2.10	24.46
	राजस्थान	1.00	11.63
	सम्पूर्ण भारत	8.59	100.00
सूरजमुखी	कर्नाटक	0.17	50.00
	हरियाणा	0.04	11.52
	आंध्र प्रदेश	0.02	6.97
	सम्पूर्ण भारत	0.33	100.00
कुल तिलहन	मध्य प्रदेश	6.24	24.68
	राजस्थान	5.71	22.57
	गुजरात	4.10	16.21
	सम्पूर्ण भारत	25.30	100.00
गन्ना	उत्तर प्रदेश	145.39	41.28
	महाराष्ट्र	72.26	20.52
	कर्नाटक	38.48	10.93
	सम्पूर्ण भारत	352.16	100.00

इकाई के अगले भाग में खाद्य सुरक्षा एवं समुदाय में गरीबी पर चर्चा करेंगे।

7.8 खाद्य सुरक्षा एवं गरीबी

खाद्य सुरक्षा (Food security) से तात्पर्य समाज के सभी नागरिकों के लिए सम्पूर्ण जीवन में पर्याप्त मात्रा में उचित भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित होना है। खाद्य सुरक्षा की इकाई एक देश, राज्य, गाँव या व्यक्ति कोई भी हो सकता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन के अनुसार खाद्य सुरक्षा के लिए नीतियों और प्रौद्योगिकियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि:

- संतुलित आहार तक प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक और पर्यावरणीय पहुँच हो जिसमें आवश्यक स्थूल तथा सूक्ष्म पोषक तत्व, सुरक्षित पेयजल, स्वच्छता, पर्यावरणीय शुद्धता,

प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा सम्मिलित हो ताकि वह एक स्वस्थ और उत्पादक जीवन यापन कर सके।

- खाद्य सामग्री सक्षम एवं पर्यावरण अनुकूल उत्पादन प्रौद्योगिकियों से उत्पन्न हो, जो फसलों, पशुओं, वानिकी तथा समुद्री मत्स्य के प्राकृतिक संसाधन आधार को संरक्षित रखे।

खाद्य सुरक्षा की अवधारणा विगत पचास वर्षों से परिवर्तनशील रही है। द्वितीय विश्व युद्ध के तुरन्त बाद खाद्य सुरक्षा का अर्थ आपातकालीन अनाज भंडार बनाना और बाजार में खाद्य की भौतिक उपलब्धता को सुनिश्चित करना था। साठ के दशक में हरित क्रान्ति के आरम्भ के बाद यह स्पष्ट हो गया कि घरेलू स्तर पर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्य पदार्थों तक आर्थिक पहुँच उतनी ही महत्वपूर्ण है जितना उत्पादन में वृद्धि होना। अस्सी के दशक के दौरान गरीबी और कृषि के बढ़ते असन्तुलन को देखते हुए खाद्य सुरक्षा के लिंग आयाम पर ध्यान दिया गया। वर्ष 1995 में बीजिंग में आयोजित ‘‘विश्व महिला सम्मेलन’’ में इस बात पर जोर दिया गया। इसलिए महिलाओं और अन्य संवेदनशील वर्गों के संबंध में सामाजिक सुरक्षा के सिद्धान्त को खाद्य सुरक्षा की अवधारणा से जोड़ दिया गया। सन् 1992 में पर्यावरण और विकास संबंधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के बाद खाद्य सुरक्षा में पर्यावरण संबंधी कारकों की भूमिका की समझ बढ़ी। सुरक्षित पेयजल और पर्यावरणीय शुद्धता के बिना खाद्य पदार्थों का जैविक अवशोषण दोषपूर्ण हो जाने से खाद्य की पर्यावरणीय पहुँच महत्वपूर्ण हो जाती है।

खाद्य सुरक्षा का तात्पर्य खाद्यान्नों के भंडारों को सुरक्षित रखना है ताकि आवश्यकता के अनुसार खाद्यान्नों का उपयोग किया जा सके और लोगों को भूख एवं कुपोषण जैसी आपदाओं से बचाया जा सके। विश्व विकास रिर्पोट 1986 के अनुसार **‘‘खाद्य सुरक्षा का अर्थ वह परिस्थिति है जिसमें सक्रिय स्वस्थ जीवन बिताने के लिए लोगों के पास पर्याप्त भोजन हो’’**। 1996 में विश्व खाद्य सम्मेलन में खाद्य सुरक्षा की निम्नलिखित परिभाषा पारित की गई:

‘‘खाद्य सुरक्षा (व्यक्तिगत, घरेलू, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या वैश्विक स्तर पर) तब प्राप्त की जा सकती है जब सभी लोगों को आवश्यकता के अनुसार आधारभूत पौष्टिक एवं सुरक्षित भोजन तक सदा आर्थिक एवं भौतिक पहुँच हो’’।

Food security, at the individual, national, regional and global levels is achieved when all people, at all times, have physical and economic access to fundamental safe and nutritious food to meet their dietary needs and food preferences for an active healthy life.

खाद्य सुरक्षा तीन स्तंभों पर आधारित होती है:

- **खाद्य उपलब्धता:** वह स्थिति जब भोजन या खाद्य पदार्थों की निरन्तर आधार पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता हो।
- **खाद्य पदार्थों तक पहुँच:** एक पौष्टिक आहार के लिए उपयुक्त खाद्य पदार्थों तक पहुँच के लिए पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता। इसमें आर्थिक एवं सामाजिक कारक सम्मलित होते हैं।
- **भोजन का उपयोग:** खाद्य सुरक्षा का तीसरा स्तंभ बुनियादी पोषण एवं देखभाल के आधार पर भोज्य पदार्थों का उपयोग है। इसके साथ पर्याप्त एवं स्वच्छ जल की आवश्यकता भी है।

आइए इन सभी कारकों का विस्तृत अध्ययन करें।

1. खाद्य उपलब्धता

खाद्य सुरक्षा सिर्फ खाद्य उत्पादन तक सीमित नहीं है। यह स्वस्थ, टिकाऊ भोजन प्रणाली एवं उस तक पहुँच पर आधारित है। खाद्य उपलब्धता खेती प्रणाली में सतत् उत्पादकता में सुधार से संबंधित है। इसके अंतर्गत भोज्य पदार्थों की निरन्तर उपलब्धता हेतु बेहतर प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए सक्रिय नीतियों का निर्माण सम्मलित होता है। खाद्य उपलब्धता के पहलुओं के अंतर्गत संसाधनों, खाद्य उत्पादन एवं खाद्य सन्तुलन भी सम्मलित होते हैं।

संसाधन: भोजन उपलब्धता प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों से प्रभावित होती है। वर्षा, मिट्टी की गुणवत्ता, पानी की उपलब्धता आदि प्राकृतिक संसाधनों के अंतर्गत आते हैं जबकि शिक्षा, जनसंख्या, लिंग अनुपात आदि वे मानव संसाधन हैं जो खाद्य उपलब्धता को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। उपजाऊ भूमि, सामान्य वर्षा, उपलब्ध पानी का सिंचाई के लिए उचित प्रबन्ध आदि खाद्य उपलब्धता की वृद्धि में सहायक होते हैं। इसी प्रकार अच्छी शिक्षा, नियन्त्रित जनसंख्या, उचित लिंग अनुपात भी खाद्य उपलब्धता को बढ़ाने में मदद करते हैं।

खाद्य उत्पादन: खेती के अन्तर्गत कुल भूमि क्षेत्र, उर्वरकों, कीटनाशकों, अच्छी गुणवत्ता के बीजों का प्रयोग, फसलों की अधिक ऊपज देने वाली किस्मों की खेती, फसल विविधता का प्रयोग एवं आधुनिक कृषि एवं उसके लिए उपकरणों का प्रयोग, सड़कें, परिवहन और संचार जैसी बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता एवं प्रयोग एक बड़ी सीमा तक खाद्य उत्पादन को निर्धारित करते हैं।

खाद्य सन्तुलन: खाद्य पदार्थों का आयात-निर्यात और खाद्य-भंडार की उपलब्धता खाद्य-सन्तुलन के प्राथमिक कारक हैं। खाद्यान्नों का आयात-निर्यात काफी हद तक भोजन की उपलब्धता पर निर्भर करता है। खाद्य सन्तुलन बनाये रखने के लिए सरकार खाद्य भंडार बना कर रखती है।

2. खाद्य पदार्थों तक पहुँच

खाद्य पदार्थों तक पहुँच राष्ट्र की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। घरेलू बजट का मुख्य हिस्सा खाद्य पदार्थों के लिए होता है। इसलिए रोजगार सृजन नीति, आयात-निर्यात की नीतियाँ, बुनियादी ढांचे का विकास और राष्ट्रीय खाद्य नीति आदि का प्रमुख केंद्र बिंदु खाद्य पदार्थों तक पहुँच में सुधार लाना होता है। खाद्य पदार्थों तक पहुँच राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा का एक प्रमुख कारक है। खाद्य पदार्थों तक पहुँच के प्रमुख कारक जनसंख्या, खाद्य नीति एवं राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था हैं।

जनसंख्या: जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के कारण बुनियादी सुविधाओं जैसे भोजन, स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली, कपड़ा, मकान, शिक्षा आदि में अस्थिरता बढ़ जाती है। जनसंख्या वृद्धि के कारण रोजगार, गरीबी एवं साक्षरता संबंधित समस्याएं उत्पन्न होती हैं। यह सभी कारक अप्रत्यक्ष रूप से खाद्य पदार्थों तक पहुँच को प्रभावित करते हैं।

खाद्य नीतियाँ: खाद्य नीतियाँ राष्ट्रीय, घरेलू एवं व्यक्तिगत स्तर पर खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं। राष्ट्रीय खाद्य नीतियों के अन्तर्गत खाद्य सहायता कार्यक्रम, खाद्य निर्यात-आयात नीति एवं खाद्य पदार्थों के बाजार मूल्य के निर्धारण की नीतियाँ हैं। इन नीतियों का उद्देश्य मानव संसाधन का उचित विकास और पोषण, स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार लाना है। भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली खाद्य सहायता कार्यक्रम का एक उदाहरण है।

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था: आर्थिक स्थिति और कुपोषण की व्यापकता के बीच गहरा अंतर्संबंध है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थिति खाद्य पदार्थों तक पहुँच और खाद्य सुरक्षा की स्थिति को इंगित करती है। राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सकल घरेलू उत्पाद, रोजगार सृजन, विदेश व्यापार, कृषि उत्पादन, निर्यात और आयात, औद्योगिक उत्पादन एवं बुनियादी सुविधाएं शामिल हैं।

3. भोजन का उपयोग

भोजन के उपयोग से तात्पर्य आहार से उचित मात्रा में ऊर्जा एवं अन्य पोषक तत्वों की आपूर्ति करना है। खाद्य उपभोग एवं पोषण भोजन के उपयोग के दो प्रमुख साधन हैं। खाद्य पदार्थों की घरेलू क्रय शक्ति, खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता, उनकी मात्रा का उपभोग, खाद्य पदार्थों की सुरक्षा खाद्य उपभोग के विभिन्न पहलू हैं। खाद्य उपभोग से व्यक्ति का पोषण स्तर एवं व्यक्तिगत खाद्य सुरक्षा को मापा जा सकता है। कम घरेलू क्रय शक्ति (निम्न आर्थिक स्थिति) खाद्य असुरक्षा की ओर ले जाती है और कुपोषण का महत्वपूर्ण कारक बनती है। परिवार में सदस्यों की संख्या, परिवार के सदस्यों की रोजगार स्थिति, निर्भरता अनुपात, साक्षरता स्तर आदि परिवार की क्रय शक्ति को प्रभावित करते हैं। सुरक्षित भोजन, संक्रमण रहित वातावरण एवं भोजन, स्वच्छ जल भी भोजन के उपयोग को प्रभावित करते हैं।

वैश्विक एवं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए:

- पौधों एवं पशुओं की सुरक्षा, प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा।
- भोजन में प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा में उपस्थिति।
- खाद्यान्नों का बफर स्टॉक बनाना।
- सामाजिक सुरक्षा (रोजगार सृजन, दृढ़ अर्थव्यवस्था, नीति निर्माण)।
- लोगो को सन्तुलित आहार के प्रति शिक्षित एवं जागरुक करना।
- जनसंख्या नीति तथा आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों में सन्तुलन बनाए रखना।
- पर्यावरण की सुरक्षा करना।

भारत सरकार ने खाद्य सुरक्षा को बढ़ाने के लिए कई कदम उठाए हैं जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न दिया गया है:

- कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग। इसमें उन्नत बीज, उर्वरक, कीटनाशक तथा सिंचाई की उचित व्यवस्था का उपयोग प्रमुख है।
- कटाई के मौसम में किसानों की फसल की सरकारी तन्त्र द्वारा खरीद।
- कटाई के मौसम से पहले विभिन्न फसलों की न्यूनतम कीमत तय करना ताकि किसान के मन में सुरक्षा की भावना विकसित हो सके।
- किसानों से खरीदी हुई फसलों का उचित भण्डारण करना ताकि आवश्यकता पड़ने पर भंडारों से खाद्यान्न निकाले जा सकें और जनता तक पहुँचाये जा सकें। इसके लिए 1965 में भारतीय खाद्य निगम का गठन किया गया। इसके अतिरिक्त central warehouse corporation- CWC तथा state warehouse corporation भी स्थापित किये गये हैं।
- राशन की उचित मूल्य की दुकानें स्थापित की गयी हैं ताकि गरीब लोगों को निम्न मूल्य पर अनाज मिल सके।
- किसान के हितों को ध्यान में रखकर सरकार फसलों के क्रय मूल्य में समय-समय पर वृद्धि करती रहती है। परन्तु निम्न आर्थिक स्थिति वाले परिवार सरकारी उच्च मूल्य पर अनाज नहीं खरीद सकते जिस कारण सरकार उन्हें आर्थिक सहायता के रूप में सब्सिडी प्रदान करती है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन

भारत सरकार ने खाद्यान्न उत्पादन में आई स्थिरता एवं बढ़ती जनसंख्या के खाद्य उपभोग को ध्यान में रखते हुए अगस्त 2007 में केन्द्र प्रायोजित राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन योजना का शुभारंभ किया। इस योजना का मुख्य लक्ष्य सुस्थिर आधार पर गेहूँ, चावल एवं दलहन की उत्पादकता में वृद्धि लाना है ताकि देश में खाद्य सुरक्षा की स्थिति को सुनिश्चित किया जा सके। इसका दृष्टिकोण समुन्नत प्रौद्योगिकी के प्रसार एवं कृषि प्रबंधन पहल के माध्यम से इन फसलों के उत्पादन में व्याप्त अंतर को दूर करना है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तीन घटक हैं:

- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन- चावल
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन- गेहूँ
- राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन- दलहन

इस योजना के क्रियान्वयन के अंतर्गत ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के अंत (वर्ष 2011-12) तक चावल के उत्पादन में 10 मिलियन टन, गेहूँ के उत्पादन में 8 मिलियन टन एवं दलहन के उत्पादन में

2 मिलियन टन की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया था। साथ ही अतिरिक्त रोजगार के अवसर भी उत्पन्न होने का लक्ष्य था।

इस मिशन ने भारी सफलता प्राप्त की और चावल, गेहूं तथा दालों के लक्षित उत्पादन से अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया।

इस मिशन को नए लक्ष्यों के साथ 12 वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान भी जारी रखा गया है। मिशन का नया लक्ष्य है 12 वीं पंचवर्षीय योजना के अंत तक 25 मिलियन टन खाद्यान्नों का अतिरिक्त उत्पादन जिसमें 10 मिलियन टन चावल, 8 मिलियन टन गेहूं, 4 मिलियन टन दालें और 3 मिलियन टन मोटे अनाजों का उत्पादन। विभिन्न राज्यों से प्राप्त पिछले अनुभवों और प्रतिक्रिया के आधार पर मिशन के दृष्टिकोण, वित्तीय सहायता के मानदंडों और कार्यक्रम क्रियान्वयन की रणनीति जो संशोधित परिचालन दिशानिर्देशों में परिलक्षित होती है, में प्रमुख बदलाव किए गए हैं।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन वर्तमान में देश के 19 राज्यों के 482 जिलों में, क्षेत्र विस्तार एवं उत्पादकता बढ़ोतरी; मृदा उर्वरता तथा उत्पादकता पुनर्भण्डारण, रोजगार अवसरों का सृजन तथा किसानों के विश्वास के पुनः संचयन के लिए कृषि स्तर पर अर्थव्यवस्था बढ़ोतरी के माध्यम से चावल, गेहूँ तथा दलहन के उत्पादन को बढ़ाने हेतु कार्यान्वयन अधीन है। मिशन का मूल कार्य उपज अंतराल को कम करने के लिए उच्च क्षमता जिलों में प्रभावी नियंत्रण तथा बेहतर प्रबंधन सहित किसानों की क्षमता सृजन के साथ बीज, सूक्ष्म पोषक तत्वों, मृदा सुधार, समेकित कीट प्रबंधन, फार्म मशीनरी तथा संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों जैसी उन्नत प्रौद्योगिकियों का उन्नयन तथा विस्तार करना है। 11वीं योजना में मिशन के कार्यान्वयन से न केवल लक्षित से अधिक खाद्यान्न उत्पादन प्राप्त हुआ है, बल्कि कम उत्पादकता वाले जिलों से महत्वपूर्ण योगदान के साथ खाद्यान्न उत्पादन के आधार को व्यापक भी किया है।

अभ्यास प्रश्न 4

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. भारत सरकार द्वारा भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India) की स्थापना..........................में की गयी थी।
   b. भारत विश्व में दलहन उत्पादन और खपत में .... स्थान रखता है।
   c. वर्ष 2015-16 के दौरान कुल तिलहन का सबसे बड़ा उत्पादक राज्य .... है।
2. खाद्य सुरक्षा क्या है?

....

....

3. खाद्य सुरक्षा के तीन स्तंभ कौन-से है?

....

....

7.9 सारांश

भारत में खाद्य पदार्थों का उपभोग विकास के साथ बदल रहा है। आज भी अनाज आहार का मुख्य हिस्सा है परन्तु आहार में दालों का उपयोग घट रहा है। दूध एवं फलों का उपभोग अधिकतर उच्च आय वर्ग में ही देखा जाता है। खाद्य बैलेंस शीट से खाद्य उत्पादन एवं उपभोग का लेखा-जोखा प्राप्त किया जा सकता है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा आबादी को अनाज सस्ते दामों पर उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत सस्ते राशन की दुकानों के माध्यम से कार्य किया जाता है। भारतीय खाद्य निगम अनाज भण्डारों का प्रबन्ध करता है। विगत वर्षों में देश में खाद्यान्नों के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। वर्ष 2016-17 के दौरान 275 मिलियन टन खाद्यान्न का रिकॉर्ड उत्पादन प्राप्त किया गया। गेहूँ का उत्पादन 2015-16 में 92.29 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2016-17 के दौरान 98.51 मिलियन टन हो गया। इसी प्रकार चावल का उत्पादन वर्ष 2015-16 में 104.41 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2016-17 में 109.70 मिलियन टन हो गया। दलहनों का कुल उत्पादन भी वर्ष 2015-16 के दौरान 16.35 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2016-17 के दौरान 23.13 मिलियन टन हो गया है। गन्ना भारत की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है। वर्ष 2015-16 के दौरान गन्ने का कुल उत्पादन 3484.48 लाख टन था तथा 2016-17 के दौरान इसका उत्पादन 3060.69 लाख टन हुआ। इस तरह खाद्य उत्पादन में एक निरंतर बढ़त देखने को मिलती है। लोगों में खाद्य सुरक्षा की भावना भी खाद्य उत्पादन से जुड़ी हुई है। यह भावना तब पैदा होती है जब खाद्य पदार्थ बाजार में उपलब्ध हों और जनसाधारण में उन्हें खरीदने की क्रय शक्ति हो। सरकार द्वारा चलाए गए कई कार्यक्रमों से भी खाद्य सुरक्षा को बढ़ावा मिलता है। इनमें खाद्यान्नों के पर्याप्त मात्रा में सुरक्षित भण्डार, नियन्त्रित वितरण प्रणाली, खाद्यान्नों को उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना, काम के बदले अनाज आदि कार्यक्रम प्रमुख हैं।

7.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **खाद्य हानि:** खाने योग्य भोजन की वितरण में हानि।
- **खाद्य सुरक्षा:** भोजन की सदैव उपलब्धता।
- **पोषण सुरक्षा:** सन्तुलित एवं पौष्टिक भोजन की सदैव उपलब्धता।

- **बफर स्टॉक:** खाद्यान्नों का भण्डारण।
- **बी0पी0एल0:** गरीबी रेखा के नीचे के परिवार।
- **ए0पी0एल0:** गरीबी रेखा के ऊपर के परिवार।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. इकाई का मूल भाग देखें।
2. इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. एक खाद्य बैलेंस शीट, एक विशेष समय अवधि के दौरान, किसी चयनित देश की खाद्य आपूर्ति का एक व्यापक संकलन है।
2. सांख्यिकी के आधार पर उक्त भोज्य पदार्थ की प्रति इकाई प्रतिदिन उपलब्ध मात्रा की गणना की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र उपयोग में लाया जाता है:

$$\frac{\text{प्रति इकाई प्रतिदिन}}{\text{उपलब्ध मात्रा (ग्राम में)}} = \frac{\text{कुल उपलब्ध मात्रा} - \left[\text{मनुष्य के अलावा अन्य साधनों में प्रयुक्त मात्रा}\right]}{\text{जनसंख्या} \times 365}$$

कुल उपलब्ध मात्रा = पूर्व वर्ष की शेष मात्रा + चालू वर्ष की उत्पादित कुल मात्रा + आयातीत मात्रा

मनुष्य के अलावा अन्य साधनों में प्रयुक्त मात्रा = वर्ष के अन्त में शेष मात्रा + निर्यात की गई मात्रा + बीज हेतु रखी गई मात्रा + पशु चारा की मात्रा + संग्रहण में नष्ट हुयी मात्रा

3. खाद्य बैलेंस शीट विधि के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है कि उक्त अवधि में संबंधित स्थान के मनुष्यों को उपयोग हेतु भोज्य पदार्थ विशेष की कितनी मात्रा उपलब्ध है। यह विधि कुछ योजनाओं को लागू करने एवं उन पर नियन्त्रण रखने हेतु प्रभावशाली है। उत्पादन नष्ट होने जैसी आपात स्थितियों पर नियंत्रण करने के लिए भी उक्त विधि उपयोगी है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली की शुरुआत पहली बार फरवरी 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई और वर्तमान रूप यह योजना में जून 1947 में शुरु की गई थी।

2. सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रमुख रूप से निम्न उद्धेश्य हैं:
   - आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना।
   - आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्यों को स्थिर रखना।
   - कुछ मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से समाज के कमजोर वर्गों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करना।
3. राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत निर्दिष्ट खाद्यान्नों की कीमतें इस प्रकार हैं: चावल के लिए प्रति किलोग्राम 3 रुपये, गेहूँ के लिए प्रति किलोग्राम 2 रुपये तथा मोटे अनाजों के लिए प्रति किलोग्राम 1 रुपया, जो जुलाई, 2016 तक वैध थे तथा जिन्हें मार्च, 2017 तक जारी रखा गया।

अभ्यास प्रश्न 4

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 14 जनवरी, 1965
   b. पहला
   c. मध्य प्रदेश
2. खाद्य सुरक्षा का अर्थ वह परिस्थिति है जिसमें सक्रिय स्वस्थ जीवन बिताने के लिए लोगों के पास पर्याप्त भोजन हो''। 1996 में विश्व खाद्य सम्मेलन में खाद्य सुरक्षा की निम्नलिखित परिभाषा पारित की गई:

''खाद्य सुरक्षा (व्यक्तिगत, घरेलू, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या वैश्विक स्तर पर) तब प्राप्त की जा सकती है जब सभी लोगों को आवश्यकता के अनुसार आधारभूत पौष्टिक एवं सुरक्षित भोजन तक सदा आर्थिक एवं भौतिक पहुँच हो''।

3. खाद्य सुरक्षा तीन स्तंभों पर आधारित होती है:
   - खाद्य उपलब्धता: वह स्थिति जब भोजन या खाद्य पदार्थों की निरन्तर आधार पर पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता हो।
   - खाद्य पदार्थों तक पहुँच: एक पौष्टिक आहार के लिए उपयुक्त खाद्य पदार्थों तक पहुँच के लिए पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता। इसमें आर्थिक एवं सामाजिक कारक सम्मलित होते हैं।
   - भोजन का उपयोग: खाद्य सुरक्षा का तीसरा स्तंभ बुनियादी पोषण एवं देखभाल के आधार पर भोज्य पदार्थों का उपयोग है। इसके साथ पर्याप्त एवं स्वच्छ जल की आवश्यकता भी है।

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Sehgal. S. and Raghuvanshi.R.S. 2004. Text book of Community Nutrition. Indian Council of Agricultural research. New Delhi. 524 p.
- भारत सरकार, 2016. भारतीय कृषि की स्थिति. कृषि मंत्रालय नई दिल्ली.
- http://www.indg.in/agriculture/rural-employment-schemes/NFSM%20guidlines-Hindi-2009.pdf.
- http://business.gov.in/hindi/agriculture/policies_incentives.php.

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में खाद्य पदार्थों के उपभोग के स्वरूप पर टिप्पणी कीजिए।
2. सार्वजनिक वितरण प्रणाली की उपयोगिता बताइए।
3. भारतीय खाद्य निगम के बारे में विस्तारपूर्वक लिखें।
4. भारत में खाद्य उत्पादन की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
5. खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारक कौन-से हैं?
6. खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए क्या उपाय अपनाए गए हैं?

इकाई 8: खाद्य विकल्पों को प्रभावित करने वाले कारक

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 भोजन के चुनाव एवं अवशोषण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक
8.4 पोषण शिक्षा
8.5 सामुदायिक पोषण शिक्षा
8.6 समुदाय में पोषण शिक्षा की आवश्यकता
8.7 पोषण शिक्षा हेतु लक्ष्य समूह का वर्गीकरण
8.8 पोषण शिक्षा प्रदान करने के तरीके
8.9 पोषण शिक्षा की विभिन्न विधियाँ
8.10 सारांश
8.11 पारिभाषिक शब्दावली
8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.13 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

हमारे भोजन के चुनाव को कई कारक प्रभावित करते हैं। स्वाद अधिमान/पसंद एवं संवेदी लक्षण भोजन के चुनाव को सर्वाधिक प्रभावित करते हैं। भोजन का चुनाव व्यक्तिगत एवं पर्यावरणीय कारक दोनों से प्रभावित हो सकता है। यह वह कारक होते हैं जो खाद्य व्यवहार का निर्माण करते हैं एवं उसमें संशोधन या बदलाव लाते हैं। आहार में भोज्य पदार्थों का चुनाव उनकी कीमत, उपलब्धता, पकाने की सुविधा, सांस्कृतिक प्रचलन आदि से भी प्रभावित होता है। भोज्य पदार्थों का चुनाव एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जो बहुत से अंतर्संबंधित कारकों से प्रभावित होती है।

व्यक्ति भोजन की भौतिक बनावट, उसकी प्रस्तुति, गंध के अनुसार उसका चुनाव करते हैं या उसे अस्वीकार करते हैं। हम सभी भोजन की गुणवत्ता एवं आकर्षकता को नापने के लिए अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करते हैं। इन्द्रियों की प्रतिक्रिया के आधार पर लिए गए निर्णय को संवेदी धारणा कहा

जाता है। भोज्य पदार्थों के आकर्षक रंग एवं उनकी रचनात्मक व्यवस्था भूख एवं लार ग्रन्थियों को उत्तेजित करती है जिससे उस खाद्य पदार्थ विशेष को खाने की इच्छा पैदा होती है तथा उस खाद्य पदार्थ को चुन लिया जाता है। कुछ लोग भोज्य पदार्थों के चुनाव में बहुत कम विकल्पों का प्रयोग करते हैं क्योंकि या तो उन्हें किसी विशिष्ट खाद्य पदार्थ से एलर्जी होती है या वे भोज्य पदार्थों की बाह्य दिखावट से अधिक प्रभावित नहीं हो पाते हैं।

भोजन का चुनाव स्वास्थ्य पर अच्छा या बुरा दीर्घकालिक प्रभाव डाल सकता है। भोजन का चुनाव तत्काल प्रभाव नहीं डालता है। इसलिए ज्यादातर व्यक्ति इसके प्रति जागरुक नहीं होते हैं। भोजन के चुनाव का महत्व सन्तुलित आहार के सेवन से संबंध रखता है। यदि समुदायों को स्वस्थ रखना है तो सभी को आवश्यकता अनुसार सन्तुलित भोजन की आवश्यकता होती है। यह सन्तुलित भोजन भोज्य पदार्थों के उचित चुनाव से प्राप्त होता है। इकाई एक में आप पढ़ चुके हैं कि सन्तुलित आहार के लिए प्रत्येक भोज्य समूह में से कोई खाद्य पदार्थ आहार में आवश्यक रूप से सम्मिलित करना चाहिए। यदि भोज्य पदार्थों के चुनाव में ध्यान एवं सतर्कता नहीं रखी जाती है तो पोषण सम्बन्धी विभिन्न रोग जैसे प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण, एनीमिया, घेंघा रोग आदि होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप;

- भोजन के चुनाव को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- भोजन के चुनाव एवं कुपोषण का अंतर्संबंध समझ सकेंगे।
- भोजन के चुनाव को प्रभावित करने वाले अन्य विभिन्न कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे; तथा
- कुअवशोषण (Malabsorption) से स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर कैसे प्रभावित होता है, समझ पाएंगे।

आइए, इकाई की शुरुआत सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों के बारे में चर्चा करें।

8.3 भोजन के चुनाव एवं अवशोषण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारक

भोजन विकल्पों को कई सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं। आइए इन्हें जानें।

समाज- संस्कृति एवं लोगों का परस्पर एक दूसरे से संबंध भोज्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करता है। भोजन के चुनाव पर सामाजिक प्रभावों से तात्पर्य एक-दूसरे का भोजन लेने के व्यवहार से प्रभावित होने से है। यह प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष या जानबूझ कर या अनजाने में हो सकता है। जब हम अकेले रहते हैं तब भी खान-पान एवं भोजन का चुनाव कई सामाजिक कारकों से प्रभावित होता है क्योंकि भोजन संबंधी व्यवहार एवं आदतें दूसरों से बातचीत के माध्यम से विकसित होती है। सकारात्मक सामाजिक समर्थन बेहतर भोजन विकल्पों को चुनने के लिए बढ़ावा देता है जिससे एक स्वस्थ आहार को अपने दैनिक जीवन का हिस्सा बनाया जा सकता है।

भोजन के चुनाव को विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है:

- पारिवारिक प्रभाव: भोजन संबंधी निर्णयों में पारिवारिक प्रभाव महत्वपूर्ण रूप से देखा जाता है। शोधों से पता चलता है कि भोज्य पदार्थों के चुनाव की आदत बच्चा सर्वप्रथम घर से ही सीखता है। स्वस्थ भोजन के चुनाव में पारिवारिक प्रोत्साहन एक मुख्य स्रोत हो सकता है।
- सामाजिक परिदृश्य: ज्यादातर भोजन घर में खाया जाता है। परंतु समय के साथ घर से बाहर खाने का चलन बढ़ने से भोजन चुनाव की आदतों में परिवर्तन देखा जाता है। जिस स्थल पर व जिसके साथ भोजन खाया जाता है, भोजन की पसंद को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं।
- संस्कृति का प्रभाव: सांस्कृतिक प्रभावों के कारण किसी भोज्य पदार्थ विशेष की पसन्द बढ़ सकती है। विशेष त्यौहार, उत्सव आदि सांस्कृतिक प्रभाव सीधे तौर पर भोजन के चुनाव को प्रभावित करते हैं। नई जगह, देश, शहर आदि से सांस्कृतिक प्रभाव बदल सकते हैं। कुछ संस्कृतियों में कुछ भोज्य पदार्थ बिल्कुल निषेध होते हैं। इस कारण भी भोजन चुनाव की प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है।

धर्म: खाद्य पदार्थ के चयन में धर्म भी महत्वपूर्ण है। जैसे हिन्दु एवं बौध धर्म में सुअर का माँस एवं गोमाँस निषेध है। धार्मिक रीति-रिवाजों के अनुसार कब, क्या और किसके साथ भोजन करना है, इसका सीधा प्रभाव भोज्य पदार्थों के चयन पर पड़ता है।

ज्ञान का अभाव: पोषण एवं पकाने की विधियों का ज्ञान न होना भी भोजन के चुनाव को प्रभावित करता है। पोषक भोज्य पदार्थों का ज्ञान भी उनके चुनाव के लिए प्रेरित करता है।

उपरोक्त सभी कारक पोषक या स्वस्थ भोज्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करते हैं। यदि यह सभी कारक या इनमें से कुछ कारक व्यक्ति पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं तो स्वस्थ भोज्य पदार्थ ही

व्यक्ति की पसन्द बन जाते हैं जिससे उसका पोषण स्तर उच्च बना रहता है। परन्तु यदि कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक कारक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं, जैसे लड़कियों को कम भोजन देना, लड़कों को भोजन देने में प्राथमिकता देना आदि, तो समुदाय में कुपोषण व्याप्त रहता है। जिन समुदायों में व्यक्तियों की आहार में पसन्द अधिक ऊर्जायुक्त भोज्य पदार्थ जैसे वसा युक्त मांस, मक्खन, तला हुआ भोजन है, वहाँ जीवन शैली से संबंधित रोग जैसे मोटापा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि अधिक दिखाई देते हैं। व्यक्ति का पोषण स्तर प्रत्यक्ष रूप से उसकी पसन्द एवं भोजन से संबंधित आदतों से प्रभावित होता है। इसलिए यदि समुदाय में पोषण स्तर को उच्च बनाये रखना है तो समुदाय के सभी व्यक्तियों को भोजन संबंधी अच्छी आदतों एवं स्वस्थ भोज्य पदार्थों को अपने आहार में प्रतिदिन शामिल करना चाहिए। परिवार एवं विद्यालय यह सिखाने के सर्वोत्तम स्थान हैं। बच्चों में शुरु से ही स्वस्थ भोज्य पदार्थों का ज्ञान, एक स्वस्थ समुदाय बनाने की ओर सकारात्मक कदम है। सांस्कृतिक परिवेश तथा रीति-रिवाज किसी भी भोज्य पदार्थ के प्रचलन या चुनाव का कारण बन जाते हैं। किसी भी परिस्थिति विशेष में व्यक्ति के द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोजन वास्तव में उसके संस्कार से ही निश्चित होता है। संस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं तथा इनके द्वारा ही व्यक्ति के सम्पूर्ण रहन-सहन का तरीका प्रभावित होता है। संस्कारों का प्रभाव व्यक्ति के भोज्य पदार्थों के चुनाव भी पड़ता है। व्यक्ति की भोजन से संबंधित आदतें देखकर उनकी सामाजिक संरचना, आर्थिक स्थिति, धार्मिक परिवेश तथा विभिन्न भोज्य पदार्थों के विविध उपयोगों के बारे में बहुत कुछ जाना एवं समझा जा सकता है। कुछ भोज्य पदार्थों के साथ व्यक्ति सांवेगिक तौर पर इस तरह से जुड़ जाता है कि उस भोज्य पदार्थ के विषय में उसकी राय बदलना कठिन हो जाता है। इस तरह से सामाजिक सांस्कृतिक तत्व पूर्णतः भोजन से संबंधित आदतों को प्रभावित करते हैं। न केवल भोजन का चुनाव वरन् भोजन को पकाने का तरीका भी इनसे प्रभावित होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक कारण कई बार समुदायों के स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकते हैं। जैसे गर्भवती माता को पालक, बथुआ, जामुन आदि नहीं खाने दिये जाते हैं क्योंकि इससे गर्भस्थ शिशु का रंग काला हो जायेगा। जबकि गर्भवती स्त्री को हरी पत्तेदार सब्जियाँ अवश्य रूप से देनी चाहिए क्योंकि वे आहार में लौह तत्व प्रदान करती हैं। गर्भावस्था में लौह तत्व की आवश्यकता बढ़ जाती है, इसलिए हरी सब्जियों का सेवन गर्भावस्था में अत्यंत लाभकारी है।

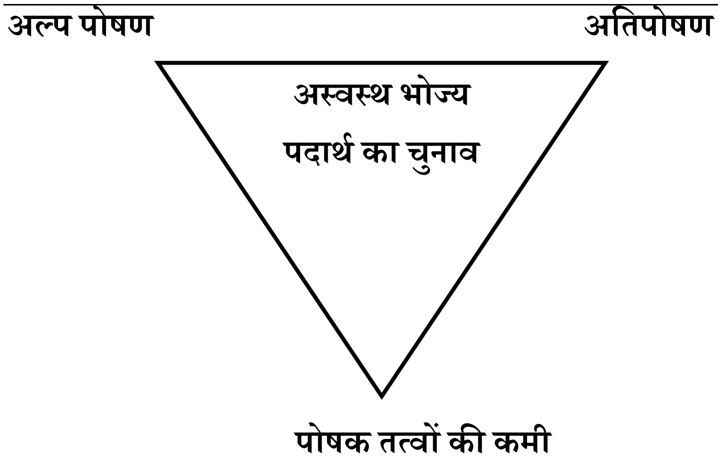

चित्र 8.1: भोजन के चुनाव एवं कुपोषण

8.3.1 भोजन के चुनाव में मूल्य

मूल्य वह महत्वपूर्ण और स्थायी विश्वास या आदर्श होते हैं जो किसी संस्कृति के सदस्यों में समान रूप से पाये जाते हैं। मूल्यों के द्वारा तय किया जाता है कि क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्या वांछनीय है और क्या अवांछनीय। व्यक्ति के व्यवहार और दृष्टिकोण पर मूल्यों का बड़ा प्रभाव होता है। यह जीवन की सभी परिस्थितियों में व्यापक दिशा निर्देश देने का कार्य करते हैं। मूल्यों को विशेष रूप से उन मापदंडों के रूप में परिभाषित किया जाता है जो लोगों से उनके कार्यों को तर्कसंगतता से चुनने में मार्गदर्शन एवं मदद करते हैं। कई कार्य परोक्ष रूप से मूल्यों से जुड़े होते हैं। अगर मूल्य निर्णय लेने की प्रक्रिया से पहले सक्रिया हो जाएं तो वह किसी भी व्यवहार को एक आकार दे सकते हैं। मूल्यों के अप्रत्यक्ष प्रभाव अभिवृत्ति के रूप में भी दिखाई दे सकते हैं। यह बात भोज्य पदार्थों के चुनाव में विशेष रूप से लागू होती है। विभिन्न पदार्थों से जुड़ी पारम्परिक मान्यताएं एवं मूल्य भोजन संबंधी वरीयता एवं उसके चुनाव को प्रभावित करते हैं।

भोज्य पदार्थों को सामाजिक मूल्य भी प्रदान किया गया है। महंगे तथा मुश्किल से उपलब्ध खाद्य पदार्थ, जिन खाद्य पदार्थों का स्वाद अन्य खाद्य पदार्थों से काफी भिन्न होता है तथा वे खाद्य पदार्थ जिन्हें तैयार करने में अधिक लम्बी प्रक्रिया एवं समय लगता है, वह सभी खाद्य पदार्थ प्रतिष्ठित माने जाते हैं। उच्च आय वर्ग के परिवार इन प्रतिष्ठित खाद्य पदार्थों को ही अपने दैनिक आहार में सम्मलित कर इन्हें अपने रोज की दिनचर्या में सम्मिलित कर लेते हैं। इन सामाजिक या व्यक्तिगत मूल्यों के समक्ष भोज्य पदार्थ का पोषक मूल्य महत्वहीन होता है। कुछ परिवारों, समाजों में माँस खाना ही उचित माना जाता है, वे दालों, हरी पत्तेदार सब्जियों को आहार का हिस्सा नहीं बनाना

चाहते। दूसरी ओर कुछ लोग मांस, अण्डा माँसाहार होने के कारण उन्हें आहार में कभी प्रयोग नहीं करते हैं। मूल्य, समुदाय या क्षेत्र के अनुसार भिन्न होते हैं। मूल्यों के कारण ही सभी समुदायों में व्रत का प्रावधान है एवं उनमें विशेष प्रकार का भोजन ही खाया जाता है। मूल्यों के कारण ही गर्भावस्था तथा धात्रीवस्था में कुछ भोज्य पदार्थ निषेध होते हैं। खाद्य पदार्थों के चयन के सन्दर्भ में, मूल्य उसकी उत्पत्ति एवं स्वास्थ्य के रखरखाव से संबंध रखते हैं। यदि किसी के जीवन का मूल्य स्वस्थ रहना है तो वह व्यक्ति स्वस्थ भोज्य पदार्थ जैसे फल और सब्जियों को भोजन के रूप में चुनेगा। यदि जीवन में स्वास्थ्य सम्बंधी कोई मूल्य नहीं है तो व्यक्ति सिर्फ स्वाद के विषय में सोचकर भोज्य पदार्थों का चुनाव करता है।

मूल्य जो भोज्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करते हैं:

- शाकाहार
- स्वास्थ्य
- धर्म
- मितव्ययता
- प्रतिष्ठा
- स्वाद

उपरोक्त सभी उदाहरण किसी न किसी रूप में भोज्य पदार्थों के चयन को प्रभावित करते हैं। ये सभी कारक उचित पोषण ज्ञान होने पर स्वस्थ भोज्य पदार्थों के चयन के लिए व्यक्ति को प्रेरित कर सकते हैं। यदि पोषण ज्ञान उचित नहीं है तो इसका सीधा असर पोषण स्तर पर पड़ता है।

8.3.2 खाद्य मान्यताओं, विचारधारा, शिक्षा, भोजन की उपलब्धता, खाद्य कीमतों का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

खाद्य मान्यताओं का प्रभाव (Effect of food beliefs)

भोज्य पदार्थों की स्वीकार्यता दुनिया में अलग-अलग जगहों पर भिन्न-भिन्न है। भोजन की स्वीकृति धर्म एवं संस्कृति से जुड़ी होती है। खाद्य मान्यताएं या धारणाएं बिना किसी वैज्ञानिक आधार पर प्रचलित राय या विश्वास हैं। मूल्यों के विपरीत मान्यताओं को बदला जा सकता है। खान-पान की आदतों एवं खाद्य पदार्थों के चुनाव में पारंपरिक मान्यताएं अधिकतर ज्ञान के अभाव के कारण प्रचलित होती हैं। इन मान्यातओं के कारण कई बार भोजन में जरूरी पोषक तत्वों का समावेश नहीं होता है। उदाहरण हेतु दक्षिण प्रशांत द्वीप समूह में माना जाता है कि यदि गर्भावस्था के दौरान शैल

मछली का सेवन किया जाता है तो ऐसा बच्चा पैदा होगा जिसके सिर पर शल्क होंगे। इसी प्रकार इथोपिया में माना जाता है कि गर्भवती महिला को भुना हुआ माँस खाने से बचना चाहिए अन्यथा उससे गर्भपात हो सकता है। इसी प्रकार अन्य जगहों पर भी भिन्न-भिन्न प्रकार की मान्यताएं प्रचलित हैं, जैसे

- गर्भावस्था में अण्डा खाने से बच्चे में गंजापन आ जाता है।
- स्तनपान कराने वाली महिला को अधिक लहसुन खाने से दूध उत्पादन में वृद्धि होती है।
- अफ्रीका के कुछ हिस्सों में माना जाता है कि यदि बच्चों को दाँत निकलने से पहले अण्डा खिला दिया जाये तो वे उनके मस्तिष्क के विकास में बाधा उत्पन्न होगी।

भारत में भी इस प्रकार की कई मान्यताएं प्रचलित हैं, जैसे

- भोजन में दूध और मछली एक साथ लेने से सफेद दाग (leucoderma) हो जाता है।
- दूध के साथ नमक युक्त भोज्य पदार्थ लेने से चर्म रोग हो जाते हैं।
- किसी जानवर का मस्तिष्क खाने से समय से पूर्व बाल सफेद हो जाते हैं एवं झड़ने लगते हैं।
- बच्चों द्वारा बकरी की जीभ का सेवन उन्हें बातूनी बनाता है।
- बच्चों द्वारा बकरी के पैरों का सेवन करने से उनके घुटने एवं टखनों के जोड़ों का विकास उचित रूप से नहीं हो पाता है।
- खट्टे फलों से शरीर में अम्लीयता बढ़ती है।
- लहसुन से उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित किया जा सकता है।
- चुकन्दर खाने से रक्त की मात्रा बढ़ती है।
- एल्यूमीनियम के बर्तन में पकाया गया भोजन, कैन्सर का कारण बन सकता है।
- कुछ खाद्य पदार्थों का संयोजन जहरीला होता है, जैसे दूध और सन्तरे का रस, दूध और मछली।
- कच्चे खीरे बिना नमक के जहरीले होते हैं।
- पतला होने का सबसे अच्छा तरीका है, सुबह का नाश्ता न करना।
- शहद खाने से मोटे नहीं होते।
- मांस के सेवन से शरीर में ताकत आती है।
- फलों के रस में कैलोरी नहीं होती है।
- कच्चे ब्रेड की अपेक्षा सिके हुए ब्रेड में कम कैलोरी होती है।

- वनस्पति तेलों के उपयोग से मोटे नहीं होते हैं।
- व्यस्कों को दूध की आवश्यकता नहीं होती है।
- वसा रहित दूध में कोई पोषक तत्व नहीं होते हैं।
- गर्भावस्था में पपीता खाने से गर्भपात हो सकता है।
- गर्भावस्था में नारियल खाने से बच्चा गोरा होता है।
- पानी पीने से मोटे होते हैं।

उपरोक्त में से अधिकतर मान्यताओं का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है।

विचारधाराओं का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

मूल्यों एवं मान्यताओं के अलावा व्यक्तियों एवं समुदायों की विचारधारा भी खाद्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करती है। विचारधारा मूल्यों पर आधारित होती है। व्यक्ति की विचारधारा किसी न किसी सिद्धान्त पर कार्य करती है। दुनिया भर में भोज्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करने वाली मुख्य विचारधारा 'शाकाहार' की है। किसी व्यक्ति या समुदाय की शाकाहारी विचारधारा या तो उसके पारिवारिक या धार्मिक मूल्यों के कारण हो सकती है या फिर इस तथ्य पर विश्वास कि किसी प्राणी को खाना उचित नहीं है। उनका मानना होता है कि शाकाहार ही मनुष्य की प्रकृति और उसके शरीर तन्त्र की अन्दरूनी एवं बाहरी संरचना के सर्वथा अनुकूल है। नैतिकता, स्वास्थ्य, पर्यावरण, धर्म, राजनीतिक, सांस्कृतिक, सौन्दर्य एवं आर्थिक कारणों से शाकाहार को अपनाया जा सकता है। समुदाय में हम विभिन्न प्रकार की शाकाहारी आहार पद्धतियाँ देख सकते हैं:

- एक लैक्टो- शाकाहारी आहार में दुग्ध उत्पाद शामिल होते हैं लेकिन अंडे नहीं।
- एक ओवो-शाकाहारी आहार में अंडे शामिल होते हैं लेकिन दूध एवं उससे बने उत्पाद नहीं।
- एक ओवो-लैक्टो शाकाहारी के आहार में अंडे और दूध उत्पाद दोनों शामिल होते हैं।
- एक वेगन (vegan) अर्थात अतिशुद्ध शाकाहारी आहार में कोई भी प्राणी उत्पाद शामिल नहीं होता है।
- सुशाकाहार में सभी प्राणी उत्पादों सहित प्याज, लहसुन, हरा प्याज को आहार से बाहर रखते हैं।

जो लोग शाकाहारी होते हैं वे अपने भोज्य पदार्थ सिर्फ पादप जगत तक ही सीमित रखते हैं। ऐसे समुदायों एवं व्यक्तियों के आहार में प्रोटीन की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। शोधों में पाया गया है कि शुद्ध शाकाहारियों में विटामिन बी-12 और लौह तत्व की कमी होती है। इस कमी को विटामिन

की गोली लेकर दूर किया जा सकता है। अगली विचारधारा 'माँसाहार' की है। जो व्यक्ति या समुदाय माँसाहार विचारधारा का समर्थन करते हैं वह अपने आहार में माँस, मछली, अण्डा आदि प्रचुर मात्रा में उपयोग करते हैं। ऐसे लोगों के आहार में सब्जियों का समावेश कम होता है जिससे आहार में रेशे की मात्रा कम ही रहती है। प्राणी जगत से भोजन प्राप्त करने से उच्च गुणवत्ता का प्रोटीन, प्रचुर मात्रा में लौह तत्व, कैल्शियम एवं अन्य विटामिन प्राप्त होते हैं। परन्तु ऐसे आहार को विभिन्न रोगों जैसे मधुमेह, मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि का कारण माना जाता है। माँसाहारी व्यक्ति के रक्त में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अधिक होती है जो रोगों के जोखिम को बढ़ा देती है।

अन्य प्रबल विचारधारा जो भोज्य पदार्थों के चुनाव को प्रभावित करती है, वह 'जैविक भोज्य पदार्थों/Organic food' के उपयोग की है। यह वह भोज्य पदार्थ होते हैं जिन्हे पैदा करने में किसी प्रकार के रसायनों (खाद्य, कीट नाशक आदि) का प्रयोग नहीं किया जाता है। इस विचारधारा के लोग यह मानते हैं कि जैविक भोजन ज्यादा स्वस्थ और पोषक होता है। ऐसे व्यक्ति या तो स्वयं उगाये गए भोज्य पदार्थों का उपयोग करते हैं या फिर सिर्फ उन भोज्य पदार्थों का उपयोग करते हैं जिन पर 'ऑर्गेनिक' का लेबल लगा होता है। ऑर्गेनिक खाद्य पदार्थ, सामान्य खाद्य पदार्थों की अपेक्षा तीन गुना तक ज्यादा महँगे होते हैं। जब व्यक्ति सिर्फ ऑर्गेनिक की विचारधारा पर जीवन व्यतीत करने का निर्णय लेता है तो उसका पोषण स्तर प्रभावित हो सकता है क्योंकि वह सभी भोज्य समूह के पदार्थ अपने उद्यान या खेत में नहीं उगा सकता। बाजार में भी सभी भोज्य पदार्थ हमेशा ऑर्गेनिक नहीं मिलते, जिस कारण व्यक्ति उन भोज्य पदार्थों को अपने आहार में शामिल नहीं कर पाता है। इससे समुदाय का पोषण स्तर निश्चित तौर पर प्रभावित होता है।

बदलते समय के साथ नई विचारधारा भी विकसित होती रहती है। वर्तमान समय में स्वस्थ रहने की विचारधारा काफी प्रचलित है। इस विचारधारा के व्यक्ति स्वस्थ भोज्य पदार्थों का चुनाव करते हैं। घी के स्थान पर तेल, परिष्कृत आटे के स्थान सम्पूर्ण आटा, प्रचुर मात्रा में सब्जियाँ एवं फल आदि। ऐसे व्यक्ति अपने वजन को लेकर सजग रहते हैं, वे प्रतिदिन व्यायाम भी करते हैं एवं स्वस्थ रहने के सभी उपाय करते हैं।

शिक्षा का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

शिक्षा ज्ञान अर्जित करने में भूमिका निभाती है। शिक्षा के कारण समुदायों को विभिन्न भोजन विकल्पों के विषय में जानकारी होती है। साक्षर व्यक्ति पत्रिकाओं, समाचार पत्र आदि पढ़ने से जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। ज्ञान के अभाव में व्यक्ति उचित निर्णय नहीं ले पाता है। अशिक्षित व्यक्तियों में सोचने-समझने, विचार करने, कल्पना करने की क्षमता में कमी होती है। अज्ञानता के

कारण माताएँ अपने शिशु को पौष्टिक भोजन नहीं खिला पाती हैं। वे दूध में अधिक पानी डालकर उसे पतला करके पिलाती हैं। शिक्षित व्यक्ति को भोजन चयन की उचित विधियों के बारे में जानकारी आसानी से प्रदान की जा सकती है। निरक्षरता जानकारी प्रदान करने की प्रक्रिया को लम्बा बना सकती है। अशिक्षित व्यक्ति यह नहीं सोच पाते हैं कि किन-किन भोज्य तत्वों में कौन-कौन से पौष्टिक तत्व विद्यमान होते हैं तथा उनकी पूर्ति किन साधनों से की जा सकती है। उनके अनुसार सिर्फ महँगे भोज्य पदार्थ ही सेहत के लिए अच्छे होते हैं। अतः वे सही भोजन का चुनाव नहीं कर पाते हैं। कई बार भोज्य पदार्थों की उपलब्धता तथा परिवार के उन भोज्य पदार्थों को खरीदने की क्षमता के बावजूद भी अशिक्षा के कारण उनका उपयोग भोजन में नहीं हो पाता है। परिणामस्वरूप कुपोषण की सम्भावनाएं प्रबल हो जाती हैं। शिक्षित व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग रह कर स्वस्थ भोज्य पदार्थों का चुनाव करने के लिए प्रेरित रहता है। अधिकतर अशिक्षित समुदाय ही भोजन संबंधी अनावश्यक मान्यताओं को मानता है। वह स्वास्थ्य से ज्यादा मान्यताओं एवं प्रथाओं पर जोर देते हैं जिससे सम्पूर्ण समुदाय का पोषण स्तर प्रभावित होता है। भोजन स्वच्छता, सन्तुलित आहार, पोषक तत्व आदि भोजन चयन के वे घटक हैं जो शिक्षा से प्राप्त किये जा सकते हैं। शोधों से ज्ञात हो चुका है कि आहार एवं पोषण का ज्ञान प्रदान करने से व्यक्तियों एवं समुदायों के पोषण स्तर में सुधार लाया जा सकता है। इससे उनकी भोजन चयन करने की प्रवृत्ति में सुधार लाया जा सकता है।

भोजन की उपलब्धता का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

भोजन की उपलब्धता भोजन के चयन को प्रभावित करने वाला अन्य महत्वपूर्ण कारक है। स्वस्थ भोजन चयन के लिए स्वस्थ भोज्य पदार्थों की उपलब्धता अति आवश्यक है क्योंकि सभी भोज्य पदार्थ घर में नहीं उगाये जा सकते। इसलिए अन्य पदार्थों के लिए दुकानों तक आसान पहुँच एवं दुकानों में उचित खाद्य पदार्थों की उपलब्धता भोजन के चयन को प्रभावित करती है। जैसे जिन स्थानों पर दूध नहीं होता वहाँ पर दुकानों में दूध की उपलब्धता होने पर ही दूध का उपयोग हो पाता है। परिवहन की सुविधा भोजन की उपलब्धता को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। यह विशेषकर दूर दराज के इलाकों, पहाड़ों, गाँवों, रेगिस्तान आदि के लिए महत्वपूर्ण कारक है। परन्तु उपलब्धता में सुधार लाने से जरूरी नहीं कि व्यक्ति अपनी भोजन की पसंद को परिवर्तित कर कुछ और विकल्प चुन ही ले। भोजन उपलब्धता बढ़ाने का उद्देश्य व्यक्ति एवं समुदायों के समक्ष उचित भोजन विकल्प प्रस्तुत करना है।

यदि बच्चों में बचपन से ही स्वस्थ भोजन की आदतें डालनी हैं तो उनके समक्ष स्वस्थ भोज्य पदार्थों की उपलब्धता बढ़ानी चाहिए। घरों में स्वस्थ भोज्य पदार्थों की उपलब्धता की जिम्मेदारी माता-

पिता पर होती है। इसलिए उचित भोज्य पदार्थों का चयन भोज्य पदार्थों की गुणवत्ता एवं उसकी मात्रा पर निर्भर करता है। यदि बच्चों को शुरु से ही फास्ट फूड, जल्दी-जल्दी या प्रतिदिन या उनके माँगने पर हमेशा उपलब्ध करा दिया जाता है तो फास्ट फूड बच्चों का चयनित विकल्प बन जाता है। इसके विपरीत यदि बच्चों के लिए फल एवं सब्जियों की उपलब्धता बढ़ायी जाये तो वे स्वस्थ भोजन का चयन कर अच्छी स्वास्थ्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

खाद्य कीमतों का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

खाद्य कीमतें प्रभावशाली ढंग से भोज्य पदार्थों के चयन को प्रभावित करती हैं। यह प्रभाव मूल रूप से व्यक्ति की आय एवं सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। कम आय वर्ग के लोग अधिकतर असन्तुलित आहार का उपभोग करते हैं। ऐसे लोग फल एवं सब्जियों का विशेष रूप से कम सेवन करते हैं। हालांकि उच्च वर्ग का हिस्सा होने का यह बिल्कुल मतलब नहीं है कि वह लोग स्वतः ही बेहतर गुणवत्ता का आहार या स्वस्थ भोज्य पदार्थों का चयन करेंगे। अन्तर मात्र यह है कि उच्च आय वर्ग के पास चयन करने के लिए भोज्य पदार्थों की संख्या बढ़ जाती है।

खाद्य कीमतों के बढ़ने से खाद्य एवं पोषण सुरक्षा में कमी आने लगती है। बढ़ती खाद्य कीमतों के साथ सूखा, बाढ़ या अन्य आर्थिक आपदा की स्थिति गरीब परिवारों को और ज्यादा गरीबी की ओर धकेल देते हैं जिससे उनकी पर्याप्त भोजन तक पहुँच की क्षमता काफी कम हो जाती है। खाद्य पदार्थों की कीमत बढ़ने से प्रति व्यक्ति उपभोग कम होने लगता है। वसा एवं चीनी कम कीमत पर ऊर्जा प्रदान करते हैं जिससे इनका उपयोग बढ़ जाता है जो एक स्वस्थ भोजन चयन नहीं है। सब्जियों एवं फलों के दाम बढ़ने से इसका सीधा असर उनकी खपत पर पड़ता है। सस्ते भोज्य पदार्थ स्वतः खाद्य चयन का हिस्सा बन जाते हैं। स्वस्थ भोज्य पदार्थों के चुनाव के लिए कीमतों में कमी की रणनीति अपनायी जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न 1

सही अथवा गलत बताइए।

1. सकारात्मक सामाजिक समर्थन बेहतर भोजन विकल्पों को चुनने के लिए बढ़ावा देता है।
2. एक लैक्टो- शाकाहारी आहार में दुग्ध एवं अंडे दोनों उत्पाद शामिल होते हैं।
3. शुद्ध शाकाहारियों में विटामिन बी-12 और लौह तत्व की कमी होती है।
4. उच्च वर्ग के समुदायों का आहार सदैव संतुलित एवं बेहतर गुणवत्ता का होता है।

8.3.3 घरेलू खाद्य उत्पादन, आय, स्वच्छता एवं रोगों का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

घरेलू खाद्य उत्पादन का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

भारत एक कृषि प्रधान देश है। अधिकतर किसान अपनी फसलों को पारिवारिक आय के लिए प्रयोग करते हैं। फसल का कुछ हिस्सा घरेलू उपयोग के लिए भी रख लिया जाता है। इसलिए जो भी खेत में उगाया जाता है, परिवार के लिए वही चयनित विकल्प बन जाता है। यदि घरेलू स्तर पर विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ नहीं उगाये जाते तथा बाजार से भी अन्य कुछ खरीद कर सेवन नहीं किया जाता है, तो व्यक्ति का पोषण स्तर प्रभावित हो सकता है। यदि घरेलू स्तर पर गृह बागवानी के तौर पर थोड़ी-थोड़ी मात्रा में मौसम की सब्जियाँ, फल एवं अनाज उगाया जाता है, तो पोषण स्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह प्रक्रिया प्रयोगात्मक रूप से कठिन होती है। इसलिए घरेलू खाद्य उत्पादन में मुख्य फसल के साथ कुछ सब्जियाँ एवं फल उगाये जा सकते हैं जो बाजार में उच्च मूल्य में मिलते हैं। इससे परिवार की खाद्य आपूर्ति भी पूरी होती रहती है एवं खर्च का बोझ भी नहीं पड़ता। समुदाय में समूह खेती करके सभी के लिए स्वस्थ भोजन की व्यवस्था हो सकती है।

आय का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

व्यक्ति या परिवार की आय का सीधा असर भोजन के चुनाव पर पड़ता है। जैसे यदि परिवार की आय कम है तो वह अनाज के चुनाव में सस्ता अनाज चयन करके परिवार का पालन करेगा। आय अधिक होने पर वह कई विकल्पों में से अपनी पसन्द के अनुसार एक या अधिक का चयन कर सकता है। शोधों से ज्ञात होता है कि जैसे-जैसे लोगों की आय बढ़ती है आहार हेतु उनके अनाज को चुनने की प्रवृत्ति कम हो जाती है एवं संसाधित पदार्थों के चयन की तरफ उनका झुकाव बढ़ जाता है। आय बढ़ने के साथ महँगे खाद्य पदार्थ जैसे दूध, अण्डा, मछली, मीट, फल आदि का सेवन बढ़ जाता है। आय बढ़ने पर दूध एवं फलों का चयन अवश्य रूप से किया जाता है क्योंकि इनका चयन स्वाद से भी संबंधित है।

निर्धन परिवारों में भोजन के चयन की प्रक्रिया महत्वहीन है क्योंकि आय कम होने पर उन्हें भोजन की उपलब्धता अत्यंत कम होती है। यह देखा गया है कि कुपोषण सभी आय वर्गों में व्याप्त होने लगा है। सिर्फ इसके रूप भिन्न हैं। निम्न आय वर्ग में अल्पपोषण के विभिन्न प्रकार देखे जा सकते हैं क्योंकि उनके पास उचित मात्रा में भोज्य पदार्थों के क्रय के लिए धन उपलब्ध नहीं होता है। वहीं उच्च आय वर्ग में भोजन के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था होने पर भी कुपोषण का अन्य रूप अतिपोषण व्याप्त रूप से दृष्टिगत होता है। उचित ज्ञान के अभाव के कारण या मात्र स्वाद को वरीयता देने के कारण वह स्वस्थ भोज्य पदार्थों को अपने आहार का हिस्सा नहीं बनाते हैं। इनकी भोजन

सम्बंधी आदतें या पसन्द अधिक ऊर्जा वाले पदार्थ बन जाते हैं। इसलिए आय वर्ग कोई भी हो उचित पोषण स्तर बनाये रखने के लिए पोषण ज्ञान होना आवश्यक है।

स्वच्छता का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

स्वच्छता या अस्वच्छता प्रत्यक्ष रूप से हमारे भोजन के चुनाव को प्रभावित नहीं करती है। इसके प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से देखे जाते हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि अस्वच्छ पर्यावरण के कारण व्यक्ति कई रोगों से ग्रसित हो सकते हैं। शोधकर्ताओं का मानना है कि ऐसी परिस्थितियों में रह रहे बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता क्षीण हो जाती है जिसका असर उनकी वृद्धि पर पड़ता है। गन्दगी में आसानी से फैलने वाले संक्रामक रोगों के कारण भोजन की खुराक और कम हो जाती है और पोषक तत्वों का उपयोग निम्न हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर में बीमारियों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है और इस तरह अल्प खुराक-संक्रमण का दुष्चक्र चलता रहता है। खाद्य स्वच्छता का मतलब है भोजन को स्वच्छतापूर्वक बनाना ताकि वह हानिकारक रोगाणुओं से मुक्त रहे। जो व्यक्ति स्वच्छता को प्राथमिकता देकर भोजन का चयन करते हैं, सामान्यतः उन्हें स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता। स्वच्छता सिर्फ भोजन के चयन में ही नहीं अपितु उसके निर्माण एवं प्रयोग में भी महत्वपूर्ण होती है। स्वच्छ हाथों से बनाया गया एवं स्वच्छ वातावरण में परोसा गया भोजन पौष्टिक होता है।

पर्यावरण संबंधी स्वास्थ्य की दृष्टि से सुरक्षित जल आपूर्ति और उचित स्वच्छता सुविधाओं तक पहुँच के अभाव और भोजन के उपयोग में अस्वच्छता तथा घर के भीतर और बाहर अस्वच्छ परिस्थितियों का संक्रामक रोगों के प्रसार पर काफी गहरा प्रभाव पड़ता है। बचपन में अतिसार के अधिकांश मामलों का प्रमुख कारण अस्वच्छता ही होता है। भोजन के प्रयोग में अस्वच्छता तथा आसपास के माहौल में पशु तथा मानव मल की गन्दगी फैली हो तो छोटे बच्चों की आँतों में कीड़ों के पनपने की आशंका भी अधिक रहती है जो निम्न वृद्धि और कुपोषण का कारण है। इसलिए समुदाय में उच्च स्वास्थ्य के लिए स्वच्छता संबंधी नियमों का पालन आवश्यक है।

रोगों का भोजन के चुनाव पर प्रभाव

खाद्य पदार्थों के चयन में उपरोक्त सभी कारक हमें स्वस्थ एवं निरोग रखने पर बल देते हैं। भोजन हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। किसी भी बीमारी या रोग की अवस्था में भोजन का चुनाव भिन्न हो जाता है। चाहे वह बीमारी मामूली बुखार हो या कोई संक्रमण या जीवन शैली संबंधित रोग। रोग की अवस्था में भोज्य पदार्थों का चुनाव रोगों की रोकथाम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

स्वस्थ भोज्य पदार्थों के चयन द्वारा आहार संबंधी रोगों के जोखिम को काफी कम किया जा सकता है। असन्तुलित आहार का सेवन एवं अनुचित भोज्य पदार्थों का चुनाव स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। आहार में अत्यधिक मात्रा में कार्बोहाइड्रेट एवं वसा विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न कर सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न रोगों में कुछ भोज्य पदार्थों को त्याग कर रोग के जोखिम को कम किया जा सकता है। जैसे पीलिया में वसा एवं प्रोटीन युक्त पदार्थों का कम सेवन करना चाहिए। मधुमेह में चीनी, हृदय रोग एवं उच्च रक्त चाप में वसा एवं नमक का कम प्रयोग करना चाहिए। अधिक ऊर्जा वाले फास्ट फूड और शराब का अधिक सेवन, इसके अतिरिक्त रेशेदार भोजन और हरी सब्जियाँ न खाने से पाचन तंत्र के रोगों का खतरा बढ़ जाता है।

खाद्य चुनाव को प्रभावित करने वाले कारक केवल व्यक्तिगत वरीयताओं पर आधारित नहीं होते हैं। यह सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होते हैं। कम आय एवं पोषण शिक्षा का अभाव स्वस्थ भोजन के चुनाव में सबसे बड़े अवरोध हैं। समुदाय में पोषण शिक्षा के माध्यम से आहार परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। स्वस्थ आहार वह है जो अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने या उसे सुधारने में मदद करता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन 'स्वस्थ आहार' हेतु निम्नलिखित संस्तुति करता है:

- आहार में ऊर्जा सन्तुलित मात्रा में होनी चाहिए जिससे स्वस्थ वजन की प्राप्ति की जा सके।
- कुल वसा से ऊर्जा ग्रहण सीमित मात्रा में होना चाहिए।
- संतृप्त वसा का प्रयोग कम कर असतृंप्त वसा का प्रयोग करना चाहिए।
- फलों, सब्जियों, फलियों, सम्पूर्ण अनाज के सेवन को बढ़ाना चाहिए।
- सामान्य चीनी का सेवन कम से कम करना चाहिए।
- नमक का सेवन सीमित मात्रा में करना चाहिए। सिर्फ आयोडीन नमक का ही प्रयोग करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 2

1. कुअवशोषण के कोई पाँच कारण बताइए।

    ....
    ....
    ....

8.4 पोषण शिक्षा

पोषण संबंधी समस्याओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, पहला अल्प पोषण अर्थात् पोषण संबंधी जरूरतों के अुनसार अपर्याप्त सेवन एवं दूसरा अति पोषण अर्थात् वह समस्याएँ जो भोजन की अत्यधिक मात्रा या किसी विशेष आहार घटक के अधिक सेवन से उत्पन्न होती हैं। आँकड़े बताते हैं कि आबादी का बड़ा हिस्सा इन पोषण समस्याओं से ग्रसित है। सुपोषित आबादी का प्रतिशत कम होता जा रहा है। इसलिए समुदायों के लोगों को अपने स्वभाव और जीवन शैली को बदलने की प्रेरणा देने की आवश्यकता है। इसके लिए उन्हें ऐसी पोषण शिक्षा देनी चाहिए जिससे अज्ञानता, पूर्वाग्रह एवं गलत धारणाएं दूर की जा सकें एवं लोगों के स्वभाव में सकारात्मक बदलाव लाया जा सके। पोषण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समुदाय के लोगों को उचित आहार खरीदने एवं उपभोग करने के लिए पर्याप्त जानकारी, कौशल एवं प्रेरणा प्रदान करना है।

पोषण शिक्षाः परिभाषा

विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा पोषण शिक्षा को अलगअलग तरीके से परिभाषित किया गया है।-

US Department of Agriculture, USDA 2012 के अनुसार

‘‘पोषण शिक्षा व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों को भोजन एवं जीवन शैली के बारे में सही विकल्प चुनने में मदद करती है। यह समुदाय के लोगों का शारीरिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उचित बनाये रखने में मदद करती है’’।

Society for Nutrition Education and Behavior के अनुसार

‘‘पोषण शिक्षा विभिन्न शैक्षिक रणनीतियों का संयोजन है जिसे स्वैच्छिक भोजन विकल्प अपनाने एवं उचित आहार एवं पोषण संबंधी व्यवहार स्वीकार करने के लिए परिकल्पित किया जाता है। पोषण शिक्षा समुदाय के उत्तम स्वास्थ्य एवं कल्याण में मदद करती है।’’

यूनिसेफ)2012) के अनुसार ‘व्यवहार परिवर्तन संचार’ सामान्यतः शोध के आधार पर परामर्शी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस विधि में ज्ञान, दृष्टिकोण एवं व्यवहार)Knowledge, attitude and practice(, जो वास्तविक रूप में कार्यक्रम के लक्ष्यों से जुड़े होते हैं, को संबोधित किया जाता है। इसमें प्रतिभागियों को परिभाषित रणनीतियों के माध्यम से उचित जानकारी एवं प्रेरणा प्रदान की जाती है। व्यवहार में बदलाव के लिए प्रतिभागियों की सुविधानुसार

संचार माध्यमों एवं उनकी भागीदारी का उपयोग किया जाता है। भारत में 'व्यवहार परिवर्तन संचार' के अंतर्गत बहुत से कार्य्रक्रम चलाये जा रहे हैं।

पोषण शिक्षा की अवधारणा

समुदायों में पोषण शिक्षा प्रदान करने का इतिहास काफी पुराना है। समय के साथ इसकी अवधारणा एवं प्रक्रिया में बदलाव आते गये। साठ के दशक में पोषण शिक्षा का स्वरूप उपदेशात्मक था एवं शिक्षा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया नहीं थी। उस समय पोषण शिक्षा स्वास्थ्य केन्द्रों पर 'वार्ता' के रूप में दी जाती थी। सत्तर के दशक के दौरान दुनिया भर के पोषण विशेषज्ञों ने महसूस किया कि प्रचलित पोषण शिक्षा के तरीके पोषण स्तर में सुधार लाने में प्रभावहीन हैं। यह चिंता वैश्विक अशान्ति एवं अकाल के कारण और जटिल हो गई। विभिन्न पोषण विद्वानों ने कई शोध किये और उन्होंने यह निष्कार्ष निकाला कि पोषण शिक्षा द्वारा इष्टतम प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सम्पूर्ण शारीरिक, सामाजिक एवं राजनीतिक माहौल पर विचार करना चाहिए। इसके बाद पोषण शिक्षा की अवधारणाओं, रणनीतियों एवं तरीकों में एक बड़ा बदलाव देखा गया। संदेशों के संचार के लिए पहले पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों का प्रयोग किया गया था। जब रेडियो संचार का प्रचलित माध्यम बना तो पोषण संचार संदेश रेडियो पर प्रसारित होने लगे। तकनीकी के विकास के साथसाथ - अन्य म ाध्यम जैसे टी0वी0, फिल्म, मोबाइल संदेश आदि का प्रयोग होने लगा।

पहले स्वास्थ्य कार्यकर्ता या प्रसार कार्यकर्ता पोषण शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता था। समय में बदलाव एवं पोषण कार्यक्रमों की माँग के अनुसार अब यह कार्य प्रशिक्षित पोषण कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार पहले पोषण संदेश अस्पताल में दी जाने वाली दवाई की तरह होते थे। उनका कार्य सिर्फ रोग से बचाव होता था। आजकल पोषण के सभी विषयों पर पोषण शिक्षा प्रदान की जाती है। पूर्व में पोषण शिक्षा से संबंधित ज्यादातर कर्मियों को पोषण का ज्ञान नहीं होता था। पोषण शिक्षा गतिविधियों में प्रभावी रूप से भाग लेने के लिए, पेशेवर कर्मियों को पोषण शिक्षा के ज्ञान पर अब बल दिया जाने लगा है। बदलते समय के साथसाथ पोषण शिक्षा जो पहले - औपचारिक रूप से प्रदान की जाती थी, अब उसे अनौपचारिक विधियों जैसे फिल्म, टी0वी0 प्रोग्राम, चर्चा आदि द्वारा समुदाय के सदस्यों की भागदारी को मिला कर प्रदान की जाती है। पोषण शिक्षा की अवधारणा कुछ भी रही हो, शुरुआत से वर्तमान तक इसका उद्देश्य समुदायों का उच्च स्वास्थ्य एवं कल्याण ही है।

पोषण शिक्षा की भूमिका

घरेलू खाद्य सुरक्षा के लिए पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन का सेवन आवश्यक है। हालांकि अच्छे स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर को बनाये रखने के लिए व्यक्ति को पर्याप्त ज्ञान एवं कौशल की भी आवश्यकता होती है जिससे वह विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ उगा, खरीद, संसाधित, तैयार एवं सही मात्रा में उपभोग और संयोजित कर सके। इसके लिए सभी व्यक्तियों को पौष्टिक सन्तुलित आहार के विषय में बुनियादी ज्ञान की आवश्यकता होती है। उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि उपलब्ध संसाधनों के उपयोग से पोषण संबंधी आवश्यकताओं को कैसे पूर्ण किया जा सकता है। अक्सर अपर्याप्त ज्ञान, परंपराओं और वर्ज्यों के कारण या आहार और स्वास्थ्य के संबंध को उचित प्रकार से न समझ पाने के कारण कई अवांछनीय खानपान की आदतें एवं पोषण संबंधी प्रथाएं - प्रचलित होती हैं जो पोषण स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।यह व्यक्तियों को पर्याप्त सन्तुलित आहार के लिए उपलब्ध भोज्य पदार्थों में से उचित विकल्प चुनने में मदद करती है।

पोषण शिक्षा को तब तक सफल नहीं माना जाता जब तक उसका प्रभाव व्यवहार में बदलाव के रूप में न देखा जाए। वांछनीय पोषण प्रथाओं को अपनाने के लिए व्यवहार में परिवर्तन जैसे अपने खेतों, उद्यानों में हरी पत्तेदार सब्जियों को उगाना एवं उपभोग करना शामिल हो सकता है। छोटेछोटे - परिवर्तन जैसे सब्जियों को धोकर काटना, समयसमय पर हाथ धोना-, आसपास साफ सफाई रखना आदि बड़े बदलाव की शुरुआत होते हैं। प्रभावी पोषण शिक्षा कार्यक्रमों की योजना एवं क्रियान्वयन इस प्रकार होना चाहिए ताकि लाभार्थियों को कौशल और आत्मविश्वास विकसित करने के लिए प्रेरित किया जा सके ताकि वह सकारात्मक एवं स्थायी प्रथाओं को अपने जीवन में अपना सकें।

पोषण शिक्षा की भूमिका

- ज्ञान का प्रसार
- जागरुकता
- प्रेरणा स्त्रोत
- व्यवहार में बदलाव
- स्वास्थ्य में सुधार
- समुदाय का विकास
- कौशल विकास
- आत्मविश्वास का विकास
- पोषण स्तर में सुधार

8.5 सामुदायिक पोषण शिक्षा

लक्ष्य

- समुदाय, जिला, प्रान्त तथा राष्ट्रीय स्तर पर संस्थागत क्षमता के विकास तथा एकीकृत समुदाय आधारित कार्यक्रमों के माध्यम से घरेलू खाद्य शिक्षा के स्थायी तरीकों में सुधार, खाद्य असुरक्षित तथा कमजोर समूहों में खाद्य पोषण तथा उचित आजीविका साधन की उपलब्धता।
- समुदायों तथा परिवारों के भोजन, पोषण तथा स्वास्थ्य पर आधारित ज्ञान को बढ़ाना।
- बच्चों तथा मातृ पोषण के आधार की गुणवत्ता में सुधार, पर्याप्त पोषक तत्वों के सेवन तथा बेहतर पथ्य उपयोग हेतु सकारात्मक दृष्टिकोण तथा व्यवहारिक बदलाव को बढ़ावा देना।
- सामुदायिक पोषण के प्रवेश स्तर पर खाद्य एवं पोषण परामर्शदाता कई प्रकार के कार्य करते हैं जैसे,
- ग्राहकउपभोक्ता को सलाह/
- समुदाय को शिक्षित करना
- एजेंसी के भीतर पोषण सेवाओं को निर्देशित करना

उद्देश्य

- पोषण शिक्षा को परिभाषित करना तथा ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन के कारणों को बताना।
- समुदाय में पोषण शिक्षा प्रदान करने हेतु विभिन्न तरीकों तथा सहायता सामग्री की सूची का निर्माण तथा वर्णन।
- महिलाओं तथा बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार लाना तथा पर्याप्त वृद्धि आश्वस्त करने हेतु स्वास्थ्य तथा पोषण शिक्षा गतिविधियों में सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देना।
- सार्वजनिक नीतियों के प्रभाव से पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उपयोग को बढ़ावा देना।
- खाद्य पदार्थों के पोषण मूल्य में वृद्धि करना।
- स्वस्थ भोज्य पदार्थों के इस्तेमाल हेतु व्यक्तिगत कौशल विकसित करना।

8.6 पोषण शिक्षा प्रदान करने के तरीके

समुदाय में पोषण शिक्षा प्रदान करने के कई तरीके हैं।

पोषण शिक्षा के तरीके

सम्पर्क विधि द्वारा	दूरस्थ विधि द्वारा
व्यक्तिगत बैठक	टीवी, वीडियो, फिल्म

छोटे समूहों में बैठक	रेडियो तथा कम्प्यूटर द्वारा

सम्पर्क विधि द्वारा पोषण शिक्षा का हस्तांतरण

इस पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि स्रोत रिसीवर से अकेले या छोटे समूहों में मिलता है। यह उन्हंक आपसी घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने में मदद करता है। जो प्रभावी अध्यापन तथा सीखने में मदद करता है। वे लगातार एक दूसरे से बात कर सकते हैं, सवाल पूछ सकते हैं तथा उनका स्पष्टीकरण कर सकते हैं। सम्पर्क विधि की मदद से स्रोत रिसीवर की जरूरतों के हिसाब से सन्देश को संशोधित कर प्रभावी बना सकता है।

- **व्यक्तिगत बैठक:** व्यक्तिगत बैठक में सीखने के कई फायदे हैं। सवाल पूछने वाला उत्तर देने वाले से स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकता है। स्रोत भी स्वयं के संदेशों को सुदृढ कर सवाल पूछने वाले को सीखने के लिए उत्साहित कर सकते हैं। इस विधि का नुकसान यह है कि इसमें समय अधिक लगता है। इस तरह की बैठकें अनौपचारिक होती हैं तथा घर पर ही आयोजित की जाती हैं।
- **छोटे समूहों द्वारा:** व्यक्तिगत बैठकों की अपेक्षा छोटे समूहों में बैठक एक अच्छा विकल्प है तथा दोनों के लाभ समान हैं। इस विधि में अपेक्षाकृत कम समय लगता है। इस विधि द्वारा शिक्षा प्रदान करने में उचित तथा अच्छे परिणामों के लिए यह जरूरी है कि समूह में तीस से ज्यादा सदस्य न हो। बड़े समूहों में स्रोत तथा श्रोता के मध्य सम्पर्क कम हो पाता है फलस्वरूप यह कम प्रभावी हो पाता है।

छोटे समूह या व्यक्तिगत रूप में शिक्षण के लिए निम्न में किसी भी विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

- व्याख्यान)lecture)
- नाटक)drama)
- विचार) विमर्श-discussion)
- भूमिका
- अनुभव बांटना
- बहस)debate)
- रेडियो

- टीवी, वीडियो
- ग्राफिक्स
- फिल्म
- मॉडलवस्तुओं/
- कम्प्यूटर प्रिन्ट

दूरस्थ विधि द्वारा पोषण शिक्षा का हस्तांतरण

दूरस्थ तरीकों द्वारा रेडियो, टीवी, मुद्रित सामग्री, फिल्म आदि के माध्यम से संदेश किसी दूरी पर लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। इस तरह एक ही समय में अलग अलग स्थानों पर कई व्यक्तियों के साथ संचार सम्भव है।

पोषण शिक्षा की यह पद्धति कम लागत होने के कारण अधिक प्रभावशाली है। इसमें कम समय में लोगों की बड़ी संख्या के साथ सम्पर्क किया जा सकता है। परन्तु यह पद्धति लोगों के सीधे सम्पर्क में न होने के कारण सम्पर्क विधियों से कम प्रभावी है। लोगों को नया सन्देश देने तथा उनकी विचारधारा बदलने के लिए संदेश को कई बार दोहराना पडता है।

समुदाय में पोषण शिक्षा के माध्यम

पोषण शिखा को कई माध्यमों से प्रदान किया जा सकता है।

स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा	कालेजों द्वारा/महिला संगठनों के द्वारा	स्कूल
व्यक्तिगत परामर्श	महिला मण्डल	आंगनबाड़ी केन्द्र
व्याख्यान एवं प्रदर्शन	महिला क्लब	प्राइमरी स्कूल
पूरक आहार कार्यक्रम		

8.7 पोषण शिक्षा की विभिन्न विधियाँ

पोषण शिक्षा की महत्वपूर्ण प्रणालियाँ निम्न प्रकार हैं :

व्याख्यान और प्रदर्शन

समुदाय में दिए जाने वाले व्याख्यान तथा प्रदर्शन सरल तथा व्यावहारिक होने चाहिए जिससे वह समुदाय द्वारा अपनाए जा सकें। व्याख्यान देना प्रदर्शन से सरल होता है क्योंकि इसमें अतिरिक्त व्यक्ति की आवश्यकता नहीं होती। प्रदर्शनी में सीखने वाले समूह के सदस्यों को शामिल करना समुदाय की आहार व्यवस्था को बदलने तथा उन्नत करने में अधिक प्रभावशाली होता है।

पोस्टर चार्ट और प्रदर्शनी

पोस्टर सरल, स्पष्ट तथा रंगों तथा क्षेत्रीय भाषा व्यवस्था में, सुन्दर होना चाहिए। पोस्टर द्वारा लोगों की रूचि को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। चार्ट में बड़े अक्षरों का प्रयोग करना चाहिए जिससे वह दूर से ही नजर आ सकें। चार्ट और पोस्टर प्रदर्शनी समुदाय को शिक्षित करने हेतु एक स्थायी तरीका है। सामुदायिक स्थानों, विद्यालयों, चिकित्सालयों, पंचायत आदि में पोषण प्रदर्शनी सामुदायिक स्वास्थ्य हेतु लाभकारी है।

कार्यशालाएँ

कार्यशालाओं में किसी भी सामुदायिक क्षेत्र की पोषण समस्याओं पर विचार विमर्श किया जा सकता है तथा पोषण स्तर में सुधार के लिए समाधान निकाले जा सकते हैं।

फिल्म, स्लाइड शो

यह समुदाय को शिक्षित करने हेतु अत्यंत प्रभावशाली प्रणाली है। यह प्रणाली व्यवहारिक, उदाहरणयुक्त तथा इस प्रकार होनी चाहिए जिसे लोग आसानी से समझ सकें। गर्भवती तथा धात्री मात्राओं के स्वयं के तथा बच्चों के पोषण स्तर को सुधारने में यह प्रणाली बहुत प्रभावी है तथा यह लोगों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन भी लाती है।

पुस्तकें, बुलेटिन और समाचार पत्र

पोषण तथा पथ्य संबधी मुद्रित सार, छात्रों, शिक्षकों तथा विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत लोगों को शिक्षित करने हेतु उपयुक्त है। यह क्षेत्रीय भाषाओं में कम लागत मूल्य पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए। पोषण क्षेत्र में लोकप्रिय लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित किए जा सकते हैं।

रेडियो, टेलीविजन और मोबाइल फोन

समुदाय में बड़ी संख्या में लोगों को एक ही निर्धारित समय में रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से शिक्षित किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पोषण शिक्षा हेतु रेडियो एक अच्छा संचार माध्यम है। लोकप्रिय वार्ता, विचार विमर्श, साक्षात्कार, परामर्श आदि के प्रसारण से रेडियो द्वारा लोगों को शिक्षित किया जा सकता है। वर्तमान समय में मोबाइल फोन पोषण सम्बंधी जानकारी प्रदान करने का एक बेहतरीन माध्यम है जो एक निश्चित आयु वर्ग तक सीमित नहीं है। पोषण ज्ञान से सम्बंधित चित्रों, वीडियो, फिल्म, लेखों, डिजिटल खेलों इत्यादि द्वारा समुदाय के एक विस्तृत भाग को शिक्षित किया जा सकता है। इस माध्यम की समुदाय में पहुँच भी बहुत विस्तृत है।

सामुदायिक घटनाएँ तथा अभियान

समुदाय में एक बड़े पैमाने पर शिक्षा, मेलों, प्रदर्शनियों सामुदायिक त्यौहारों, अभियान आदि द्वारा संभव है। इस की सफलता के लिए उचित तथा पर्याप्त धनराशि की आवश्यकता होती है। व्यापक रूप से ज्ञात वक्ताओं द्वारा व्याख्यान और प्रदर्शनी जनसमूह को आकर्षित करने में मदद करती है। इस तरह के सामूदायिक कार्यों में पोषण से संबंधित शैक्षिक सामग्री मुफ्त में वितरित की जा सकती है ताकि यह सामग्री लोगों को लाभान्वित कर सके। इन सम्मेलनों में व्यक्ति द्वारा बूथ पर पोषण शिक्षकों द्वारा संपर्क किया जा सकता है।

पोषण सेवाओं एवं पोषण स्तर संवर्द्धन हेतु सूचना एवं संप्रेषण तकनीक

क्रमांक	आई. सी. टी. टूल	अनुप्रयोग
1.	मोबाइल / स्मार्टफोन	1. मोबाइल द्वारा ऑडियो-वीडियो सन्देश मोबाईल एप्लीकेशन, एलर्ट, एलर्ट काल, नियमित स्वास्थ्य चैक अप तथा ग्रामीणों के पोषण अन्तग्रहण के सम्बन्ध में। 2. पोषण सम्बन्धी सूचनायें / जानकारी। सर्वोत्तम प्रथायें / इत्यादि को प्रोत्साहन 3. मोबाइल आधारित अनुप्रयोगों द्वारा निगरानी एवं फीडबैक (प्रतिक्रिया) प्राप्त करना।
2.	वैब	1. प्रस्तावित आहार आवश्यकतायें (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज, आहारीय रेशी का प्रसार/सूचना विस्तारण । 2. पोषण अभियान संगठन तथा ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता कार्यक्रम
3.	विशिष्टीकृत प्रणाली	1. आहारीय अर्न्तग्रहण (ग्रहण किये गये भोजन की मात्रा), कैलोरी आवश्यकता का विश्लेषण। 2. आवश्यक पोषक तत्वों की मात्रा का विश्लेषण। 3. पोषण सम्बन्धी ज्ञान, सर्वोत्तम प्रथाओं (Best practices) इत्यादि के प्रचार, प्रसार अनुप्रयोग हेतु साहित्य विकसित (content develop) करना ।
4.	पोषण पोर्टल	1. आयु के अनुरूप विभिन्न पोषक तत्वों की मात्रा आवश्यकता एवं स्रोतों का पता लगाना। 2. पोषण समृद्ध खान-पान आदतों का प्रसार एवं प्रोत्साहन

		3. पोषण जनित व्याधि एवं इनके उपचार सम्बन्धी सूचना
5.	ई -वीडियो-पुस्तकालय	1. उपलब्ध खाद्य अन्न, सब्जियों, पोषण समृद्ध खाद्य पदार्थों में निहित पोषक तत्वों के शरीर में समुचित उपयोग हेतु पाक विधियाँ 2. पोषण समृद्ध खानपान आदतों का प्रसार एवं प्रोत्साहन- 3. पोषण जनित व्याधियों एवं इनके उपचार सम्बन्धी जानकारी। 4. पोषण विज्ञान सम्बन्धी मल्टीमीडिया उपलब्ध कराना। 5. विभिन्न आयु वर्ग (जीवन चक्र की अवस्थाओं के आधार पर) के अनुसार पोषण समृद्ध खाद्य समूह की जानकारी प्रदान करने सम्बन्धी
6.	पोषण/स्वास्थ्य एप	1. पोषण-स्वास्थ्य खान-पान सम्बन्धी सामान्य से लेकर विशिष्ट जानकारी। 2. व्यक्ति अनुकूलित (Customized) आहार सूचनायें । 3. पोषण विज्ञान का व्यावहारिक अनुप्रयोग। 4. सरल उपलब्धता, सरल एवं समय बचाने वाली तकनीक। 5. पुर्न उत्पादित (Reproducible) की जा सकने योग्य तकनीक।

8.8 सारांश

भोजन संबंधी आदतें या भोज्य पदार्थों का चुनाव व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय कारकों से प्रभावित होता है। इन्हीं भोज्य आदतों या पसन्द पर हमारा पोषण स्तर निर्भर करता है। यदि भोज्य पदार्थों की चयन प्रक्रिया में स्वस्थ भोज्य पदार्थ चुने जाते हैं तो वह पोषण स्तर को उचित रखने में मदद करते हैं। यदि निर्धनता, बेरोजगारी, अकाल, पसन्द, नापसन्द, वितरण व्यवस्था आदि के कारण स्वस्थ भोज्य पदार्थों का चुनाव नहीं हो पाता है तो व्यक्ति असन्तुलित आहार का सेवन करता है। लम्बे समय तक इस प्रकार का भोजन पोषक तत्वों की कमी पैदा करता है। विभिन्न प्रकार की खाद्य मान्यताएं, व्यक्तिगत मूल्य, प्रथाएं एवं विचारधारा भी भोजन चुनाव को प्रभावित करती हैं। यह प्रभाव सकारात्मक या नकारात्मक दोनों ही प्रकार के परिणाम प्रस्तुत कर सकते हैं। भोजन चुनाव में सबसे महत्वपूर्ण कारक शिक्षा एवं पोषण ज्ञान है। शिक्षा के अभाव में संसाधन उपलब्ध होते हुए भी उनका उपयोग ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। उचित शिक्षा एवं पोषण ज्ञान समुदायों को सकारात्मक भोज्य पदार्थों के चुनाव के लिए प्रेरित करता है। अन्य

महत्वपूर्ण कारक जो भोजन के चुनाव को प्रभावित करता है, वह है स्वच्छता। बहुत से लोग इस पहलू पर ध्यान नहीं देते हैं। वे जैसा भोजन उपलब्ध होता है वैसा ही उपयोग कर लेते हैं। इससे वह बीमारी के दुष्चक्र में फंस कर कुपोषित हो जाते हैं। उन्हें भोजन, जल एवं वातावरण सभी की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए। समुदायों के पोषण स्तर को प्रभावित करने वाला अन्य कारक कुअवशोषण है। शरीर में जब अवशोषण प्रक्रिया में समस्या आती है उसे कुअवशोषण कहते हैं। पोषण तत्वों के कुअवशोषण से विभिन्न प्रकार के पोषण जनित रोग या कुपोषण हो सकता है।

8.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **मूल्य:** व्यक्तिगत सोच
- **मितव्ययिता:** कम खर्च करने की आदत
- **निरामिष:** शाकाहारी
- **कुअवशोषण:** पाचन संस्थान पथ में भोजन से प्राप्त पोषक तत्वों के अवशोषण में होने वाली गड़बड़ी से उत्पन्न होने वाली स्थिति।
- **लैक्टोज असहिष्णुता:** दूध में उपस्थित लैक्टोज का शरीर द्वारा पाचन न हो पाने से उत्पन्न स्थिति।

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

सही अथवा गलत बताइए।

1. सही
2. गलत
3. सही
4. गलत

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. सीमित उपलब्धता
   b. क्षीण

c. वसा एवं प्रोटीन

d. चयनात्मक

2. कुअवशोषण के कारण:

- पित्त अम्ल या एंज़ाइम की कमी
- आंत्र विभाजन (Bowel resection)
- श्लैष्मिक सतह की क्षति
- अवशोषण संबंधी जन्मजात रोग
- नाड़ी या लसिका असमान्यता

8.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

- Stanfield P. Hui Y.H. 2010. Nutrition and diet therapy. 5th ed. Jones and Bartlett publishers LLC. London 25-35 pp.
- EUFIC Review 4/2005. The Determinant of food choice.

इंटर्नेट स्रोत: www.weebly.com

8.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भोजन चुनाव को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को विस्तार से समझाइए।
2. भोज्य पदार्थों के चुनाव से पोषण स्तर किस प्रकार प्रभावित होता है?
3. कुपोषण एवं कुअवशोषण में संबंध का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।

खण्ड 3: पोषण तथा देखभाल

इकाई 9: पोषण ज्ञान का आकलन

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 पोषण ज्ञान का आंकलन: अनौपचारिक चर्चा, सरल प्रश्नावली एवं तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal) द्वारा
9.4 पोषण शिक्षा
9.4.1 पोषण शिक्षाः परिभाषा
9.4.2 पोषण शिक्षा की अवधारणा
9.4.3 पोषण शिक्षा की भूमिका
9.4.4 पोषण शिक्षा कार्यक्रम- औचित्य, योजना बनाना, निष्पादन और मूल्यांकन
9.5 सारांश
9.6 पारिभाषिक शब्दावली
9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

समुदाय का पोषण स्तर सुधारने के लिए किसी भी कार्यक्रम को शुरु करने से पूर्व उस समुदाय का पोषण ज्ञान जानना जरूरी है। कुपोषण के सभी रूपों को रोकने के लिए समुदाय के लोगों को सिर्फ भोजन की उपलब्धता एवं उनकी आर्थिक स्थिति ही उचित नहीं होनी चाहिए अपितु उन्हें एक स्वस्थ आहार के सभी तत्वों के बारे में पूरी जानकारी भी होनी चाहिए। समुदायों को विशेष रूप से जानकारी होनी चाहिए कि पोषण से संबंधित ऐसे कौन-से स्वास्थ्य मुद्दे हैं जो उनके समुदायों को प्रभावित करते हैं एवं कैसे उनकी रोकथाम के लिए स्थानीय स्तर पर उपलब्ध खाद्य पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है।

पोषण शिक्षा के माध्यम से व्यवहार में संशोधन, स्वास्थ्य संवर्धन एवं नीति में बदलाव लाये जा सकते हैं। इसके लिए ऐसे पोषण शिक्षा कार्यक्रमों का नियोजन करना होगा जो समुदाय के सभी लोगों को संबोधित करते हों। समुदाय में पोषण शिक्षा प्रदान करने का अन्तिम उद्देश्य स्वस्थ भोजन

की प्रथाओं को अपनाने के लिए व्यक्तिगत कौशल और प्रेरणा का विकास होना चाहिए। पोषण शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर पर व्यवसायिक क्षमता का निर्माण करने की तत्काल आवश्यकता है। स्वास्थ्य में सुधार के लिए संयुक्त राष्ट्र के समग्र प्रयासों में पोषण शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसलिए पोषण शिक्षा को औपचारिक शिक्षा का आवश्यक अंग बनाये जाने पर बल दिया जाना चाहिए जिससे सामाजिक एवं आर्थिक विकास को भी बढ़ावा मिल सके।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप;

- पोषण ज्ञान के आंकलन की विविध विधियों के बारे में जान पायेगें;
- पोषण ज्ञान का आंकलन करने के लिए प्रश्नावली तैयार कर सकेंगे;
- पोषण शिक्षा की परिभाषा एवं अवधारणा समझ सकेंगे;
- पोषण शिक्षा के महत्व को बता सकेंगे; तथा
- पोषण कार्यक्रमों के नियोजन, कार्यान्वयन एवं मूल्यांकन करने की विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

9.3 पोषण ज्ञान का आंकलन: अनौपचारिक चर्चा, सरल प्रश्नावली एवं तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal) द्वारा

पोषण ज्ञान को पोषक तत्वों के ज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया है। यह पोषण से जुड़े मूल तथ्यों से परिचय, जागरुकता एवं समझ का सम्मिश्रण है। इसके अन्तर्गत आहार एवं पोषण से संबंधित तथ्यों, जानकारी, विवरण या कौशल को सम्मलित किया जाता है। यह ज्ञान अनुभव, शिक्षा, खोज या सीखने से प्राप्त किया जा सकता है। शोधों से ज्ञात होता कि पोषण ज्ञान, भोजन संबंधी आदतों को प्रभावित करने वाला एक प्रभावशाली कारक है। इसलिए यदि समुदाय में पोषण संबंधी स्वास्थ्य समस्या के बारे में जागरुकता लानी है तो समुदाय के पोषण ज्ञान को जानकर उसमें बदलाव लाना चाहिए।

समुदाय में पोषण ज्ञान के आंकलन के लिए कई विधियों का प्रयोग किया जाता है:

1. अनौपचारिक चर्चा
2. सरल प्रश्नावली

3. तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal-RRA)

आइए, प्रत्येक के बारे में विस्तृत व्याख्या करें।

1. अनौपचारिक चर्चा

इस विधि से समुदाय का पोषण ज्ञान जानने के लिए लक्षित समूह (आयु विशेष समूह, माताएं, किशोर-किशोरियाँ आदि) को एकत्रित कर पोषण संबंधी विषय पर चर्चा की जाती है। इस अनौपचारिक चर्चा में कोई भी निर्धारित प्रश्न नहीं होते हैं। इस प्रकार की चर्चा से समुदाय के लोगों की जानकारी के स्तर का पूर्ण आंकलन किया जा सकता है। चर्चा में सन्तुलित आहार, पोषक भोज्य पदार्थ, पकाने की विधि आदि किसी भी विषय विशेष पर सामान्य बातें की जाती हैं। यह विधि एक पारस्परिक संचार का कार्य करती है। इसका उद्देश्य पूरे सामाजिक समूह के व्यवहार में बदलाव लाना है। इस विधि के द्वारा एक विशिष्ट विषय के बारे में राय, विश्वास, दृष्टिकोण एवं मूल्यों पर गुणात्मक आँकड़े प्राप्त किये जा सकते हैं।

एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता के मार्गदर्शन के अन्तर्गत 8-12 व्यक्तियों के समूह के लिए विशिष्ट विषय पर चर्चा संयोजित की जाती है। जिस समूह के साथ चर्चा करनी होती है, उसका स्वरूप बहुत भिन्न नहीं होना चाहिए। समूह समरूप है या नहीं इसको सुनिश्चित करने के लिए कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं पर ध्यान देना आवश्यक है:

- चर्चा का विषय
- लक्षित समूह
- समूह की समरूपता
- मातृत्व से संबंधित मुद्धों पर महिलाओं के विभिन्न प्रकार के समूहों में चर्चा करनी चाहिए जैसे संतान का होना, महिलाओं में साक्षरता आदि।

विधि

समूह बनाने के पश्चात् उन्हें एकत्रित कर किसी विषय विशेष पर चर्चा शुरु की जाती है। समूह के सभी व्यक्ति चर्चा में भाग लेते हैं। सभी लोग उस विषय पर अपने विचार देते हैं जिससे शोधकर्त्ता उनके ज्ञान के विषय में निष्कर्ष निकालता है।

2. सरल प्रश्नावली

पोषण ज्ञान व्यक्ति की पोषण समझ को दर्शाता है। इसमें भोजन एवं पोषण संबंधी शब्दावली, जानकारी और तथ्यों को याद रखने की बौद्धिक क्षमता भी सम्मलित है। प्रश्नावली विधि में एक प्रश्नावली/अनुसूची तैयार करके सर्वेक्षण किया जाता है। पोषण ज्ञान के आंकलन के लिए प्रश्नावली सावधानी से तैयार की जानी चाहिए। पोषण ज्ञान के आंकलन में प्रयुक्त होने वाली प्रश्नावली अनेक प्रश्नों से युक्त सूची होती है जिसमें अध्ययन विषय से जुड़े विभिन्न पक्षों के बारे में प्रश्नों का समावेश होता है। प्रश्नावली में मुख्य रूप से 'संवृत' (Closed) प्रश्नों को सम्मलित किया जाता है जिससे प्राप्त उत्तरों के विश्लेषण में सुविधा रहती है।

ज्ञान का स्तर या अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्नों को आंशिक रूप से वर्गीकृत किया जाता है। इन प्रश्नों को 'विवृत' (Open) रखा जाता है। विवृत प्रकार के प्रश्नों में उत्तरदाता उत्तरों को अपनी इच्छानुसार बताने के लिए स्वतन्त्र होता है। इन प्रश्नों के साथ सही उत्तरों की सूची तथा अन्य विकल्प जैसे 'अन्य' एवं 'पता नहीं' भी सम्मलित किये जाते हैं। पूर्वनिर्धारित विकल्प, अपेक्षित उत्तरों से विश्लेषण को आसान बना देते हैं। सर्वेक्षक प्रश्न पूछने के बाद उत्तरदाता की प्रतिक्रिया या उत्तर को भली-भाँति नोट करता है और पूर्व निर्धारित प्रतिक्रिया विकल्पों के अनुसार उसे वर्गीकृत करता है। ज्ञान से संबंधित प्रश्नों के एक या कई उत्तर हो सकते हैं। इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता होती है कि उत्तरदाता प्रश्नावली में दिये गये विकल्प के अनुरूप ही प्रतिक्रिया दे। यह पूर्णतः सर्वेक्षक पर निर्भर करता है कि वह उसकी प्रतिक्रिया का अर्थ समझे और निकटतम विकल्प को चुने।

प्रश्नावली के प्रश्नों के उदाहरण

- एक ही उत्तर के प्रश्न

सर्वेक्षक: बच्चों को किस उम्र से माँ के दूध के अलावा अन्य खाद्य पदार्थ देने शुरु करने चाहिए?

उत्तरदाता

....

- ☐ छह माह पर
- ☐ अन्य
- ☐ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

- ☐ पता है
- ☐ नहीं पता है

➢ कई उत्तर वाले प्रश्न

सर्वेक्षक: कीटाणुओं से बचने के लिए हाथ कब-कब धोने चाहिए?

उत्तरदाता:

....

- ▫ शौचालय जाने के बाद
- ▫ कच्चे खाद्य पदार्थ को सम्भालने के बाद
- ▫ बच्चे को साफ करने के बाद
- ▫ कचरा फेंकने के बाद
- ▫ भोजन पकाने से पहले
- ▫ झाड़ू पोछा करने के बाद
- ▫ बच्चे को खाना खिलाने के बाद
- ▫ अन्य
- ▫ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

- ▫ पता है
- ▫ नहीं पता है
- ▫ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या...........

प्रश्नावली का प्रारम्भिक विश्लेषण

पोषण ज्ञान के आंकलन में सर्वेक्षक के लिए प्रत्येक प्रश्न का प्रारभिक विश्लेषण करने के लिए एक अलग कोष्ठक बनाया जाता है। यदि प्रश्न का एक ही सही जवाब होता है तो उसके विश्लेषण के लिए ‘‘पता है’’ एवं ‘‘पता नहीं है’’ के विकल्प होते हैं। जिन सवालों के कई उत्तर होते हैं उनका विश्लेषण उत्तरदाता द्वारा प्रतिक्रिया पर निर्भर करता है। यदि उत्तरदाता एक या उसके अधिक या मिलती-जुलती प्रतिक्रिया देता है तो उसे ‘‘पता है’’ के वर्ग में रखते हैं। यदि उत्तरदाता कोई भी सही जवाब नहीं देता है तो उसे ‘‘पता नहीं है’’ के वर्ग में रखते हैं। इसके बाद एक कोष्ठक में ‘‘सही प्रतिक्रियाओं की संख्या’’ का विकल्प भी दिया जाता है। इस विकल्प का प्रयोग सही उत्तरों की संख्या को इंगित करने के लिए किया जाता है। यदि सर्वेक्षक के पास उचित विश्लेषणात्मक कौशल है तो वह सर्वेक्षण के दौरान ही प्रारंभिक विश्लेषण कर सकता है।

प्रश्नों के अन्य प्रकार

पोषण ज्ञान को बहुविक्लपीय प्रश्नों या सही/गलत प्रश्नों के माध्यम से भी मापा जा सकता है। सामान्यतः इस तरह के प्रश्नों के प्रयोग से बचना चाहिए क्योंकि उत्तरदाता अनुमान लगाकर भी उत्तर दे सकता है जिससे पोषण ज्ञान का आंकलन गलत हो सकता है।

पोषण ज्ञान को नापने के संकेतक

पोषण ज्ञान को संकेतक संख्या, प्रतिशत या स्कोर के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है।

संख्यात्मक संकेतकों के उदाहरण

- एक प्रश्न का सही उत्तर देने वाले उत्तर देने वाले उत्तरदाताओं की संख्या।
- एक प्रश्न का सही उत्तर न जानने वाले उत्तरदाताओं की संख्या।
- एक प्रश्न के सभी उत्तरों को सही जानने वाले उत्तरदाताओं की संख्या।
- एक प्रश्न के तीन उत्तरों को सही जानने वाले उत्तरदाताओं की संख्या आदि।

इसी प्रकार उपरोक्त आँकड़े प्रतिशत के रूप में भी दर्शाये जा सकते हैं। यदि आँकड़ों को स्कोर के रूप में प्रस्तुत करना हो तो इसके लिए उत्तरदाता के सही उत्तर के अनुसार स्कोर निकाला जाता है। प्रत्येक प्रश्न के सही उत्तर को एक स्कोर दिया जाता है। किसी भी उत्तरदाता का कुल स्कोर या सभी उत्तरदाताओं के किसी एक प्रश्न से संबंधित कुल स्कोर से पोषण ज्ञान के होने या न होने का निष्कर्ष निकाला जाता है। माना जाता है कि 70 प्रतिशत या उससे कम सही उत्तर की दशा में समुदाय को पोषण शिक्षा की त्वरित आवश्यकता होती है। 71-89 प्रतिशत सही उत्तरों की दशा में पोषण शिक्षा लाभ दिया सकता है। 90 प्रतिशत या उससे अधिक उत्तर सही प्राप्त करने की दशा में समुदाय को पोषण शिक्षा की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नावली द्वारा पोषण ज्ञान के आंकलन के लिए शिशुओं (0-6 माह) के पोषण से संबंधित ज्ञान के लिए प्रश्नावली का उदाहरण

नोट: इस प्रकार के सर्वेक्षण के लिए सर्वेक्षक महिला होनी चाहिए जिससे माता को उत्तर देने में परेशानी न हो। उत्तरदाता को पहले ही समझा देना चाहिए कि सर्वेक्षक उनसे शिशु के खान-पान के विषय कुछ प्रश्न पूछेगी।

1. स्तनपान से सम्बंधित प्रश्नावली

उत्तरदाता का नाम:

उम्र:

लिंग:

प्र0-1 (क) कल आपने शिशु को (शिशु का नाम) अपना दूध दिन में या रात में पिलाया था?

- ▫ हाँ
- ▫ नहीं
- ▫ पता नहीं/कोई उत्तर नहीं

(ख) क्या शिशु ने निम्नलिखित में से किसी तरल पदार्थ का सेवन किया है?

सादा पानी	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
शिशु आहार	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
दूध (पशु या डिब्बे का)	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
फलों का रस	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
दाल का पानी	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
दही	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं
कोई और तरल	▫ हाँ	▫ नहीं	▫ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

इन प्रश्नों से सर्वेक्षक को ज्ञात करना होता है कि शिशु आहार हेतु सिर्फ स्तनपान पर निर्भर है या नहीं

- ▫ सिर्फ स्तनपान
- ▫ सिर्फ स्तनपान नहीं

प्र0-2 (क) नवजात शिशु को प्रथम भोजन क्या देना चाहिए?

- ▫ सिर्फ माँ का दूध
- ▫ कुछ और
- ▫ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

- ▫ पता है
- ▫ नहीं पता है

(ख) क्या आपने शिशु हेतु सिर्फ स्तनपान के बारे में सुना है?

- ☐ हाँ
- ☐ नहीं
- ☐ पता नहीं/कोई उत्तर नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
☐ पता है
☐ नहीं पता है

(ग) शिशु हेतु सिर्फ स्तनपान से आप क्या समझते हैं?

- ☐ शिशु को 6 माह तक सिर्फ माँ का दूध पिलाना और कुछ नहीं
- ☐ कुछ और
- ☐ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
☐ पता है
☐ नहीं पता है

प्र0-3 शिशु को कब तक सिर्फ माँ का दूध देना चाहिए?

- ☐ जन्म से 6 माह
- ☐ कुछ और
- ☐ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
☐ पता है
☐ नहीं पता है

प्र0-4 शिशुओं को 6 तक सिर्फ माँ का दूध ही क्यों देना चाहिए?

- ☐ क्योंकि माँ के दूध में 6 माह तक के शिशु की पोषण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में पोषक तत्व होते हैं।
- ☐ क्योंकि शिशु 6 माह तक अन्य भोज्य पदार्थ नहीं पचा सकता है।

- □ अन्य
- □ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
□ पता है
□ नहीं पता है

प्र0-5 छह माह तक के शिशु को दिन में कितनी बार माँ का दूध देना चाहिए?

- □ जब शिशु को आवश्यकता हो या जब वो भूखा हो
- □ अन्य
- □ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
□ पता है
□ नहीं पता है

प्र0-6 सिर्फ स्तनपान से शिशु को क्या लाभ होता है?

- □ शिशु की वृद्धि एवं विकास होता है।
- □ अतिसार एवं संक्रमण से बचाव होता है।
- □ व्यस्कावस्था की बीमारियों जैसे मोटापा आदि से बचाव होता है।
- □ अन्य
- □ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
□ पता है
□ नहीं पता है
□ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या..........................

प्र0-7 शिशु को सिर्फ स्तनपान कराना माता के लिए कैसे लाभप्रद है?

- ▫ स्तनपान प्रक्रिया एक प्राकृतिक गर्भनिरोधक विधि की तरह कार्य करती है।
- ▫ माता और शिशु के बीच भावनात्मक सम्बन्ध मजबूत बनता है।
- ▫ वजन कम करने में मदद करता है।
- ▫ अन्य
- ▫ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
▫ पता है
▫ नहीं पता है
▫ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या............................

प्र0-8 यदि माँ बच्चे को किसी कारणवश दूध न पिला पा रही हो तो क्या करना चाहिए?

- ▫ चिकित्सक के पास जाना चाहिए
- ▫ अन्य
- ▫ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
▫ पता है
▫ नहीं पता है

2. लौह तत्व की कमी से होने वाले एनीमिया के संबंध में पोषण ज्ञान के आंकलन की प्रश्नावली

उत्तरदाता का नाम:

उम्र:

लिंग:

प्र0-1 क्या आपने लौह तत्व की कमी से होने वाले एनीमिया के बारे में सुना है?

- ▫ हाँ
- ▫ नहीं

- पता नहीं/कोई उत्तर नहीं

यदि हाँ तो एनीमिया से ग्रस्त व्यक्ति की क्या पहचान है?

- कमजोरी/थकान
- चेहरे में पीलापन
- चम्मचनुमा नाखून
- जल्दी-जल्दी बीमार पड़ना
- अन्य
- पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
- पता है
- नहीं पता है
- सही प्रतिक्रियाओं की संख्या.............

प्र0-2 शिशु और छोटे बच्चों में एनीमिया का क्या प्रभाव होता है?

- मानसिक एवं शारीरिक विकास अवरूद्ध होना।
- मानसिक और शारीरिक विकास में देरी।
- अन्य
- पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
- पता है
- नहीं पता है

प्र0-3 गर्भावस्था में एनीमिया का क्या प्रभाव होता है?

- प्रसव के समय मृत्यु
- कठिन प्रसव
- अन्य
- पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
- पता है
- नहीं पता है

प्र0-4 एनीमिया के मुख्य कारण क्या हैं?

- आहार में लौह तत्व की कमी
- मलेरिया
- पेट में कीड़े
- अन्य संक्रमण
- माहवारी में अतिरिक्त रक्त स्राव
- अन्य
- पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
- पता है
- नहीं पता है
- सही प्रतिक्रियाओं की संख्या...........................

प्र0-5 एनीमिया की रोकथाम कैसे की जा सकती है?

- लौह युक्त खाद्य पदार्थों का निरन्तर सेवन
- विटामिन सी युक्त भोज्य पदार्थ का आहार में सेवन
- लौह युक्त उत्पादों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए उन्हें घर पर ही उगाना
- लौह युक्त गोलियों का सेवन
- शिशुओं के लिए 6-23 महीने तक स्तनपान जारी रखना
- अन्य
- पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
- पता है
- नहीं पता है
- सही प्रतिक्रियाओं की संख्या...........................

प्र0-6 क्या आप लौह तत्व युक्त भोज्य पदार्थों के नाम बता सकती हैं?

- ◻ माँस
- ◻ मछली
- ◻ अंडा
- ◻ पोहा
- ◻ हरी पत्तेदार सब्जियाँ
- ◻ अन्य
- ◻ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

- ◻ पता है
- ◻ नहीं पता है
- ◻ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या..........................

प्र0-7 आहार में कौन-से विशिष्ट पदार्थ लेने चाहिए जिससे लौह तत्व की अवशोषकता बढ़ सके?

- ◻ विटामिन सी युक्त भोज्य पदार्थ
- ◻ अन्य
- ◻ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण

- ◻ पता है
- ◻ नहीं पता है
- ◻ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या..........................

प्र0-8 भोजन के साथ ऐसे कौन पेय पदार्थ नहीं लेने चाहिए जिनसे लौह तत्व की अवशोषकता कम होती है?

- ◻ कॉफी

- ☐ चाय
- ☐ अन्य
- ☐ पता नहीं

प्रारम्भिक विश्लेषण
☐ पता है
☐ नहीं पता है
☐ सही प्रतिक्रियाओं की संख्या......................

यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रश्नों के साथ जो भी विकल्प दिये गये हैं वह सिर्फ सर्वेक्षक की जानकारी के लिए हैं। वह उत्तरदाता के उत्तर को इन विकल्पों से मिलान कर निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उत्तरदाता को उस विषय में ज्ञान है अथवा नहीं। किसी भी अवस्था में सर्वेक्षक उत्तरदाता को इन उत्तरों को बताने में सहायता नहीं करता है।

3. तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal-RRA)

तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (RRA) पोषण ज्ञान को नापने की एक गुणात्मक विधि है। इस विधि को शोध की शीघ्र विधि कहा जाता है। इससे प्राप्त आँकड़े स्पष्ट एवं सटीक परिणाम उत्पन्न करने वाले नहीं माने जाते, परन्तु इससे प्राप्त आँकड़ों का साक्ष्य मूल्य अधिक होता है। RRA विधि को परंपरागत अनुसंधान विधियों की कमियों के कारण विकसित किया गया था। परंपरागत शोध विधियों में सर्वेक्षण की उच्च लागत, आँकड़ों का विश्लेषण करने में समय लगना, गैर-नमूना त्रुटियों के कारण आँकड़ों की विश्वसनीयता का निम्न स्तर आदि कमियों का सामना करना पड़ता था। RRA विधि औपचारिक सर्वेक्षण एवं असंचरित अनुसंधान विधियों जैसे गहन साक्षात्कार, केंद्रित समूह चर्चा एवं अवलोकन अध्ययन आदि के मध्य सेतु का कार्य करती है।

तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal-RRA) की परिभाषा

वैसे RRA की कोई स्वीकृत परिभाषा नहीं है। यह ग्रामीण रहन-सहन पर जानकारी इक्ट्ठा करने के लिए एक व्यवस्थित और अर्द्ध-संरचित गतिविधि है। इससे ग्रामीण जीवन के बारे में नई जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

RRA की विशेषताएं

RRA की आधारभूत विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- इस विधि में समस्या या विषय को विभिन्न कोणों देखा जाता है।
- यह खोजपूर्ण एवं सतत् प्रक्रिया है।
- यह शोधकर्त्ता को तेजी से सीखने का मौका देती है।
- उत्तरदाताओं को जानबूझकर विशेष रूप से चुना जाता है।
- विशेष रूप से चुने गये उत्तरदाता समुदाय की आदतों, आवश्यकताओं, समस्याओं का विवरण विशिष्ट चिन्हों के माध्यम से करते हैं।
- यह तेजी से पूर्ण होने वाली विधि है।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में RRA का उपयोग काफी व्यापक रहा है। इसका उपयोग स्वास्थ्य, पोषण, आपात स्थिति एवं आपदा, अनौपचारिक शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन आंकलन आदि में आसानी से किया जाता है। इस विधि का प्रयोग समुदाय के स्वास्थ्य मूलयांकन में प्रारम्भिक चरण के रूप में भी किया जाता है।

RRA के सिद्धान्त

- RRA का प्रथम सिद्धान्त उपयुक्तता का है। इस विधि में जितनी जानकारी वास्तविक उपयोग के लिए आवश्यक है सिर्फ उसी से संबंधित कार्य किया जाता है।
- पूर्वाग्रहों एवं पक्षपात को छोड़ कर समस्याओं एवं जानकारी पर ध्यान दिया जाता है।
- इस विधि में एक से अधिक तकनीक या स्रोत द्वारा जानकारी प्राप्त की जाती है। इस विधि को Triangulating कहा जाता है। एक ही प्रश्न को अलग-अलग तरीके से पूछ कर जानकारी प्राप्त की जाती है।
- इस विधि में ग्रामीण लोगों के साथ ही सीखने पर बल दिया जाता है। इसका अर्थ है सीधे अध्ययन के क्षेत्र पर, आमने-सामने बैठ कर सीखना जिससे तकनीकी एवं सामाजिक ज्ञान में वृद्धि होती है।
- इस विधि में सीखने की क्रिया तेजी से एवं उत्तरोत्तर चलती रहती है। इसमें जानकारी प्राप्त करने का कोई सख्त नियम नहीं होता है। समय एवं आवश्यकतानुसार नियमों में बदलाव, विधियों का लचीला प्रयोग आदि जानकारी शीघ्र प्राप्त करने में मदद करते हैं।
- इस विधि का एक मौलिक सिद्धान्त ग्रामीण आबादी से सम्पर्क निर्माण है क्योंकि स्थानीय निवासियों को अपने संसाधनों, समस्याओं आदि की पूर्ण समझ होती है।

RRA की विधि

RRA के माध्यम से पोषण ज्ञान के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए शोधकर्त्ता गाँव या समुदाय के लोगों से सम्पर्क करता है। शोधकर्त्ता समुदाय के लोगों के मध्य से उत्तरादाता, जो सहयोग एवं उचित जानकारी देने में सक्षम हो, को चुनता है। शोधकर्त्ता ली जाने वाली जानकारी के अनुसार उत्तरदाता की संख्या तय करता है। इसके बाद उत्तरदाता से जानकारी लेने की प्रक्रिया शुरु की जाती है। उत्तरदाता यह जानकारी चित्र, रेखा चित्र आदि बना कर बताते हैं। जैसे समुदाय का नक्शा बनाकर, प्रत्येक घर को अंकित करना एवं अनाज, दालों, कंकड़, पत्थर, पत्ते, फूल आदि को चिह्न के रूप में प्रयोग करके परिवार में व्यक्तियों की संख्या बता सकते हैं। इसी प्रकार यदि समुदाय के आहार के विषय में जानकारी प्राप्त करनी होती है तो विभिन्न चिन्हों/प्रतीकों को प्रयोग करके उनकी आवृत्ति एवं प्रयोग के बारे में जाना जा सकता है। जैसे हफ्ते में कितनी बार हरी पत्तेदार सब्जियों का उपयोग किया जाता है? इसके लिए प्रत्येक दिन के लिए एक पत्ते को प्रतीक मानकर रेखाचित्र बनाया जाता है। इस तरह की जानकारी को अलग-अलग समय पर अलग-अलग उत्तरदाताओं से जैसे बच्चों, माताओं आदि द्वारा प्राप्त कर ही निश्चित किया जाता है।

इस प्रकार की विधि से समुदाय की भोजन संबंधी आदतों, भोज्य आवृत्ति, भोज्य समूहों का प्रयोग आदि की जानकारी शीघ्र प्राप्त की जा सकती है। समुदाय में इस विधि का प्रयोग पोषण शिक्षा देने से पूर्व किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

---

1. अनौपचारिक चर्चा द्वारा पोषण ज्ञान का आंकलन कैसे किया जाता है?

   ....

   ....

2. प्रश्नावली द्वारा पोषण ज्ञान के आंकलन में क्या तैयारी करनी चाहिए?

   ....

   ....

3. तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal-RRA) क्या है?

   ....

   ....

इकाई के अगले खण्ड में हम पोषण शिक्षा पर चर्चा करेंगे।

9.4 पोषण शिक्षा

पोषण संबंधी समस्याओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, पहला अल्प पोषण अर्थात् पोषण संबंधी जरूरतों के अुनसार अपर्याप्त सेवन एवं दूसरा अति पोषण अर्थात् वह समस्याएँ जो भोजन की अत्यधिक मात्रा या किसी विशेष आहार घटक के अधिक सेवन से उत्पन्न होती हैं। आँकड़े बताते हैं कि आबादी का बड़ा हिस्सा इन पोषण समस्याओं से ग्रसित है। सुपोषित आबादी का प्रतिशत कम होता जा रहा है। इसलिए समुदायों के लोगों को अपने स्वभाव और जीवन शैली को बदलने की प्रेरणा देने की आवश्यकता है। इसके लिए उन्हें ऐसी पोषण शिक्षा देनी चाहिए जिससे अज्ञानता, पूर्वाग्रह एवं गलत धारणाएं दूर की जा सकें एवं लोगों के स्वभाव में सकारात्मक बदलाव लाया जा सके। पोषण शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समुदाय के लोगों को उचित आहार खरीदने एवं उपभोग करने के लिए पर्याप्त जानकारी, कौशल एवं प्रेरणा प्रदान करना है। इस प्रकार की शिक्षा में पारिवारिक भोजन आपूर्ति में सुधार के उपाय, आर्थिक संसाधनों एवं उपलब्ध भोजन का अधिक कुशल उपयोग एवं संवेदनशील वर्गों की बेहतर देखभाल के तरीके आदि अवश्य रूप से सम्मिलित होने चाहिए। समुदायों के उन हिस्सों में जहाँ अतिपोषण की समस्या है, पोषण शिक्षा के माध्यम से उचित भोजन चयन, उपभोग एवं जीवन शैली के लिए समुदायों को निर्देशित करना चाहिए।

9.4.1 पोषण शिक्षा: परिभाषा

विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा पोषण शिक्षा को अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया गया है।

US Department of Agriculture, USDA 2012 के अनुसार

''पोषण शिक्षा व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों को भोजन एवं जीवन शैली के बारे में सही विकल्प चुनने में मदद करती है। यह समुदाय के लोगों का शारीरिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उचित बनाये रखने में मदद करती है''।

Society for Nutrition Education and Behavior के अनुसार

''पोषण शिक्षा विभिन्न शैक्षिक रणनीतियों का संयोजन है जिसे स्वैच्छिक भोजन विकल्प अपनाने एवं उचित आहार एवं पोषण संबंधी व्यवहार स्वीकार करने के लिए परिकल्पित किया जाता है। पोषण शिक्षा समुदाय के उत्तम स्वास्थ्य एवं कल्याण में मदद करती है।''

उपरोक्त पोषण की परिभाषाएँ आज के समय में संकीर्ण समझी जाती हैं। इन परिभाषाओं में सिर्फ पोषण ज्ञान के प्रसार की बात कही जाती है। इन परिभाषाओं में उपलब्ध ज्ञान के प्रभाव के बारे में कई विचार सम्मलित नहीं हैं। 'पोषण शिक्षा' शब्दावली की इसी कमी के कारण इसे 'व्यवहार परिवर्तन संचार' (Behavior Change Communication-BCC) कहा जाने लगा है।

'व्यवहार परिवर्तन संचार' स्वास्थ्य सम्बंधी सकारात्मक परिणामों को बढ़ावा देने के लिए संचार का सामरिक उपयोग है। यह व्यवहार में बदलाव के सिद्ध सिद्धान्तों एवं मॉडल पर आधारित होता है। व्यवहार परिवर्तन संचार में एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। इसमें शुरुआत अनुसंधान तथा व्यवहार विश्लेषण से होती है, उसके बाद संचार योजना, कार्यान्वयन, निगरानी एवं मूल्यांकन की क्रिया होती है। इस विधि में उत्तरदाताओं को ध्यानपूर्वक चुना एवं समूहों में बाँटा जाता है। संचार संदेशों एवं सामग्री का पूर्व परीक्षण किया जाता है। परिभाषित व्यवहार उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जन संचार एवं अन्य पारस्परिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

यूनिसेफ (2012) के अनुसार 'व्यवहार परिवर्तन संचार' सामान्यतः शोध के आधार पर परामर्शी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस विधि में ज्ञान, दृष्टिकोण एवं व्यवहार (Knowledge, attitude and practice), जो वास्तविक रूप में कार्यक्रम के लक्ष्यों से जुड़े होते हैं, को संबोधित किया जाता है। इसमें प्रतिभागियों को परिभाषित रणनीतियों के माध्यम से उचित जानकारी एवं प्रेरणा प्रदान की जाती है। व्यवहार में बदलाव के लिए प्रतिभागियों की सुविधानुसार संचार माध्यमों एवं उनकी भागीदारी का उपयोग किया जाता है। भारत में 'व्यवहार परिवर्तन संचार' के अंतर्गत बहुत से कार्ग्रक्रम चलाये जा रहे हैं।

9.4.2 पोषण शिक्षा की अवधारणा

समुदायों में पोषण शिक्षा प्रदान करने का इतिहास काफी पुराना है। समय के साथ इसकी अवधारणा एवं प्रक्रिया में बदलाव आते गये। साठ के दशक में पोषण शिक्षा का स्वरूप उपदेशात्मक था एवं शिक्षा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया नहीं थी। उस समय पोषण शिक्षा स्वास्थ्य केन्द्रों पर 'वार्ता' के रूप में दी जाती थी। सत्तर के दशक के दौरान दुनिया भर के पोषण विशेषज्ञों ने महसूस किया कि प्रचलित पोषण शिक्षा के तरीके पोषण स्तर में सुधार लाने में प्रभावहीन हैं। यह चिंता वैश्विक अशान्ति एवं अकाल के कारण और जटिल हो गई। विभिन्न पोषण विद्वानों ने कई शोध किये और उन्होंने यह निष्कार्ष निकाला कि पोषण शिक्षा द्वारा इष्टतम प्रभाव उत्पन्न करने के लिए सम्पूर्ण शारीरिक, सामाजिक एवं राजनीतिक माहौल पर विचार करना चाहिए। इसके बाद पोषण शिक्षा की अवधारणाओं, रणनीतियों एवं तरीकों में एक बड़ा बदलाव देखा गया। संदेशों के संचार के लिए

पहले पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रों का प्रयोग किया गया था। जब रेडियो संचार का प्रचलित माध्यम बना तो पोषण संचार संदेश रेडियो पर प्रसारित होने लगे। तकनीकी के विकास के साथ-साथ अन्य माध्यम जैसे टी0वी0, फिल्म, मोबाइल संदेश आदि का प्रयोग होने लगा।

पहले स्वास्थ्य कार्यकर्ता या प्रसार कार्यकर्ता पोषण शिक्षा प्रदान करने का कार्य करता था। समय में बदलाव एवं पोषण कार्यक्रमों की माँग के अनुसार अब यह कार्य प्रशिक्षित पोषण कार्यकर्ता द्वारा किया जाता है। इसी प्रकार पहले पोषण संदेश अस्पताल में दी जाने वाली दवाई की तरह होते थे। उनका कार्य सिर्फ रोग से बचाव होता था। आजकल पोषण के सभी विषयों पर पोषण शिक्षा प्रदान की जाती है। पूर्व में पोषण शिक्षा से संबंधित ज्यादातर कर्मियों को पोषण का ज्ञान नहीं होता था। पोषण शिक्षा गतिविधियों में प्रभावी रूप से भाग लेने के लिए, पेशेवर कर्मियों को पोषण शिक्षा के ज्ञान पर अब बल दिया जाने लगा है। बदलते समय के साथ-साथ पोषण शिक्षा जो पहले औपचारिक रूप से प्रदान की जाती थी, अब उसे अनौपचारिक विधियों जैसे फिल्म, टी0वी0 प्रोग्राम, चर्चा आदि द्वारा समुदाय के सदस्यों की भागदारी को मिला कर प्रदान की जाती है। पोषण शिक्षा की अवधारणा कुछ भी रही हो, शुरुआत से वर्तमान तक इसका उद्देश्य समुदायों का उच्च स्वास्थ्य एवं कल्याण ही है।

9.4.3 पोषण शिक्षा की भूमिका

घरेलू खाद्य सुरक्षा के लिए पर्याप्त एवं सन्तुलित भोजन का सेवन आवश्यक है। हालांकि अच्छे स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर को बनाये रखने के लिए व्यक्ति को पर्याप्त ज्ञान एवं कौशल की भी आवश्यकता होती है जिससे वह विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ उगा, खरीद, संसाधित, तैयार एवं सही मात्रा में उपभोग और संयोजित कर सके। इसके लिए सभी व्यक्तियों को पौष्टिक सन्तुलित आहार के विषय में बुनियादी ज्ञान की आवश्यकता होती है। उन्हें यह भी पता होना चाहिए कि उपलब्ध संसाधनों के उपयोग से पोषण संबंधी आवश्यकताओं को कैसे पूर्ण किया जा सकता है। अक्सर अपर्याप्त ज्ञान, परंपराओं और वर्ज्यों के कारण या आहार और स्वास्थ्य के संबंध को उचित प्रकार से न समझ पाने के कारण कई अवांछनीय खान-पान की आदतें एवं पोषण संबंधी प्रथाएं प्रचलित होती हैं जो पोषण स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं।

शोधों से ज्ञात होता है कि यदि व्यक्ति या समुदाय के लोगों को पर्याप्त प्रेरणा दी जाए एवं जागरुक किया जाए तो वह स्वस्थ आहार एवं आदतें अपना सकते हैं, जिससे उनके पोषण स्तर के साथ-साथ जीवन स्तर में भी सुधार आता है। पोषण शिक्षा का कार्य लोगों में पोषण से संबंधित विशिष्ट प्रथाओं एवं व्यवहारों में बदलाव लाकर उच्च स्वास्थ्य स्थिति को बनाये रखने में मदद करना है। लोगों को

पोषण संबंधी नई जानकारी सीखने एवं अपनाने में पूर्ण मदद की जाती है, साथ-साथ व्यवहार, कौशल एवं आत्मविश्वास विकसित करने के लिए भी सहायता प्रदान की जाती है।

पोषण शिक्षा के माध्यम से खाद्य पदार्थों के पोषण मान, भोजन की गुणवत्ता और सुरक्षा, भोज्य पदार्थों की संरक्षण विधियाँ, प्रसंस्करण एवं देखभाल, भोजन तैयार करना तथा उपयोग करने के तरीके पर उचित जानकारी प्रदान की जा सकती है। यह व्यक्तियों को पर्याप्त सन्तुलित आहार के लिए उपलब्ध भोज्य पदार्थों में से उचित विकल्प चुनने में मदद करती है।

पोषण शिक्षा को तब तक सफल नहीं माना जाता जब तक उसका प्रभाव व्यवहार में बदलाव के रूप में न देखा जाए। वांछनीय पोषण प्रथाओं को अपनाने के लिए व्यवहार में परिवर्तन जैसे अपने खेतों, उद्यानों में हरी पत्तेदार सब्जियों को उगाना एवं उपभोग करना शामिल हो सकता है। छोटे-छोटे परिवर्तन जैसे सब्जियों को धोकर काटना, समय-समय पर हाथ धोना, आसपास साफ सफाई रखना आदि बड़े बदलाव की शुरुआत होते हैं। प्रभावी पोषण शिक्षा कार्यक्रमों की योजना एवं क्रियान्वयन इस प्रकार होना चाहिए ताकि लाभार्थियों को कौशल और आत्मविश्वास विकसित करने के लिए प्रेरित किया जा सके ताकि वह सकारात्मक एवं स्थायी प्रथाओं को अपने जीवन में अपना सकें।

पोषण शिक्षा की भूमिका

- ज्ञान का प्रसार
- जागरुकता
- प्रेरणा स्त्रोत
- व्यवहार में बदलाव
- स्वास्थ्य में सुधार
- समुदाय का विकास
- कौशल विकास
- आत्मविश्वास का विकास
- पोषण स्तर में सुधार

विभिन्न शोधों से पता चलता है कि जब समुदायों में पोषण शिक्षा प्रदान की गयी तब प्रतिभागियों एवं समुदायों, दोनों को लाभ प्राप्त हुए हैं। इसलिए वर्तमान में पोषण शिक्षा और संचार राष्ट्रीय खाद्य और पोषण कार्यक्रमों में सुधार लाने की प्राथमिक विधि माने जाते हैं।

9.4.4 पोषण शिक्षा कार्यक्रम- औचित्य, योजना बनाना, निष्पादन और मूल्यांकन

समुदाय में पोषण शिक्षा प्रदान करने के लिए पोषण शिक्षा कार्यक्रमों में निम्नलिखित तीन घटक होने चाहिएः

1. पोषण ज्ञान एवं जागरुकता को बढ़ाना।
2. वांछनीय भोजन व्यवहार एवं पोषण संबंधी प्रथाओं को बढ़ावा देना।

3. पारिवारिक भोजन की आपूर्ति एवं विविधता को बढ़ावा देना।

इनमें से प्रत्येक घटक सामुदायिक पोषण में सुधार हेतु एक विशेष योगदान देता है। तीनों घटक अतिमहत्वपूर्ण हैं, इसलिए किसी भी पोषण शिक्षा एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम में इन तीनों घटकों का होना अत्यंत आवश्यक है। सामुदायिक स्तर पर जो व्यक्ति पोषण संबंधी समस्याओं से प्रभावित है उन्हें ही घटकों की प्रमुखता निर्धारित करने में भाग लेना चाहिए जिससे स्थानीय खाद्य एवं पोषण स्थिति में सुधार प्राप्त किया जा सके। उचित योजना एक पोषण शिक्षा कार्यक्रम की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है। पोषण शिक्षा कार्यक्रम नियोजन के लिए योजना एक सैद्धांतिक ढाँचे पर आधारित है जिसके क्रमबद्ध चार चरण होते हैं, जो निम्नलिखित हैं:

1. औचित्य
2. योजना बनाना
3. निष्पादन
4. मूल्यांकन

1. औचित्य

पोषण शिक्षा कार्यक्रम नियोजन में प्रथम चरण कार्यक्रम नियोजित करने का औचित्य है। इस चरण में यह विश्लेषण किया जाता है कि किसी भी समुदाय विशेष में पोषण शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता क्यों है या वहाँ की पोषण सम्बंधी क्या समस्याएं हैं? समस्या की पहचान करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि यह उद्देश्यों के निर्धारण हेतु आवश्यक है। समस्या का पता लगाने के बाद उसके कारणों के बारे में पता लगाया जाता है। मूल समस्या एवं उसके कारणों को जानने के पश्चात् पोषण शिक्षा प्रदान करने का ढाँचा बनाया जाता है। कार्यक्रम नियोजन का औचित्य साबित करने के लिए प्रभावित जनसंख्या की जानकारी एवं उससे होने वाली हानियों का लेखा-जोखा बनाया जाता है। पोषण कार्यक्रम की योजना बनाने में औचित्य का विकास कार्यक्रम को लागू करने का मुख्य तत्व है। इसी के कारण नीति निर्माताओं एवं निर्णय लेने वालों को कार्यक्रम की शुरुआत के लिए प्रेरित किया जाता है। एक बार समस्या की पहचान, उसके कारकों, व्यवहार प्रतिमानों आदि पर जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् कार्य योजना एवं संचार रणनीति तैयार की जाती है।

2. योजना बनाना

पोषण कार्यक्रम की रणनीति बनाने के लिए कार्यक्रम नियोजन आवश्यक है। इस चरण में कार्यक्रम को चलाने की मूल योजना तैयार की जाती है। कार्यक्रम की रणनीति बनाने के लिए सबसे पहले

उद्देश्यों को निर्धारित एवं स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है। उद्देश्यों को परिभाषित करना किसी भी कार्यक्रम के विकास में एक महत्वपूर्ण पहलू है। उद्देश्यों को कार्यक्रम के मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता है। ये कार्यक्रम को दिशा प्रदान करते हैं एवं कार्यक्रम की गतिविधियों के चयन का आधार होते हैं। कार्यक्रम की शुरुआत में उद्देश्यों को सरल व कम महत्वकांक्षी होना चाहिए। जैसे-जैसे कार्यक्रम की प्रगति हो इनका विस्तार किया जा सकता है। इसलिए उद्देश्यों के निर्धारण में सदैव लचीलापन होना चाहिए। पोषण शिक्षा कार्यक्रम में उद्देश्य लक्षित समूह को ध्यान में रखकर ही निर्धारित करने चाहिए।

लक्षित समूहों का निर्धारण

उद्देश्यों के साथ-साथ लक्षित समूहों का निर्धारण भी उतना ही आवश्यक है। दोनों गतिविधियाँ एक दूसरे पर निर्भर करती हैं। पोषण शिक्षा प्राप्त करने वाली लक्षित आबादी में कई समूह होते हैं जिनमें दो समूह मुख्य होते हैं; संवेदनशील वर्ग एवं लक्षित समूह। पोषण शिक्षा के संबंध में इन दोनों में अन्तर समझना जरूरी है। बहुत से मामलों में संवेदनशील समूह ही लक्षित समूह होता है परन्तु कभी-कभी ये दोनों अलग भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिए पाँच वर्ष से कम बच्चे जो प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण से ग्रस्त हैं, उन्हें संवेदनशील समूह कहा जाता है। परन्तु इस समूह को पोषण शिक्षा न देकर, पोषण शिक्षा उनकी देखभाल में शामिल लोगों को प्रदान की जाती है। इसलिए इस मामले में लक्षित समूह देखभाल करने वाले लोग जैसे माता-पिता, दादा- दादी आदि आते हैं।

लक्षित समूहों को तीन भागों में बाँटा जाता है।

प्राथमिक लक्षित समूहः यह वह समूह होता है जिसके व्यवहार में संशोधन किया जाना है। ऊपर दिए गए उदाहरण में इस समूह में बच्चे की माता सम्मिलित हो सकती है। इस उदाहरण में उद्देश्य बच्चों के लिए भोजन तैयार करने की विधि एवं देखभाल के तरीकों को संशोधित करना है। यह समूह भी ग्रामीण, शहरी, साक्षर, निरक्षर आदि के आधार पर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। इनकी आवश्यकताएँ भी अलग होती हैं।

माध्यमिक लक्षित समूहः इस समूह में उन लोगों को शामिल किया जाता है जो प्राथमिक लक्षित समूह तक पोषण शिक्षा संदेशों को पहुँचाने में मध्यस्थ का कार्य करते हैं। यह स्वास्थ्य कार्यकर्ता, शिक्षक, पत्रकार आदि हो सकते हैं।

तृतीयक लक्षित समूहः यह समूह उन लोगों से बनता है जो संचार प्रक्रिया एवं व्यवहार संशोधन प्रक्रिया को सुविधाजनक बना सकते हैं। इसमें नेता, अभिनेता, धर्म गुरू, शिक्षक एवं वह लोग जो लक्षित समूह के करीबी हैं, सम्मलित किये जाते हैं।

उदाहरणः प्रोटीन उर्जा कुपोषण की रोकथाम के लिए लक्षित समूह इस प्रकार हो सकते हैं।

- संवेदनशील समूहः पाँच वर्ष से कम उम्र के बच्चे
- लक्षित आबादीः इन बच्चों की देखभाल से जुड़े व्यक्ति
- प्राथमिक लक्षित समूहः बच्चों की माता
- माध्यमिक लक्षित समूहः स्वास्थ्य कार्यकर्ता, समाज सेवक, शिक्षक
- तृतीयक लक्षित समूहः नेता, प्रशासनिक अधिकारी, बच्चे का पिता

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि पोषण शिक्षा के अन्तर्गत लक्षित समूहों को सामाजिक संचार की प्रक्रिया में प्रतिभागी होना चाहिए, न कि सिर्फ जानकारी प्राप्त करने वाला श्रोता। पोषण शिक्षा में एकपक्षीय संचार उपयोगी नहीं रहता है। लक्षित समूहों के निर्धारण के पश्चात् निर्धारित उद्देश्यों को लक्षित समूह के अनुकूल परिभाषित किया जाता है। उद्देश्य को पोषण उद्देश्य, शैक्षिक उद्देश्य एवं संचार उद्देश्यों में विभाजित करके परिभाषित किया जाता है।

पोषण उद्देश्यः एक पोषण शिक्षा कार्यक्रम का मूल उद्देश्य लक्षित समूह की पोषण स्थिति में सुधार लाना है। पोषण स्तर, शिक्षा के अलावा भी बहुत सारे कारकों से प्रभावित होता है। इसलिए पोषण उद्देश्यों को सदैव अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्यों के साथ परिभाषित करना चाहिए।

शैक्षिक उद्देश्य: एक पोषण शिक्षा कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्य पोषण स्तर को प्रभावित करने वाले व्यवहार में स्थायी परिवर्तन को प्राप्त करना है। इसमें प्रेरणा, ज्ञान, कौशल, वरीयता आदि तत्वों को सम्मलित किया जाता है। शैक्षिक उद्देश्य पोषण उद्देश्यों के अनुरूप होने चाहिए एवं उनसे पोषण उद्देश्यों की पूर्ति को बल मिलना चाहिए।

शैक्षिक उद्देश्यों में निम्न घटकों में स्पष्टता होनी चाहिए:

- उद्देश्य प्राप्त करने के पश्चात व्यवहार में क्या वांछनीय परिवर्तन के संकेत मिलेंगे?
- विभिन्न व्यवहार कौन दिखाएगा?
- नए या संशोधित व्यवहार से क्या परिणाम प्राप्त होगा?
- संशोधित व्यवहार किन परिस्थितियों में देखा जाएगा?
- किस मापदंड से ज्ञात होगा कि वांछित परिणाम प्राप्त हुए हैं या नहीं?

संचार उद्देश्य: संचार कार्यक्रम को प्रभावी बनाने और लक्षित समूहों में स्थायी परिवर्तन लाने एवं पोषण तथा शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संचार उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। इस चरण के

अन्तर्गत यह निश्चित किया जाता है कि लक्षित समूह के लिए कौन-सा संचार माध्यम प्रयोग किया जायेगा एवं उन्हें क्या सन्देश देना है। संचार उद्देश्यों के अन्तर्गत संचार माध्यमों से संदेशों की अवधारणा पर बल दिया जाता है।

संदेशों हेतु मीडिया एवं अन्य साधनों को विकसित करना

कार्य योजना बनाने के अगले चरण में संदेशों को विकसित करने का कार्य किया जाता है। सन्देशों को विकसित करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- किन शब्दों का, किस क्रम में प्रयोग करना है?
- सन्देश किसके लिए है?
- सन्देश किस भाषा में होगा?

इसी प्रकार मीडिया के चुनाव में किस प्रकार का मीडिया प्रयोग होगा, किसी परिस्थिति विशेष या कार्यक्रम की परिस्थिति के अनुसार कौन-सा मीडिया या संचार माध्यम उचित रहेगा, इसका निर्धारण करना भी आवश्यक है। यदि कार्यक्रम की आवश्यकतानुसार किसी समर्थन सामग्री जैसे चार्ट, पोस्टर, पुस्तक, विवरणिका आदि की आवश्यकता है तो कौन-सी सामग्री का उपयोग किया जायेगा, उसमें कौन-सी छवियां, संदेश आदि उपयोग किए जाएंगे, उनमें कौन-से रंगों का उपयोग होगा आदि, सभी प्रश्न आपस में जुड़े हुए हैं। संदेशों की विषय-सामग्री, संचार-साधनों एवं माध्यमों के चुनाव को प्रभावित करती हैं।

संदेशों की विकसित करते समय ध्यान रखने योग्य बातें:

1. संदेश लघु एवं सरल होने चाहिए। इसमें सिर्फ प्रमुख विचार ही शामिल होने चाहिए।
2. सन्देशों के माध्यम से विश्वसनीय एवं पूरी जानकारी देनी चाहिए।
3. सन्देशों के माध्यम से पोषाहार समस्या एवं संशोधित व्यवहार के बीच संबंध पता चलना चाहिए।
4. सन्देशों में सदैव सकारात्मक कथनों का उपयोग करना चाहिए।
5. संदेशों को चित्रों से और आकर्षक एवं प्रभावी बनाया जा सकता है।
6. सन्देश समुदाय की स्थानीय भाषा में ही होने चाहिए।

सन्देश विकसित करने के पश्चात् मीडिया के चुनाव की बारी आती है। मीडिया, संचार के वे माध्यम हैं जिनसे संदेश प्रेषित होते हैं। यह संचार के माध्यम आमने-सामने बैठकर पारस्परिक बातचीत के तरीके या जनसंचार माध्यम जैसे रेडियो, टीवी, समाचार पत्र, चार्ट, पोस्टर आदि हो सकते हैं।

मीडिया का चुनाव समुदाय के अनुरूप होता है। यदि समुदाय पढ़ा लिखा है तो चार्ट, पोस्टर आदि का प्रयोग किया जा सकता है। मीडिया का चुनाव उसके खर्च, समुदाय द्वारा उपयोग की सीमा, समुदाय की भागीदारी एवं उद्देश्यों पर निर्भर करता है। कई बार एक से अधिक मीडिया विधियों का सम्मलित रूप से प्रयोग किया जाता है। सन्देशों, मीडिया एवं विधियों के निर्धारण के बाद, कार्य योजना की रूपरेखा तैयार की जाती है। इसके अन्तर्गत कार्यक्रम के विविध पक्ष, जैसे कौन-कौन से कार्य निष्पादित होने हैं, कार्य निष्पादन के माध्यम क्या होगें, किन-किन संसाधनों का प्रयोग किया जायेगा, किन लोगों की संलग्नता होगी, कार्यक्रम कब प्रारम्भ किया जायेगा, कार्यक्रम कितने चरणों में सम्पन्न होगा तथा प्रत्येक चरण के सम्पन्न होने की निर्धारित अवधि क्या होगी जैसी बातों का स्पष्ट सविस्तार विवरण लिखित रूप से तैयार किया जाता है। इसी प्रकार कार्यक्रम में कितना व्यय होगा, इसका भी अनुमानित लेखा रहना आवश्यक है।

कार्य योजना बनाने के लाभ

1. मार्गदर्शन- नियोजित कार्यक्रम के सभी पहलू लिखित होते हैं। शब्दबद्ध होने के कारण कब क्या करना है, किसे करना है जैसी बातें पहले से तय रहती हैं। नियोजित कार्यक्रम का लिपिबद्ध प्रारूप कार्यक्रम के प्रत्येक चरण में लोगों का मार्गदर्शन करता है।

2. उपलब्ध संसाधनों का सही उपयोग- कार्यक्रम नियोजन स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता है तथा स्थानीय संसाधनों का अधिकतम एवं प्रभावी उपयोग करने का प्रयास किया जाता है। इससे संसाधनों का अपव्यय नहीं होता है।

3. क्रिया कलापों का क्रमबद्ध निष्पादन- कार्यक्रम नियोजन से एक बहुत बड़ा लाभ यह होता है कि सभी कार्य क्रमबद्ध ढंग से नियोजित एवं निष्पादित होते हैं। इससे कार्यक्रम निर्विघ्न एवं निर्बाध भाव से चलता रहता है।

4. निरन्तरता- नियोजन द्वारा किसी भी कार्यक्रम को एक आकार प्राप्त होता है। इससे कार्यक्रम को निरन्तरता मिलती है। कार्यक्रम में कार्यरत कार्यकर्ता, नेता या व्यक्ति किसी कारणवश यदि उपलब्ध न हों या बदल जायें, तब भी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम चलते रहते हैं।

5. नेतृत्व विकास- कार्यक्रम नियोजन नेतृत्व विकास को बढ़ावा देता है। कार्यक्रम के विभिन्न आयामों से जुड़े व्यक्ति अपनी जिम्मेदारी को समझते हैं।

6. सही एवं विश्वसनीय सूचनाएँ प्रदत्त करना- नियोजित कार्यक्रम से सम्बद्ध सभी बातें या पक्ष स्पष्ट रूप से लिपिबद्ध रहते हैं। अतः सूचनाएँ या जानकारियाँ सही एवं विश्वसनीय होती हैं।

7. भविष्योपयोगी- कार्यक्रम नियोजन भविष्य में होने वाले पोषण शिक्षा कार्यक्रमों के सन्दर्भ में भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

8. मूल्यांकन- नियोजित कार्यक्रम का लिखित स्वरूप सबके समक्ष रहता है। सम्पूर्ण कार्यक्रम का ब्यौरा, उसके लक्ष्य, आय-व्यय विवरण, संसाधनों की उपलब्धता जैसी बातें सभी के सामने स्पष्ट रहती हैं। अतः कार्यक्रम के अन्त में या किसी भी समय पर कार्यकलापों की समीक्षा की जा सकती है और प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है।

3. निष्पादन

नियोजन प्रक्रिया के पश्चात् कार्यक्रम के निष्पादन की बारी आती है। यह नियोजन का व्यवहारिक पक्ष है, अतः नियोजन के विविध पहलुओं का पालन सही ढंग से होना चाहिए। इस चरण में, कार्यक्रम का जो भी क्रम योजना बनाते हुए तय किया गया हो, उसका पालन करना चाहिए। यदि कोई परिवर्तन अनिवार्य हो तो उसे कार्यक्रम की टीम के साथ विचार-विमर्श के पश्चात ही परिवर्तित करना चाहिए। कार्यक्रम कितने ही अच्छे ढंग से नियोजित क्यों न किया गया हो यदि उसका संचालन या क्रियान्वयन सही प्रकार से नहीं होता है, तो सारा नियोजन विफल हो जाता है। कार्यक्रम के सभी चरणों का निष्पादन क्रमवार ढंग से और निर्धारित समय के अनुसार होना चाहिए। इससे सभी कार्य सही गति से चलते हैं तथा कार्यक्रम की गति दृष्टिगोचर होती है।

कार्यान्वयन चरण की शुरुआत संचार सामग्री के उत्पादन से शुरु होती है। कई बार संचार सामग्री को पहले ही उपयोग करके जाँचा (pre-test) जाता है। इसके पश्चात् क्षेत्रीय कर्मी, स्वास्थ्य कार्यकर्ता, शिक्षक आदि जो भी कार्यक्रम में विभिन्न संचार गतिविधियों में शामिल होने वाले हैं, उनका प्रशिक्षण सुनिश्चित किया जाता है जिससे कार्यक्रम में वो अपनी निश्चित भूमिका को भली-भाँति निभा सकें। उन्हे प्रभावी ढंग से संदेश संवाद करने में सक्षम होने के लिए संचार गतिविधयों के साथ बहुत अच्छी तरह से परिचित होना चाहिए। सामग्री एवं प्रशिक्षण की प्रक्रिया पूरी करने के पश्चात् लोगों के साथ संचार शुरु किया जा सकता है। इस चरण में समूहों को पोषण ज्ञान देने की प्रक्रिया शुरु कर दी जाती है। यह क्रिया निश्चित अवधि तक चलती रहती है।

4. मूल्यांकन

सामान्य रूप से किसी भी कार्य का मूल्यांकन कार्य समाप्ति पर होता है, किन्तु नियोजित कार्यक्रम का मूल्यांकन समय-समय पर किया जाता है। मूल्यांकन का लक्ष्य सम्मिलित लोगों को स्पष्ट होना चाहिए। किसी कार्यक्रम का मूल्यांकन दो दृष्टिकोण से होता है, पहला यह देखने के लिए कि उद्देश्यों

की प्राप्ति हुई है या नहीं, दूसरा यह निर्धारित करने के लिए कि कार्यक्रम के सभी चरण एवं प्रक्रियाएं सही ढंग से निष्पादित की गई हैं या नहीं। एक पोषण शिक्षा कार्यक्रम का मूल्यांकन महत्वपूर्ण है। मूल्यांकन प्रतिभागी आबादी की भागीदारी से होना चाहिए। पोषण शिक्षा कार्यक्रमों के मूल्यांकन में मुख्य कमजोरी यह है कि इनके मूल्यांकन में मात्रात्मक परितर्वन नहीं देखा जाता है।

कार्यक्रम की समाप्ति के पश्चात मूल्यांकन द्वारा यह स्पष्ट होता है कि किस चरण में कौन-कौन सी कमियाँ रहीं या कौन-सा काम सही ढंग से नहीं हो पाया। इस प्रकार मूल्यांकन द्वारा यह भी पता चलता है कि बजट की स्थिति क्या रही। मूल्यांकन प्रक्रिया के द्वारा ही किसी भी कार्यक्रम को विश्लेषित किया जा सकता है तथा निर्णयात्मक समीक्षा की जा सकती है। सतत् मूल्यांकन कार्यक्रम की आवश्यकता को दर्शाता है और त्रुटियों और व्यवधानों को दूर करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. पोषण शिक्षा को परिभाषित कीजिए।

   ....

   ....

2. पोषण शिक्षा की अवधारणा एवं भूमिका का वर्णन कीजिए।

   ....

   ....

3. पोषण शिक्षा कार्यक्रम का नियोजन करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

   ....

   ....

4. पोषण शिक्षा में सन्देशों का महत्व बताइये।

   ....

   ....

5. कार्य योजना बनाने के क्या लाभ हैं?

   ....

   ....

9.5 सारांश

समुदायों को स्वस्थ रखने एवं उनमें भोजन संबंधी अच्छी आदतों के विकास के लिए कई बार बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ती है। विविध विधियों से उनके पोषण ज्ञान का आंकलन किया जाता है। पोषण ज्ञान वास्तव में पोषक तत्वों के विषय ज्ञान से संबंध रखता है। इसके अंर्तगत आहार एवं स्वास्थ्य संबंध, पोषक आहार, मिश्रित आहार की भूमिका, अलग-अलग आयु वर्ग की पोषक आवश्यकताएं, वृद्धि निगरानी, पोषण-संक्रमण संबंध, व्यक्तिगत स्वच्छता, अतिसार से बचाव, उपचारात्मक आहार, पोषण कार्यक्रम आदि के विषय में शिक्षा एवं व्यवहार संशोधन पर बल दिया जाता है। पोषण ज्ञान के आंकलन के लिए अनौपचारिक शिक्षा, सरल प्रश्नावली एवं तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन विधियों में से किसी एक या दो का प्रयोग किया जाता है।

पोषण शिक्षा को क्रमबद्ध रूप से पोषण संबंधित ज्ञान प्रदान करने की विधि के रूप में परिभाषित किया गया है। इसका मुख्य उद्देश्य समस्त समुदाय के आहार एवं पोषण संबंधी व्यवहारों में संशोधन से उच्च स्वास्थ्य की प्राप्ति एवं कल्याण है। पोषण शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये जाते हैं। इन कार्यक्रमों को सफलता पूर्वक चलाने एवं उनसे सकारात्मक प्रभाव प्राप्त करने के लिए, कार्यक्रमों को क्रमबद्ध रूप से नियोजित, क्रियान्वित एवं समय-समय पर मूलयांकित करते रहना चाहिए।

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

- मनोवृत्ति: किसी सन्दर्भ में सकारात्मक या नकारात्मक प्रतिक्रिया।
- प्रथा: एक विचार, विश्वास या विधि का वास्तविक उपयोग।
- व्यवहार: कार्य करने एवं सोच का तरीका।
- प्रेरणा: उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कार्यप्रेरक क्रियाएं एवं तरीके।
- पोषण शिक्षाः पोषण स्तर में सुधार के लिए संचार गतिविधियों द्वारा व्यवहार एवं प्रथा में बदलाव।

9.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. समुदाय के लोगों का समूह बनाने के पश्चात् उन्हें एकत्रित कर किसी विषय विशेष पर चर्चा शुरु की जाती है। समूह के सभी व्यक्ति चर्चा में भाग लेते हैं। सभी लोग उस विषय पर अपने विचार देते हैं जिससे शोधकर्त्ता उनके ज्ञान के विषय में निष्कर्ष निकालता है।
2. पोषण ज्ञान के आंकलन के लिए प्रश्नावली सावधानी से तैयार की जानी चाहिए। प्रश्नावली में मुख्य रूप से 'संवृत' (Closed) प्रश्नों को सम्मलित किया जाना चाहिए जिससे प्राप्त उत्तरों के विश्लेषण में सुविधा रहे। ज्ञान का स्तर या अन्य जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्नों को आंशिक रूप से वर्गीकृत किया जाना चाहिए। इन प्रश्नों को 'विवृत' (Open) रखा जाए। विवृत प्रकार के प्रश्नों में उत्तरदाता उत्तरों को अपनी इच्छानुसार बताने के लिए स्वतन्त्र होता है। इन प्रश्नों के साथ सही उत्तरों की सूची तथा अन्य विकल्प जैसे 'अन्य' एवं 'पता नहीं' भी सम्मलित किये जाने चाहिए। पूर्वनिर्धारित विकल्प, अपेक्षित उत्तरों से विश्लेषण को आसान बना देते हैं। ज्ञान से संबंधित प्रश्नों के एक या कई उत्तर हो सकते हैं। इस बात का ध्यान रखने की आवश्यकता है कि उत्तरदाता प्रश्नावली में दिये गये विकल्प के अनुरूप ही प्रतिक्रिया दे। यह पूर्णतः सर्वेक्षक पर निर्भर करता है कि वह उसकी प्रतिक्रिया का अर्थ समझे और निकटतम विकल्प को चुने।
3. तीव्र ग्रामीण मूल्यांकन (RRA) पोषण ज्ञान को नापने की एक गुणात्मक विधि है। इस विधि को शोध की शीघ्र विधि कहा जाता है। यह ग्रामीण रहन-सहन पर जानकारी इक्ठ्ठा करने के लिए एक व्यवस्थित और अर्द्ध-संरचित गतिविधि है। इससे ग्रामीण जीवन के बारे में नई जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. पोषण शिक्षा की परिभाषा:

   US Department of Agriculture, USDA 2012 के अनुसार: ''पोषण शिक्षा व्यक्तियों, परिवारों और समुदायों को भोजन एवं जीवन शैली के बारे में सही विकल्प चुनने में मदद करती है। यह समुदाय के लोगों का शारीरिक, आर्थिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उचित बनाये रखने में मदद करती है''।

   Society for Nutrition Education and Behavior के अनुसार: ''पोषण शिक्षा विभिन्न शैक्षिक रणनीतियों का संयोजन है जिसे स्वैच्छिक भोजन विकल्प अपनाने एवं उचित आहार एवं पोषण संबंधी व्यवहार स्वीकार करने के लिए परिकल्पित किया जाता है। पोषण शिक्षा समुदाय के उत्तम स्वास्थ्य एवं कल्याण में मदद करती है।''
2. इकाई का मूल भाग देखें।

3. पोषण कार्यक्रम की रणनीति बनाने के लिए कार्यक्रम नियोजन आवश्यक है। इस चरण में कार्यक्रम को चलाने की मूल योजना तैयार की जाती है। कार्यक्रम की रणनीति बनाने के लिए सबसे पहले उद्देश्यों को निर्धारित एवं स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है। उद्देश्यों को परिभाषित करना किसी भी कार्यक्रम के विकास में एक महत्वपूर्ण पहलू है। कार्यक्रम की शुरुआत में उद्देश्यों को सरल व कम महत्वकांक्षी होना चाहिए। उद्देश्यों के निर्धारण में सदैव लचीलापन होना चाहिए। पोषण शिक्षा कार्यक्रम में उद्देश्य लक्षित समूह को ध्यान में रखकर ही निर्धारित करने चाहिए।
4. इकाई का मूल भाग देखें।
5. इकाई का मूल भाग देखें।

9.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Andrien M. 1994. Social Communication in nutrition: A methodology for intervention. FAO. Rome
- McNulty J. 2013. Challenges and issues in nutrition education. Rome. Nutrition Education and consumer Awareness group, Food Agriculture organization of the United Nations. 56p. available at www.fao-org/ag/human nutrition
- Macias Y. F. & Glasauer P. 2014. KAP Manual. Guidelines for assessing nutrition related knowledge, Attitudes and Practices. FAO. Rome. 180p.
- शॉ गीता पुष्प, शॉ जॉयस, शॉ शीला, रॉबिन शॉ, त्यागी श्वेता, 2013 प्रसार शिक्षा एवं संचार व्यवस्था, अग्रवाल पब्लिेशनस, आगरा.

9.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पोषण ज्ञान के आंकलन की विभिन्न विधियों का उदाहरण सहित विवरण दीजिए।
2. पोषण ज्ञान कार्यक्रम पर एक मिनी-प्रोजेक्ट की रचना कीजिए।
3. पोषण शिक्षा की परिभाषा, अवधारणा एवं भूमिका पर प्रकाश डालिए।
4. पोषण ज्ञान कार्यक्रम में नियोजन एवं मूल्यांकन के क्या लाभ हैं?

इकाई 10: पोषण और मातृ देखभाल

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 गर्भावस्था
10.3.1 गर्भावस्था में शारीरिक परिवर्तन
10.3.2 गर्भावस्था में पोषण एवं देखभाल
10.4 धात्रीवस्था में माता का पोषण एवं देखभाल
10.5 अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध (Intrauterine growth restriction; IUGR)
10.6 किशोर गर्भावस्था
10.7 स्तनपान
10.8 सारांश
10.9 पारिभाषिक शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

एक स्वस्थ शिशु को जन्म देने के लिए माता का भी स्वस्थ होना बेहद आवश्यक है। यदि गर्भावस्था में माँ को उचित देखभाल एवं पोषण नहीं प्राप्त होता है तो इसका सीधा असर गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य पर पड़ता है। गर्भकालीन अवस्था में सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार होने से गर्भकालीन कठिनाइयाँ कम हो जाती हैं। प्रसव सामान्य होता है तथा गर्भस्थ शिशु की वृद्धि एवं विकास समुचित होता है। इसलिए गर्भस्थ शिशु के समुचित निर्माण एवं विकास के लिए माता के आहार में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन एवं खनिज लवण होने चाहिए। गर्भकालीन कुपोषण की स्थिति में गर्भपात की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। कुपोषित माता कमजोर एवं कम वजन वाले शिशु को जन्म देती है, जिसके कारण शिशु-मृत्यु की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इतना ही नहीं गम्भीर रूप से कुपोषित गर्भवती माता प्रसव के समय अथवा गर्भकाल के दौरान विभिन्न गर्भकालीन जटिलताओं से पीड़ित हो सकती है, जिसके कारण उसकी मृत्यु भी हो सकती है। गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था, दोनों ही स्थितियों में माता की यदि उचित देखभाल न की जाए तो यह स्थिति शिशु स्वास्थ्य को प्रभावित करती है जिससे शिशु मृत्यु का खतरा बढ़ जाता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप;

- गर्भावस्था की पोषण आवश्यकताओं को समझ कर उसके अनुरूप भोज्य पदार्थों को चुन सकेंगे;
- स्तनपान कराने वाली माता की पोषण आवश्यकताओं को समझ सकेंगे;
- स्तनपान के लाभों को जान सकेंगे;
- किशोरावस्था में गर्भधारण की जटिलताओं को समझ सकेंगे; तथा
- अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध क्या है एवं उसके कारणों एवं प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे।

10.3 गर्भावस्था

गर्भकालीन अवस्था में एक ही साथ दो मानव शरीरों का पोषण होता है। जन्म से पूर्व **40** सप्ताह अर्थात् **9** माह तक शिशु माँ के गर्भ में विकसित होता है। वह अपनी पोषण सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति हेतु पूर्णतः माता पर आश्रित रहता है। परिणामतः माता को न केवल अपने स्वयं के लिए बल्कि गर्भ में पल रहे शिशु के लिए भी पोषण प्राप्त करना होता है। अतः गर्भवती माँ का आहार ऐसा होना चाहिए जो उसे स्वयं के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के लिए सम्पूर्णतः पौष्टिक तत्वों से भरपूर होकर उचित स्वास्थ्य प्रदान करे। गर्भकाल में भोज्य पदार्थों की मात्रा एवं गुणवत्ता दोनों में ही वृद्धि करनी होती है। गर्भ के दौरान सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार होने से गर्भस्थ शिशु की समुचित वृद्धि एवं विकास होता है।

10.3.1 गर्भावस्था में शारीरिक परिवर्तन

गर्भवस्था के दौरान स्त्री के शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। वह शारीरिक, रासायनिक और हारमोन सम्बन्धी होते हैं। कुछ बाहय परिवर्तनों के साथ अनेक आन्तरिक परिवर्तन भी होते हैं। गर्भावस्था के विभिन्न परिवर्तनों का विवरण निम्न है-

1. **गर्भवती स्त्री के वजन में वृद्धि-** गर्भावस्था के दौरान वजन में वृद्धि होती है। यह वृद्धि प्रथम तीन माह में नहीं के बराबर होती है क्योंकि प्रथम तीन माह में भ्रूण अत्यन्त ही छोटा होता है। इस समय पाचन क्रिया मन्द हो जाती है। गर्भवती स्त्री को उल्टी, जी मचलाना आदि की भी शिकायत हो जाती है। परन्तु गर्भावस्था के चौथे माह से प्रति सप्ताह 1.2 पौण्ड तक वजन में वृद्धि होती है। शिशु जन्म तक गर्भवती माता 10-12.5 किलोग्राम तक अतिरिक्त वजन प्राप्त कर लेती है। वजन में यह वृद्धि रक्त, वसा की मात्रा बढ़ने से, गर्भाशय के आकार में परिवर्तन, गर्भनाल व गर्भतरल (एम्नियोटिक तरल/Amniotic fluid) आदि में वृद्धि होने के कारण

होता है। यदि माता कुपोषण का शिकार होती है तो वजन आवश्यक मात्रा से बहुत कम या अधिक बढ़ता है। दोनों ही स्थितियाँ गर्भवती स्त्री एवं गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं। अल्पभार की स्थिति में शिशु का विकास भली प्रकार से नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप शिशु की गर्भ में ही मृत्यु हो जाने जैसे घातक परिणाम भी हो सकते हैं। गर्भावस्था में अतिभार का होना भी उतना ही खतरनाक साबित हो सकता है जितना की अल्पभार। अत्यधिक भार होने के कारण सामान्य प्रसव में बाधा आ सकती है जिससे शल्य क्रिया (सिजेरियन ऑपरेशन) द्वारा प्रसव की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं।

2. **उपापचयात्मक परिवर्तन-** शरीर का क्षेत्रफल व वजन के हिसाब से उपापचयात्मक दर भी अलग-अलग होती है। भ्रूण का वृद्धि व विकास होने के कारण गर्भवती स्त्री की उपापचयिक दर प्रथम तीन महीनों में 5 प्रतिशत बढ़ जाती है। आगे की गर्भावस्था में इस दर में 12 प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी देखी जाती है। इसके बढ़ने के कुछ प्रमुख कारण होते हैं जैसे- गर्भाशय की वृद्धि, गर्भस्थ शिशु द्वारा अधिक पोषण व ऑक्सीजन की माँग आदि।
3. **पाचन क्रिया में परिवर्तन-** गर्भावस्था में पाचन क्रिया भी प्रभावित होती है। गर्भकाल के प्रथम कुछ महीनों में जी मिचलाना, वमन, गैस बनना, कब्ज आदि समस्याएं देखने को मिलती हैं। यह सब पाचन शक्ति में शिथिलता व आमाशयिक स्राव के कम होने के कारण होता है। आमाशय में उपस्थित अम्ल व पेप्सिन कम होने तथा आमाशय में भोज्य पदार्थों का पलटकर वापस आ जाने से सीने में जलन व अत्यधिक उल्टी होना देखा जाता है। जैसे-जैसे गर्भावस्था बढ़ती है भ्रूण के बढ़ते भार के कारण दबाव से यह समस्या और बढ़ती है। गर्भावस्था में अक्सर माता को किसी विशेष भोज्य पदार्थ खाने का मन करता रहता है तथा किसी भोज्य पदार्थ की गंध से परेशानी होती है। कुछ महिलाओं को अक्सर अखाद्य पदार्थों को खाने का भी मन करता है जैसे मिट्टी आदि। इस आदत को **'पिका'** कहते हैं।
4. **हारमोन्स में परिवर्तन-** गर्भकाल में शरीर में अनेक हारमोन सम्बंधी परिवर्तन होते हैं। भ्रूण के विकास के लिए प्रोजेस्टेरॉन हारमोन का स्तर बढ़ जाता है। इसके बढ़ने से पाचन सम्बन्धी विकार भी उत्पन्न होते हैं जैसे पेट में जलन आदि। एस्ट्रोजन हारमोन स्तन की ग्रन्थियों को दुग्ध निर्माण के लिए उत्तेजित करता है। गर्भनाल के हारमोन प्रजनन अंगों की कोशिकाओं की मात्रा बढ़ाते हैं तथा स्तनों का आकार भी विकसित करते हैं। थायरॉइड ग्रन्थि का आकार भी बढ़ जाता है अतः आयोडीन की गर्भावस्था में अतिरिक्त आवश्यकता होती है।
5. **मूत्र नलिकाओं में परिवर्तन-** गर्भावस्था में मूत्र नालिकाओं में भी परिवर्तन होता है। रक्त परिसंचरण गुर्दों (Kidneys) की ओर अधिक होने लगता है, जिससे उन्हें अतिरिक्त कार्य करना पड़ता है। इस अवस्था में ग्लूकोज का अवशोषण कम हो जाता है, जिससे मूत्र में ग्लूकोज की मात्रा अधिक हो जाती है। अतः कई गर्भवती स्त्रियों को गर्भावस्था में मधुमेह हो

जाती है, जो स्वतः ही प्रसव के बाद समाप्त हो जाती है। गर्भकाल में गर्भाशय का बढ़ता भार मूत्राशय पर पड़ता है अतः मूत्र उत्सर्जन की क्रिया में भी वृद्धि हो जाती है।

6. **त्वचा में परिवर्तन-** गर्भवती स्त्री के गाल, नाक, ऊपरी होंठ, ललाट तथा गर्दन पर भूरे रंग के धब्बे हो जाते हैं। आँखों के नीचे की त्वचा भी कुछ-कुछ काली हो जाती है। ऐसा रक्त में मेलेनोसाइट स्टीमुलेटिंग हारमोन की उपस्थिति के कारण होता है। स्तन की त्वचा में भी परिवर्तन होता है। पेट की त्वचा में खिचांव के कारण लम्बी-लम्बी धारियों जैसे निशान बन जाते हैं। गर्भकाल में स्वेद ग्रन्थियों (Sweat glands) की भी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। फलतः शरीर से अधिक पसीना निकलता है।
7. **श्वसन सम्बन्धी परिवर्तन-** प्रोजेस्टेरॉन हारमोन के कारण श्वसन क्रियाओं में परिवर्तन होने लगते हैं। जैसे-जैसे गर्भ का समय बढ़ता है और प्रसव का समय नजदीक आता है, वैसे-वैसे श्वसन क्रिया में उथलापन आने लगता है। इससे श्वसन दर बढ़ जाती है। गर्भाशय का बढ़ता भार श्वसन क्रिया में बाधा उत्पन्न करता है। अतः गर्भवती तेज-तेज चलने में हाँफने लगती है।
8. **पेशियों व कंकाल तन्त्र में परिवर्तन-** गर्भावस्था में गर्भाशय का आकार बढ़ने के कारण शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है। इससे पीठ व कमर में दर्द बना रहता है। आमाशय की पेशियाँ भी ढीली होकर नरम हो जाती हैं। मलाशय की पेशियों के दबने से कब्ज व मूत्राशय पर दबाव पड़ने से बार- बार मूत्र त्यागने की तीव्र इच्छा होती है।
9. **रक्त परिसंचरण में परिवर्तन-** गर्भावस्था में रक्त परिसंचरण में भी परिवर्तन होता है क्योंकि शरीर में रक्त की मात्रा बढ़ जाती है। फलतः हृदय को अधिक कार्य करना पड़ता है। रक्त की मात्रा पूर्व की उपेक्षा 30% तक बढ़ जाती है। रक्त में हीमोग्लोबीन का प्रतिशत कम हो जाता है। रक्त-चाप भी चौथे-पाँचवे माह तक बढ़ जाता है। इससे पैरों व टखनों में सूजन उत्पन्न हो जाती है। रक्तचाप के अत्यधिक बढ़ने से गर्भवती स्त्री को बेहोशी भी आ सकती है। इसे गर्भाक्षेप (Eclampsia) कहते हैं। यह स्त्री एवं शिशु दोनों के लिए जानलेवा भी सिद्ध हो सकता है।
10. **नाड़ी संस्थान में परिवर्तन-** गर्भावस्था में नाड़ी संस्थान में अनेक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जिसके कारण गर्भवती स्त्री को नींद कम आती है, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लगता है, सुस्ती एवं आलस्य के कारण वह अधिक-से-अधिक समय विश्राम करना चाहती है। किसी विशेष वस्तु को खाने के प्रति चाह तथा किसी विशेष वस्तु से घृणा हो जाती है। मानसिक तनाव, भय, चिन्ता, सिरदर्द आदि समस्याएं अक्सर गर्भवती स्त्री में देखी जाती हैं।
11. **उदर एवं जोड़ों में परिवर्तन-** गर्भावस्था में उदर की दीवारों में परिवर्तन होता है, जिसके कारण इनकी पेशियों में वृद्धि होती है। इससे गर्भाशय की वृद्धि एवं विकास हेतु स्थान सुलभ होता है। उदर की दीवार फैल कर गर्भस्थ शिशु के बढ़ते आकार के साथ उदर को बढ़ने में मदद करती है। यह प्रसव के उपरान्त भी फैली रहती है जिसके कारण त्वचा के लचीले तन्तु फट जाते हैं और पेट पर लम्बे धारीदार निशान पड़ जाते हैं। इस अवस्था में कमर का निचला

हिस्सा (श्रोणी), जोड़ों के स्नायु ढीले व नर्म हो जाते है। गर्भावस्था में जोड़ों की गतिशीलता भी बढ़ जाती है।

12. **योनिमार्ग (Vagina), ग्रीवा (Cervix) एवं गर्भाशय (Uterus) में परिवर्तन-** गर्भावस्था में हारमोन का प्रभाव प्रजनन अंगों पर बहुत अधिक पड़ता है। एस्ट्रोजन हारमोन के कारण योनि मार्ग की श्लैष्मिक झिल्ली अधिक मोटी हो जाती है। योनि मार्ग की शिराएं भी फूल जाती हैं। गर्भाशय के द्वार (ग्रीवा) के आकार में भी परिवर्तन होता है। इसकी पेशियाँ भी लचीला होकर ढीली हो जाती हैं। इसमें रक्त की कोशिकाओं का जाल बढ़ जाता है जिससे यह सूजा हुआ सा प्रतीत होता है। परिणामतः प्रसव में आसानी होती है।
13. **गर्भाशय के आकार** में भी परिवर्तन होता है। पूर्व की स्थिति की अपेक्षा गर्भाशय की लम्बाई में 12-15 गुना तक वृद्धि हो जाती है। गर्भाशय का भार 50 ग्राम से 950 ग्राम तक बढ़ जाता है। छठे माह तक गर्भाशय का ऊपरी भाग नाभि के ऊपर तक पहुँच जाता है तथा नवें माह तक अपनी उच्चतम सीमा पर पहुँचकर निचली पसलियों तक पहुँच जाता है।

उपरोक्त सभी परिवर्तनों के अतिरिक्त गर्भावस्था में पित्तरंजक (Bile) तथा कोलेस्ट्रॉल अधिक निर्मित होने लगते हैं तथा यकृत को अधिक कार्य करना पड़ता है जिससे भोजन का पाचन प्रभावित होता है। इसी अवस्था में भ्रूण के यकृत में लौह तत्व भी संग्रहित होते हैं। गर्भावस्था में इन्हीं सब शारीरिक परिवर्तनों के कारण स्त्री को इस समय सन्तुलित आहार की आवश्यकता होती है क्योंकि एक सुपोषित स्त्री को गर्भधारण में व गर्भावस्था में कम कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

10.3.2 गर्भावस्था में पोषण एवं देखभाल

गर्भावस्था के दौरान उचित देखभाल माँ और बच्चे दोनों के स्वास्थ्य के लिए महत्त्वपूर्ण है। तकनीकी रूप से गर्भावस्था के दौरान की जाने वाली देखभाल को प्रसव पूर्व देखभाल कहते हैं। इसके तीन उद्देश्य होते हैं:

- माँ की सुरक्षा और स्वास्थ्य सुनिश्चित करना। इस अवस्था में कुछ बीमारियाँ होने की सम्भावना होती है जैसे एनीमिया। इन सब समस्याओं से बचने के लिए उचित देखभाल जरूरी है। सुरक्षित प्रसव के लिए भी उचित प्रसव पूर्व देखभाल जरूरी है।

- माँ को सुरक्षित प्रसव और शिशु की देखभाल के बारे में जानकारी देना।

- बच्चा सामान्य और स्वस्थ हो यह सुनिश्चित करना।

गर्भावस्था के दौरान गर्भवती स्त्री को निकटतम स्वास्थ्य केन्द्र में जाकर पंजीकरण कराना चाहिए। स्वास्थ्य केंन्द्र में उपलब्ध कार्ड में प्रसव से संबधित रिकॉर्ड रखना चाहिए ताकि समुचित विकास और निदान को सुनिश्चित किया जा सके। स्वास्थ्य कार्यकर्ता को गर्भवती माँ एवं उसके परिवार के सदस्यों के साथ प्रसव संबंधित योजना पर विचार करना चाहिए जैसे प्रसव कहां कराना है आदि। साथ ही उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे प्रसव का स्वास्थ्य केंन्द्र में होना सुनिश्चित करें।

गर्भावस्था के दौरान प्रसवपूर्व परिचर्या जाँच निम्न अंतराल पर की जानी चाहिए:

पहली तिमाही (12 सप्ताह)- 1 बार

दूसरी तिमाही (12-24 सप्ताह)- 3 बार

तीसरी तिमाही (24-40 सप्ताह)- 6 बार

प्रसव पूर्व देखभाल में होने वाली हर जाँच के दौरान तीन महत्वपूर्ण सवालों पर जरूर ध्यान दिया जाना चाहिए:

क्या माँ सामान्य और स्वस्थ है या उसे कोई बीमारी है?

क्या भ्रूण ठीक प्रकार बढ़ रहा है?

क्या प्रसव सुरक्षित एवं सामान्य होगा?

गर्भावस्था में नियमित रूप से माता के शरीर भार की जाँच होनी चाहिए। आमतौर पर गर्भावस्था के दौरान महिला का भार 9 से 10 किलो बढ़ता है। अगर भार में बढ़ोत्तरी कम या ज्यादा हो तो तुरन्त डॉक्टर को बताना चाहिए। यह कुपोषण का लक्षण हो सकता है।

गर्भावस्था में पोषण

9 माह की दीर्घ अवधि तक शिशु माँ के गर्भ में विकसित होता है। वह अपनी पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पूर्णतः माता कर आश्रित रहता है। परिणामस्वरूप माता को न केवल स्वयं के लिए बल्कि गर्भ में पल रहे शिशु के लिए भी पोषण प्राप्त करना होता है। अतः गर्भवती माँ का आहार ऐसा होना चाहिए जो उसके स्वयं के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के लिए सभी पौष्टिक तत्वों से भरपूर हो।

गर्भकाल में पोषक तत्वों की आवश्यकता माता के गर्भधान से पूर्व के पोषण स्तर पर निर्भर करती है। गर्भधान से पूर्व माता का उच्च पोषण स्तर, शिशु एवं स्वयं माता की विभिन्न जोखिमों से रक्षा करता है। गर्भधान से पूर्व यदि माँ का वजन सही होता है तो उसे गर्भधान में परेशानी नहीं होती है। उचित वजन से स्वस्थ शिशु की प्राप्ति होती है एवं स्तनपान की शुरुआत भी शीघ्र की जा सकती है। जिन महिलाओं का वजन, स्वस्थ वजन से कम या अधिक होता है उनके साथ स्वास्थ्य जोखिम अधिक होते हैं। जिन महिलाओं का वजन गर्भावस्था से पूर्व कम होता है, उन्हें कम वजन के शिशु पैदा होने का जोखिम अधिक होता है। गर्भावस्था के दौरान मोटापा , माँ और शिशु दोनों में उच्च रुग्णता के साथ जुड़ा हुआ है। गर्भधारण के समय जो महिलाएं मोटापे से ग्रस्त होती हैं, वह उच्च रक्तचाप, गर्भावधि मधुमेह, समय पूर्व प्रसव एवं प्रसव के लिए शल्य क्रिया के उच्च जोखिम से ग्रस्त होती हैं। ऐसी माताओं के बच्चों में जन्म के समय अधिक वजन एवं बचपन में मोटापे का खतरा रहता है।

पोषण आवश्यकताएँ

गर्भावस्था में पोषक तत्वों की माँग बढ़ जाती है परन्तु सभी पोषक तत्वों की माँग एक अनुपात में नहीं बढ़ती है। सम्पूर्ण गर्भावस्था के दौरान पोषण आवश्यकताएँ समान नहीं होती हैं। गर्भावस्था के अन्तिम त्रिमास में पोषण आवश्यकताएँ अधिक होती हैं।

ऊर्जा: गर्भावस्था में ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है। यह वृद्धि भ्रूण एवं मातृ ऊतकों के विकास के लिए एवं प्रसवोपरांत स्तनपान की तैयारी करने के लिए मातृ शरीर में वसा ऊतक जमा करने के लिए होती है। ऊर्जा की आवश्यकता पूर्ति करने के लिए कार्बोहाइड्रेट का उचित मात्रा में सेवन करना चाहिए। कार्बोहाइड्रेट द्वारा ऊर्जा का पर्याप्त सेवन, प्रोटीन की बचत को सुनिश्चित करता है जिसका उपयोग नए ऊतकों के संश्लेषण में ही होता है। गर्भावस्था में ऊर्जा की माँग में 15 प्रतिशत की वृद्धि होती है, जो लगभग 300 किलो कैलोरी प्रतिदिन के अनुसार होती है। ऊर्जा की यह बढ़ी हुई माँग दूसरे त्रिमास से शुरू होती है। ऊर्जा का उपयोग आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए। अत्यधिक एवं अति कम ऊर्जा का सेवन दोनों ही हानिकारक हो सकते हैं। गर्भावस्था में ऊर्जा के कम सेवन के परिणाम निम्न तालिका में प्रस्तुत हैं:

तालिका 10.1: गर्भावस्था में ऊर्जा प्रतिबंध का प्रभाव

गर्भधान से पूर्व	प्रथम त्रिमास	तृतीय त्रिमास
• कम प्रजनन क्षमता • न्यूरल ट्यूब दोष में वृद्धि	• मृत जन्म में वृद्धि • समय पूर्व जन्म में वृद्धि • नवजात मृत्यु (0-7 दिन) में वृद्धि	• जन्म के समय कम वजन में वृद्धि • समय पूर्व जन्म में वृद्धि • 0-3 माह के शिशु की मृत्यु में वृद्धि

गर्भावस्था से पूर्व जिन महिलाओं का बी0एम0आई0 कम होता है उन्हें अपने आहार की मात्रा बढ़ानी चाहिए जिससे भ्रूण का पर्याप्त विकास हो सके। जिन स्त्रियों का बी0एम0आई0 अधिक होता है उन्हें अपने वजन पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

तालिका 10.2: गर्भावस्था के दौरान बी0एम0आई0 के अनुसार वजन में प्रस्तावित वृद्धि

बी0एम0आई0	गर्भावस्था के दौरान वजन में प्रस्तावित वृद्धि (कि0ग्राम)
<19.8	12.5-18
19.8-26	11.5-16
26.1-29	7-11.5
>29	6.8

प्रोटीन: गर्भावस्था में गर्भवती स्त्री को सामान्य स्त्री की अपेक्षा अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। गर्भस्थ शिशु के शरीर निर्माण एवं विकास, माता के ऊतकों के विकास, गर्भनाल एवं एमनियोटिक द्रव के निर्माण तथा बढ़ी हुई रक्त की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए प्रोटीन की

आवश्यकता बढ़ जाती है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् द्वारा गर्भवती स्त्री के आहार में 82.2 ग्राम प्रोटीन की प्रस्तावना की गई है। जो महिलाएं पर्याप्त प्रोटीन का उपयोग करने में विफल रहती हैं उनमें एनीमिया, गर्भपात, संक्रमण आदि का खतरा बढ़ जाता है। ऐसी महिलाएँ कम वजन एवं कम लम्बाई वाले बच्चे को जन्म देती हैं। प्रोटीन की पूर्ति हेतु गर्भवती स्त्री के आहार में दालें, सूखे मेवे, सोयाबीन, मांस, मछली, अंडा, दूध, पनीर आदि भोज्य पदार्थों को सम्मिलित करना चाहिए।

वसा: गर्भावस्था में वसा की मात्रा बढ़ाये जाने की आवश्यकता नहीं होती है। प्रतिदिन 30 ग्राम वसा का उपयोग उचित रहता है। इससे ज्यादा वसा का सेवन मोटापा बढ़ाता है जिससे अन्य बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। गर्भावस्था में संतृप्त वसा का प्रयोग कम से कम करना चाहिए। असंतृप्त वसा का प्रयोग श्रेयस्कर रहता है।

कैल्शियम: गर्भस्थ शिशु की अस्थियों एवं दाँतों के विकास में कैल्शियम का महत्वपूर्ण योगदान होता है। गर्भावस्था के अन्तिम तीन महीनों में कैल्शियम की माँग बढ़ जाती है क्योंकि गर्भस्थ शिशु का विकास तीव्र गति से होता है। गर्भावस्था में कैल्शियम की प्रतिदिन प्रस्तावित मात्रा 1200 मिलीग्राम है। यदि माता के आहार में कैल्शियम की पूर्ति नहीं होती है तो गर्भस्थ शिशु माता के शरीर में संग्रहित कैल्शियम को ही अवशोषित करने लगता है। परिणामस्वरूप माता की अस्थियाँ एवं दाँत दुर्बल हो जाते हैं तथा उसके शरीर में कैल्शियम की कमी होने लगती है। कैल्शियम प्राप्ति के लिए दूध, पनीर, दही, छाछ, खीर एवं दूध से बने व्यंजनों का उपयोग करना चाहिए। यदि आहार से कैल्शियम की पूर्ति नहीं होती है तो कैल्शियम की गोलियों या टॉनिक का सेवन किया जाना चाहिए।

लौह लवण: गर्भस्थ शिशु के शरीर में रक्त एवं हीमोग्लोबिन निर्माण के लिए लौह लवण अत्यन्त आवश्यक है। वैज्ञानिक शोधों एवं अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि एक शिशु जब जन्म लेता है तब उसके शरीर में 200-230 मिलीग्राम लौह लवण संग्रहित रहता है। भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद् के अनुसार गर्भवती माता को प्रतिदिन 35 मिलीग्राम लौह लवण का सेवन करना प्रस्तावित है। यदि माता के आहार में पर्याप्त मात्रा में लौह तत्व उपस्थित नहीं होता है तो शिशु माता के रक्त से लौह लवण अवशोषित करने लगता है, जिसके कारण गर्भवती स्त्री एनीमिया से ग्रसित हो सकती है। सुपोषित माता के गर्भ से उत्पन्न शिशु के शरीर में 6 माह तक समुचित मात्रा में लौह लवण संग्रहित रहता है। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, यकृत, केला, गुड़, पालक, बथुआ, अंडे की जर्दी, शलजम, हल्दी आदि लौह लवण प्राप्ति के मुख्य स्रोत हैं। इन खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त गर्भवती स्त्री को डॉक्टर द्वारा परामर्शित लौह लवण की गोलियाँ अवश्य लेनी चाहिए।

विटामिन ए: शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सम्पन्न करने तथा रोगों से सुरक्षा के लिए गर्भावस्था में अधिक मात्रा में विटामिन ए की आवश्यकता होती है। एक नवजात शिशु के यकृत में 5400-7200 माइक्रोग्राम रेटीनॉल उपस्थित रहता है। शिशु यह विटामिन माता के शरीर से ही प्राप्त करता है। शिशु द्वारा इतनी अधिक मात्रा में विटामिन 'ए' संग्रहित करने के लिए माता के आहार में

प्रतिदिन सामान्य से अतिरिक्त 200 माइक्रोग्राम रेटिनॉल की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में 6400 माइक्रोग्राम बीटा कैरोटीन की आवश्यकता होती है। सभी प्रकार के पीले फल जैसे पपीता, आम, गाजर, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, कद्दू आदि विटामिन ए के अच्छे स्रोत हैं। अतः इनका प्रयोग प्रचुर मात्रा में करना चाहिए।

विटामिन डी: कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के अवशोषण हेतु विटामिन 'डी' अत्यावश्यक है। विटामिन 'डी' अस्थियों एवं दाँतों की वृद्धि, सुदृढ़ता एवं मजबूती में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गर्भावस्था में एवं उसके पश्चात् हड्डियों को स्वस्थ रखने और शरीर में कैल्शियम के बेहतर अवशोषण के लिए विटामिन डी का पर्याप्त मात्रा का सेवन करना चाहिए। सूर्य की रोशनी विटामिन 'डी' का अच्छा स्रोत है।

विटामिन सी: गर्भावस्था में स्कर्वी रोग से बचाव, मसूढ़ों की मजबूती, संक्रामक रोगों से बचाव जैसे सर्दी, जुकाम आदि के लिए विटामिन सी अत्यन्त आवश्यक है। गर्भस्थ शिशु के विकास में विटामिन सी का अमूल्य योगदान होता है क्योंकि यह शरीर में कोलेजन (collagen) का निर्माण करने में मदद करता है। कोलेजन शरीर की विभिन्न कोशिकाओं एवं ऊतकों को जोड़ने में काम आता है, जैसे अस्थि, दाँत, संयोजी ऊतक आदि। गर्भावस्था के दौरान प्रतिदिन 60 मिली ग्राम विटामिन सी अवश्य रूप से लेना चाहिए। इसके लिए आँवला, खट्टे फल, नींबू, अमरूद आदि का उपयोग भी प्रतिदिन करना चाहिए।

फोलिक अम्ल: फोलिक अम्ल की आवश्यकता लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन के लिए होती है। यह मस्तिष्क, तंत्रिका तन्त्र और रीढ़ की हड्डी में तरल पदार्थ के लिए भी महत्वपूर्ण है। गर्भावस्था के दौरान 500 माइक्रोग्राम फोलिक अम्ल प्रतिदिन लेना चाहिए। हरी पत्तेदार सब्जियाँ, यकृत, गुर्दे, खमीर, साबुत अनाज, तिल आदि भोज्य पदार्थों में फोलिक अम्ल बहुतायत में मिलता है। अतः गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन अपने आहार में इन भोज्य पदार्थों को अवश्य रूप से सम्मिलित करना चाहिए।

जल एवं तरल पदार्थ: गर्भावस्था में पौष्टिक तत्वों के साथ-साथ जल एवं तरल पदार्थों की भी आवश्यकता होती है। जल एवं तरल पदार्थों से रक्त की तरलता बनी रहती है तथा माता और भ्रूण में उत्पन्न हुए व्यर्थ पदार्थ पसीने एवं मूत्र के द्वारा उत्सर्जित कर दिये जाते हैं। जल की प्राप्ति के लिए गर्भवती स्त्री को दिनभर में 8-10 गिलास जल पीना चाहिए। गर्मी के मौसम में जल की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। फलों का रस, सब्जियों के सूप, शर्बत, छाछ आदि अन्य पेय पदार्थों को अपने दैनिक आहार में सम्मिलित करना चाहिए।

आहारीय रेशा: गर्भावस्था में प्रायः सभी स्त्रियों को कब्ज की शिकायत होने लगती है। अतः कब्ज से बचाव के लिए आहार में रेशे युक्त भोज्य पदार्थों को सम्मिलित करना चाहिए। जैसे चोकर सहित आटा, छिलकेदार दाल, अंकुरित चना, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, छिलके सहित फल आदि।

गर्भवती माता के लिए केवल सन्तुलित आहार ग्रहण करना ही पर्याप्त नहीं होता है, बल्कि भोजन ग्रहण करते समय कई बातों को ध्यान में रखना भी आवश्यक है। जैसे:

• गर्भवती स्त्री को निर्धारित समय पर तथा शान्त वातावरण में भोजन करना चाहिए।

• तीन मुख्य आहारों के बीच में दो या तीन बार पोषक नाश्ता भी लेना चाहिए। प्रथम त्रिमास में उल्टी/ जी मिचलाना आदि की परेशानी एवं दूसरे त्रिमास में एसिडिटी की परेशानी से निपटने के लिए जल्दी-जल्दी तथा छोटे-छोटे आहार (small frequent meals) लेते रहने चाहिए।

• भोजन करने के बाद थोड़ी देर टहलना चाहिए।

• बासी, मिर्च मसालेदार एवं गरिष्ठ भोजन से परहेज करना चाहिए।

• अत्यधिक चाय, कॉफी का सेवन नहीं करना चाहिए।

• शराब, सिगरेट, तम्बाकू आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

• दवाओं का प्रयोग चिकित्सक के परामर्श पर ही करना चाहिए।

10.4 धात्रीवस्था में माता का पोषण एवं देखभाल

धात्रीवस्था में माँ को अधिक पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है। गर्भावस्था में ही धात्रीवस्था के लिए शरीर का विकास प्रारम्भ हो जाता है। स्तनों की ग्रन्थियों में वृद्धि और विकास के साथ-साथ माँ के शरीर में वसा के रूप में ऊर्जा का भंडार बन जाता है।

इस अवस्था में गर्भावस्था की तुलना में अधिक पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है क्योंकि इस समय नवजात शिशु को दूध पिलाना होता है। इसके लिए यह आवश्यक है कि माँ के शरीर में पौष्टिक तत्वों का समुचित भंडार हो जिससे वह अपने शिशु को दूध पिला सके। स्तनपान कराने वाली माता की पोषण आवश्यकताए माँ के दूध की पोषक मात्रा एवं दूध उत्पन्न करने में पोषक तत्वों की आवश्यकता पर निर्भर करती है।

ऊर्जा: प्रथम 6 माह तक स्तनपान कराने वाली माता को साधारण स्त्री से 600 कैलोरी तथा 7-12 माह तक 520 कैलोरी अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ऊर्जा की अधिक आवश्यकता दूध के संश्लेषण के लिए आवश्यक होती है।

प्रोटीन: 0-6 माह तक दूध पिलाने वाली माता को 77.9 ग्राम तथा 7-12 माह तक 70.2 ग्राम प्रोटीन प्रतिदिन आवश्यक होता है। प्राणिज भोज्य पदार्थ जैसे दूध, अण्डा, माँस, मछली प्रोटीन प्राप्ति के उत्तम साधन हैं तथा इन खाद्य पदार्थों से उच्च कोटि का प्रोटीन प्राप्त होता है। वनस्पति स्रोतों में सभी प्रकार की दालें प्रोटीन का अच्छा स्रोत हैं।

वसा: इस अवस्था में प्रतिदिन 30 ग्राम वसा का सेवन करना चाहिए। इससे अधिक मात्रा में वसा का सेवन सेहत के लिए हानिकारक हो सकता है। इससे मोटापा हो सकता है।

लौह लवण: माता के दूध में 0.3-0.36 मिलीग्राम प्रति 100 मिली लीटर रक्त लौह लवण उपस्थित होता है। धात्रीवस्था में साधारण अवस्था से बहुत अधिक लौह तत्व की आवश्यकता नहीं होती है। इस अवस्था में प्रतिदिन 25 मिली ग्राम लौह तत्व की आवश्यकता होती है।

कैल्शियम: माँ के दूध में प्रचुर मात्रा में कैल्शियम होता है। इसलिए स्तनपान कराने वाली माता को अधिक मात्रा में कैल्शियम की आवश्यकता होती है। इस समय 1200 मिली ग्राम कैल्शियम प्रतिदिन आवश्यक होता है।

विटामिन ए: धात्रीवस्था में सामान्य से अधिक विटामिन ए की आवश्यकता होती है। माँ के दूध में 42 माइक्रोग्राम रेटिनॉल प्रति 100 मिली लीटर होता है। धारीवस्था में प्रतिदिन 950 माइक्रोग्राम रेटिनॉल या 7600 माइक्रोग्राम बीटा कैरोटीन का सेवन किया जाना चाहिए।

विटामिन सी: धात्रीवस्था में विटामिन सी की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। प्रतिदिन 80 मिली ग्राम विटामिन सी आवश्यक रूप से आहार में लेना चाहिए।

धात्रीवस्था में माता के लिए आहार नियोजन करते समय ध्यान देने योग्य बातें:

- आहार में दूध, अंडा, माँस, मछली आदि प्रोटीन एवं ऊर्जा युक्त भोज्य पदार्थों की मात्रा अधिक होनी चाहिए क्योंकि इनसे उत्तम प्रकार का प्रोटीन प्राप्त होता है। यदि आर्थिक कारणों से यह भोज्य पदार्थ आहार में प्रतिदिन सम्मिलित नहीं किए जा सकते हैं तब दालों का उपयोग उचित रहता है।
- फलों का रस, सब्जियों का सूप, छाछ एवं तरल भोज्य पदार्थों की मात्रा अधिक होनी चाहिए। स्तनपान कराने वाली माता को अधिक जल पीना चाहिए।
- अधिक मिर्च मसाले युक्त भोज्य पदार्थों को आहार में सम्मिलित नहीं करना चाहिए।
- गरिष्ठ, तले-भुने एवं बासी भोजन से परहेज करना चाहिए।
- कैल्शियम की प्राप्ति के लिए दूध एवं दूध से बने व्यंजनों को आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1

सम्पूर्ण गर्भावस्था में स्त्री का लगभग कितना वजन बढ़ना चाहिए?

....

....

गर्भावस्था में कम ऊर्जा सेवन के क्या प्रभाव होते हैं?

....

....

गर्भावस्था में तरल पदार्थों की आवश्यकता क्यों बढ़ जाती है?

....

....

4. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. पूर्ण अवधि गर्भावस्था कितने समय की होती है:

(क) 34 सप्ताह (ख) 36 सप्ताह

(ग) 40 सप्ताह (घ) 44 सप्ताह

b. गर्भावस्था के दौरान ऊर्जा की आवश्यकता सबसे अधिक .... में होती है।

(क) प्रथम त्रिमास (ख) द्वितीय त्रिमास

(ग) तृतीय त्रिमास (घ) सदैव एक समान रहती है

c. यदि माँ बच्चे को दूध पिलाने में असमर्थ हो, ऐसी स्थिति में शिशु को .... देना चाहिए।

(क) सम्पूर्ण दूध (ख) वसा रहित दूध

(ग) फॉर्मूला दूध (घ) अनाज युक्त शिशु आहार

5. सही अथवा गलत बताइए।

a. माँ का दूध शिशु के लिए सर्वोत्तम आहार है।

b. धात्रीवस्था में गर्भावस्था से कम पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

c. धात्रीवस्था में लौह तत्व की आवश्यकता सामान्य रहती है।

d. स्तनपान कराने वाली माता को अधिक तला भुना, वसा युक्त भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए।

e. धात्रीवस्था में अधिक ऊर्जा एवं तरल पदार्थों की आवश्यकता होती है।

10.5 अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध (Intrauterine growth restriction; IUGR)

'अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध' भ्रूण के विकास में संभावित कमी को दर्शाता है। इसको एक अल्ट्रासाउन्ड के माध्यम से निर्धारित भ्रूण के जन्म के समय वजन जो गर्भावधि आयु (Gestation age) के लिए 10 वें प्रतिशतक से कम हो, के रूप में परिभाषित किया जाता है।

"IUGR is defined as a birth weight of less than the 10th percentile for the gestational age as determined through an ultrasound".

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध का तात्पर्य उस भ्रूण या नवजात शिशु से है जो पूर्ण अवधि (40 सप्ताह) में पैदा होने के बावजूद कम वजन के होते हैं। ऐसे शिशुओं को small for gestational age-SGA शिशु कहा जाता है। अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध एक ऐसी स्थिति है जिसमें भ्रूण गर्भावधि के अनुसार कम वजन एवं कम लम्बाई के होते हैं। IUGR के कारण पैदा हुए नवजात शिशु को गर्भावधि आयु के लिए छोटे (small for gestational age-SGA) के रूप में वर्णित किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार IUGR के कारण भ्रूण 10 वें प्रतिशतक (10th percentile) से कम

वजन का होता है। इसका अर्थ है कि IUGR के कारण भ्रूण, सामान्य भ्रूण (समान गर्भावधि) से 90 प्रतिशत कम वजन का होता है। IUGR के कारण शिशु समय पर (गर्भावस्था के 37 सप्ताह बाद) या समय पूर्व (गर्भावस्था के 37 सप्ताह से पूर्व) जन्म ले सकता है। IUGR के कारण जन्मे शिशुओं का जन्म के समय वजन 2.5 किलोग्राम से कम होता है जिसके कारण बड़े होने पर ऐसे बच्चे स्वास्थ्य संबंधी कई जटिलताओं के जोखिम में रहते हैं।

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध को दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है:

(1) सममित (Symmetrical)

(2) असममितिक (Asymmetrical)

IUGR के कारण जब सभी आन्तरिक अंगों के आकार एक ही अनुपात में कम होते हैं, तब इसे सममित अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध कहा जाता है। परन्तु जब मस्तिष्क और सिर सामान्य अनुपात में होते हैं एवं शरीर का अन्य भाग छोटा रह जाता है, तब एसे असममितिक अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध कहा जाता है।

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के कारण:

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध तब होता है जब किसी समस्या या विषमता के कारण शिशु की कोशिकाओं एवं ऊतकों की वृद्धि में अवरोध होता है या कोशिकाओं के आकार में कमी आने लगती है। कोशिकाओं के आकार एवं संख्या में कमी के कारण भ्रूण अंगों और ऊतकों की वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक पोषक तत्व एवं ऑक्सीजन प्राप्त नहीं होती है। यह वृद्धि अवरोध गर्भाशय में संक्रमण के कारण भी हो सकता है।

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध में योगदान देने वाले कुछ कारक निम्नलिखित हैं:

मातृ कारक

- उच्च रक्तचाप
- गुर्दे की बीमारी, मधुमेह
- हृदय रोग
- साँस की बीमारी
- माता में तीव्र कुपोषण
- एनीमिया
- संक्रमण
- मादक पदार्थों का सेवन

गर्भाशय और प्लेसेंटा से जुड़े कारक

- गर्भाशय और नाल में रक्त प्रवाह की कमी

· नाल का गर्भाशय से अलग होना

· नाल का गर्भाशय से बहुत नीचे से जुड़ना

· भ्रूण के आसपास के ऊतकों में संक्रमण

भ्रूण से संबंधित कारक

· गर्भ में कई भ्रूण

· संक्रमण

· जन्म दोष

· आनुवंशिक विषमता

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध का प्रबंधन एवं उपचार

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध का प्रबंधन, वृद्धि अवरोध की गम्भीरता एवं गर्भावस्था के समय पर निर्भर करता है। आमतौर पर गम्भीर एवं गर्भावस्था के प्रथम त्रिमास से वृद्धि अवरोध की शुरुआत होने पर भ्रूण के लिए जोखिम बढ़ जाते हैं। इसके उचित प्रबंधन के लिए विभिन्न परीक्षणों के साथ-साथ भ्रूण की सावधानी से निगरानी की आवश्यकता होती है। अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के उपचार में निम्नलिखित विधियाँ सम्मिलित की जाती हैं:

पोषण: अध्ययनों से ज्ञात होता है कि मातृ पोषण स्तर बढ़ाने से माँ का वजन बढ़ता है जिससे भ्रूण के विकास में वृद्धि हो सकती है।

उचित विश्राम: उचित विश्राम से भ्रूण के शरीर में परिसंचरण में सुधार हो सकता है।

सुरक्षित प्रसव: यदि अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के कारण भ्रूण का स्वास्थ्य खतरे में है तो सुरक्षित प्रसव के लिए, प्रसव समय से पहले भी कराया जा सकता है।

अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध की रोकथाम

माँ का स्वास्थ्य अच्छा होने पर भी उसके द्वारा सिगरेट पीना, शराब का सेवन अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के खतरे को बढ़ा देता है। हानिकारक जीवन शैली से बचना, सन्तुलित आहार का सेवन, प्रसव पूर्व उचित देखभाल, रक्त शर्करा एवं रक्तचाप के स्तर को सामान्य रखना, दवाओं का प्रयोग कम करना आदि कारक इसके जोखिम को कम करने में मदद कर सकते हैं। अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध का जल्दी पता चलना भी इसके उपचार एवं प्रभावों को कम करने में मदद करता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के मुख्य कारण क्या हैं?

....

....

2. अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध की रोकथाम कैसी की जा सकती है?

....

....

3. सही अथवा गलत बताइए।

a. मातृ डायबिटीज के कारण अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध हो सकता है।

b. अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध के कारण शिशु का वजन 10 प्रतिशतक से कम होता है।

c. अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध को प्रसवपूर्व उचित देखभाल से समाप्त किया जा सकता है।

10.6 किशोर गर्भावस्था

प्रजनन स्वास्थ्य विभाग के अनुसार 19 साल से कम आयु की महिला द्वारा बच्चे को जन्म देना माँ और नवजात शिशु दोनों के लिए खतरनाक हो सकता है। हमारे देश में उच्च मातृ-मृत्यु दर तथा उच्च शिशु मृत्यु दर का एक प्रमुख कारण कम आयु में किशोरियों द्वारा गर्भधारण तथा बच्चे को जन्म देना है।

किशोरियों द्वारा 19 वर्ष से कम आयु में गर्भधारण किशोर गर्भावस्था कहा जाता है। अल्प आयु में किशोरियां शारीरिक तथा मानसिक रूप से बच्चे को जन्म देने की स्थिति में नहीं होती हैं परन्तु विभिन्न सामाजिक, आर्थिक कारणों से गर्भधारण के लिए बाध्य हो जाती हैं। 15-19 वर्ष की लड़कियों द्वारा बच्चे को जन्म देने की संख्या, कुल नवजात शिशु जन्म का 17 प्रतिशत है। लगभग तीन में से एक किशोर माता को प्रसव पूर्व सेवाएं प्राप्त नहीं हो पाती हैं जिसके कारण गर्भधारण के दौरान उन्हें कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आंकड़ों के अनुसार विश्व की कुल मातृ मृत्यु दर की 13 प्रतिशत मौतों का कारण कम आयु में गर्भधारण तथा बच्चे को जन्म देना होता है। इसी प्रकार कुल मातृ मृत्यु की 15 प्रतिशत मृत्यु का कारण कम आयु में विवाह तथा गर्भधारण से जुड़ी समस्याएं हैं। कम आयु में गर्भधारण तथा मां बनने से अल्प भार वाले बच्चों के जन्म की भी संभावना अधिक होती है जिससे नवजात शिशु के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। कम आयु में गर्भधारण तथा बच्चे का जन्म किशोरियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को भी प्रभावित करता है।

गर्भावस्था के दौरान प्रसव पूर्व परिचर्या का काफी महत्व होता है, विशेषकर किशोरियों के लिए इस परिचर्या का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि इस आयु में मां बनने से सामाजिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं बढ़ जाती हैं। गर्भावस्था के दौरान गर्भवती स्त्री का वजन, रक्तदाब तथा गर्भाशय के आकार का आंकलन कर, गर्भ की संतोषजनक प्रगति की जानकारी ली जा सकती है। अतः प्रसव पूर्व परिचर्या की शुरुआत गर्भावस्था के पहले त्रिमास से ही कर देनी चाहिए ताकि किसी भी जटिलता का पता लगाया जा सके तथा समय से उसका निदान किया जा सके।

कारण

बाल विवाह, भावनात्मक संबंध, माता पिता से अच्छे संबंध न होना, बेरोजगारी, गरीबी, दोस्तों का दबाव आदि किशोरावस्था में गर्भधारण के मुख्य कारण हैं।

किशोर गर्भावस्था में देखभाल

गर्भवती किशोरी को वयस्क माताओं की अपेक्षा अधिक पोषण एवं देखभाल की आवश्यकता होती है, इसके कुछ निम्नलिखित कारण हैं:

• प्रथम मासिक धर्म के चार से पांच वर्षों तक किशोरी के शरीर का विकास जारी रहता है। इस दौरान यदि वह गर्भवती हो जाती है तो भ्रूण के विकास के साथ उसे अपने विकास के लिए भी अतिरिक्त पोषण की आवश्यकता होती है, जिसका ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है।

• किशोरियों में रक्ताल्पता, पोषण की एक प्रमुख कमी के रुप में व्याप्त है जो मुख्यतः शरीर में लौह लवण की कमी के कारण होता है। गर्भावस्था के दौरान लौह लवण की आवश्यकता और बढ़ जाती है जिसका ध्यान रखना आवश्यक है। अतः इस अवस्था में किशोरियों को लौह लवण तथा विटामिन सी से युक्त पदार्थों का सेवन करना चाहिए जो भोजन में लौह लवण की कमी को पूरा करने में सहायता करते हैं। सामान्यतः इस अवस्था में हरी पत्तेदार सब्जियां, फलियां, गिरीदार फल, तिलहन, गुड़ और मांस उत्पाद लेने चाहिए। इसके अतिरिक्त विटामिन सी की आपूर्ति के लिए नींबू, आंवला, अमरूद और अंकुरित दालें आहार में आवश्यक रूप से सम्मिलित करने चाहिए।

यदि गर्भावस्था के दौरान रक्ताल्पता पाई जाती है तो प्रतिदिन 200 मि.ग्रा. लौह लवण एवं फोलिक अम्ल दिया जाना चाहिए। गर्भाधारण के चार महीने के बाद से प्रसव के तीन महीने तक लौह लवण की गोली प्रदान करने से गर्भवती किशोरी की रक्ताल्पता की समस्या को ठीक किया जा सकता है। किशोर गर्भवती महिलाओं को भी अन्य गर्भवतियों की तरह टिटेनस की दो खुराकें 4-6 सप्ताह के अंतर पर दी जानी चाहिए। गर्भावस्था के दौरान कठिन शारीरिक श्रम से बचना चहिए।

किशोर गर्भावस्था के परिणाम

• व्यक्तिगत विकास में बाधाः किशोरावस्था के दौरान गर्भावस्था, माता एवं शिशु दोनों के लिए जोखिम पूर्ण होता है। छोटी आयु में मां बनने से जीवन की सारी योजनाएं प्रभावित होती हैं, चाहे वह शिक्षा हो या रोजगार या जीवन यापन के अन्य सुअवसर।

• गरीबी का पीढ़ी दर पीढ़ी दुष्चक्र: छोटी आयु में बच्चों को जन्म देना भावी पीढ़ी के विकास को भी प्रभावित करता है। इस आयु में गर्भावस्था भविष्य की योजनाओं को प्रभावित करती है जिसका उनके आर्थिक स्तर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अनुभवहीन माता-पिता अपने बच्चों का उचित लालन पालन नहीं कर पाते। अतः उन्हें अपने किशोर बच्चों को या तो कार्य करने के लिए बाध्य करना पड़ता है या उनकी कम आयु में शादी कर दी जाती है जो गरीबी के पीढ़ी दर पीढ़ी दुष्चक्र को जन्म देती है।

• **स्वास्थ्य समस्याएं**

लंबाई एवं शारीरिक भार: जिन किशोरियों का शारीरिक भार गर्भावस्था के समय 38 किलोग्राम से कम तथा लम्बाई 145 से.मी. से कम होती है, उन्हें गर्भावस्था के संदर्भ में जोखिम के दायरे में माना जाता है। उनकी कमर की श्रोणि हड्डियाँ अभी पूरी तरह विकसित नहीं रहती हैं जिससे प्रसव के समय बाधा उत्पन्न हो सकती है जो शिशु और मां दोनों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

पोषण: गर्भावस्था के दौरान पर्याप्त पोषण की आवश्यकता होती है। कुपोषण की स्थिति में गर्भाधान तथा प्रसव शिशु तथा माता दोनों के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होता है। युवा अवस्था में शरीर को काफी पोषण की आवश्यकता होती है तथा इसी दौरान गर्भधारण करने से भ्रूण एवं माता दोनों के शरीर के विकास के लिए पोषण उपलब्ध हो पाना कठिन हो जाता है। एक आंकड़े के अनुसार, प्रजनन स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के कारण होने वाली मृत्यु में सामान्य महिलाओं की अपेक्षा 15 से 19 साल की किशोरियों की संख्या दोगुनी तथा 10 से 14 साल की किशोरियों की संख्या पांच गुनी है।

कम भार के शिशु का जन्मः अगर शिशु का वजन जन्म के समय 2500 ग्राम से कम होता है, उसे कम भार का शिशु माना जाता है। ऐसे शिशुओं के जन्म की संभावना सामान्य माताओं की अपेक्षा उन माताओं में अधिक होती है, जिनकी आयु 20 वर्ष से कम होती है।

दीर्घकालिक स्वास्थ्य समस्याएं: किशोरावस्था में प्रसव के दौरान आने वाली समस्याएं बच्चे के जन्म के बाद भी जारी रह सकती हैं। प्रसूतिकालीन प्रसव पीड़ा स्थायी रूप से प्रजनन तंत्र को क्षति पहुंचा सकती है। इसके अतिरिक्त कई दीर्घकालिक समस्याएं जैसे गर्भाशय का फटना, संक्रमण, स्त्री प्रसूति संबंधी समस्याएं भी उत्पन्न हो सकती हैं।

गर्भपात: किशोरावस्था में गर्भधारण कई बार चिंता का कारण बन सकता है जिस कारण गर्भपात भी कराना पड़ सकता है। सामाजिक-आर्थिक कारणों से इस प्रकार का निर्णय लेने में सामान्यतः काफी देर हो जाती है जिसके कारण किशोरियों को गैर कानूनी रूप से गर्भपात कराना पड़ता है जो असुरक्षित होता है और स्वास्थ्य समस्याओं के साथ कई बार मृत्यु का कारण भी बन सकता है।

संक्रमण: प्रसव संबंधी समस्याओं के कारण किशोरियों को संक्रमण का खतरा अधिक होता है। उस स्थिति में यह खतरा और भी बढ़ जाता है जब प्रसव चिकित्सकों की देख रेख के बिना तथा उचित जगह पर नहीं कराया जा रहा हो। इस दौरान टिटेनस और बैक्टीरिया जनित संक्रमण का खतरा और अधिक हो जाता है।

10.7 स्तनपान

माँ का दूध शिशु के लिए प्राकृतिक एवं सम्पूर्ण आहार है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार सभी शिशुओं को विशेष रूप से छह महीने की आयु तक आवश्यक रूप से स्तनपान कराना चाहिए और छह महीने के पश्चात् दो वर्ष की आयु तक पर्याप्त मात्रा में अनुपूरक आहार के साथ स्तनपान जारी

रखना चाहिए। ऐसे समय में जब शिशु के विकास की दर उच्चतम अवस्था में होती है, माँ का दूध शिशु को सभी पौष्टिक तत्व पर्याप्त एवं उचित मात्रा उपलब्ध कराता है।

माँ के दूध की विशेषताएँ

- माँ का दूध शिशु के पाचन अंगों के अनुकूल होता है तथा हमेशा तैयार मिलता है।
- माँ के दूध में इम्यूनोग्लोब्यूलिन्स (immunoglobulin) पाये जाते हैं जिसमें सूक्ष्म जीवों तथा रोगों से लड़ने की क्षमता होती है।
- माँ के दूध में लाइसोजाइम (Lysozyme) की मात्रा भी अन्य जानवरों के दूध की अपेक्षा अधिक (2 मिलीग्राम प्रति मिलीलीटर होती है। इसमें भी जीवाणुओं से लड़ने की क्षमता होती है।
- माँ के दूध में 'लैक्टोफेरिन' नामक प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहता है। इसमें लौह तत्व को बाँधने का अद्भुत गुण होता है। जानवरों के दूध में लैक्टोफेरिन अत्यन्त ही सूक्ष्म मात्रा में पाया जाता है।
- माँ के दूध में 'लैक्टोबैसिलस बिफिडस फैक्टर प्रचुर मात्रा में उपस्थित रहता है। यह फैक्टर लैक्टोबैसिलस बिफिडस जीवाणु की वृद्धि एवं विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह बैक्टीरिया शिशु की आँत में पाया जाता है तथा पाचन क्रिया में सहायता पहुँचाता है।
- माँ के दूध में स्टेफाइलोकोकस अवरोध कारक (Staphylococcus resistant factor) उपस्थित रहते हैं जिसके कारण Staphylococci बैक्टीरिया शिशु को रोगग्रस्त नहीं कर पाता है।
- माँ के दूध में 'लिम्फॉयड कोशिकाएँ' (Lymphoid cells) अत्यधिक संख्या में उपस्थित होती हैं। ये कोशिकाएँ इम्यूनोग्लोब्यूलिन IgA का उत्पादन करती हैं जिससे शरीर में रोग-रोधक क्षमता बढ़ती है।
- माँ के दूध में अन्य जानवरों के दूध की अपेक्षा अत्यधिक मात्रा में विटामिन C एवं लौह तत्व पाया जाता है। छह माह तक के शिशु के लिए आवश्यक विटामिन सी एवं लौह तत्व की पूर्ति माता के दूध से हो जाती है।
- माँ के दूध में बहुअसंतृप्त वसीय अम्ल उपस्थित होते हैं जिससे माँ का दूध जैविक रूप से अधिक शक्तिशाली होता है। ये वसीय अम्ल शिशु के अमाशय में सरलता एवं सुगमता से पच जाते हैं।
- माँ के दूध में गाय के दूध की अपेक्षा तीन गुना कम प्रोटीन होता है। यह दूध शिशु के अपरिपक्व अमाशय एवं आँतों के द्वारा आसानी से पचा लिया जाता है।
- माँ के दूध में सिस्टीन अमीनो अम्ल की मात्रा अधिक होती है। शिशु के लिए यह अमीनो अम्ल अति आवश्यक होता है।

• माँ के दूध में खनिज लवणों की मात्रा पशु के दूध से कम होती है जो शिशु के पाचन के लिए उपयुक्त है। माँ के दूध में बफर क्षमता भी कम होती है जिससे अमाशयिक रस का pH बहुत अधिक या कम नहीं हो पाता है। फलस्वरूप माँ का दूध आसानी से पच जाता है। खनिज लवणों की मात्रा कम होने से किडनी पर भी कम भार पड़ता है।

स्तनपान के लाभ

माँ के दूध की विशेषताएँ इसे अन्य भोज्य पदार्थों एवं तत्वों से बिल्कुल अलग श्रेणी में रखती हैं। स्तनपान के लाभ माता एवं शिशु दोनों को ही प्राप्त होते हैं।

स्तनपान कराने से माँ को लाभ

• स्तनपान कराने से माँ को मानसिक सन्तुष्टि एवं खुशी मिलती है।

• इससे माता और शिशु के बीच भावनात्मक सम्बन्ध मजबूत बनता है।

• स्तनपान कराने वाली माताएँ देर से गर्भवती होती हैं क्योंकि स्तनपान प्रक्रिया एक प्राकृतिक गर्भनिरोधक विधि की तरह भी कार्य करती है।

• स्तनपान से माता का गर्भाशय अपनी पूर्वाकृति को शीघ्रता से प्राप्त कर लेता है क्योंकि इस क्रिया में गर्भाशय की पेंशियों का संकुचन उचित ढंग से होता है।

स्तनपान करवाने से शिशु को लाभ

• माँ का दूध सुपाच्य होता है।

• शिशु को संक्रामक रोग होने की सम्भावना कम होती है। अतः वृद्धि एवं विकास उत्तरोत्तर गति से होता है।

• शिशु के जन्म के पश्चात प्रारम्भिक दिनों में माता के स्तनों से निकलने वाले गाढ़े पीले तरल पदार्थ 'कोलोस्ट्रम' में खनिज लवण, वसा एवं प्रोटीन का अनुपात अधिक होता है। यह शिशु में पाचन शक्ति एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाता है।

• स्तनपान करने वाले शिशु स्वस्थ एवं उचित वृद्धि एवं विकास प्राप्त करते हैं।

• स्तनपान से शिशु की आँतों में एक विशेष प्रकार के जीवाणुओं की वृद्धि होती है, जो विटामिन बी का निर्माण करती है।

• शिशु के पाचन तन्त्र के अनुसार ही माता के दूध का संगठन होता है। प्रारम्भ में यह पतला होता है क्योंकि शिशु का पाचन तन्त्र अपरिपक्व होता है। किन्तु जैसे-जैसे शिशु के शरीर में परिपक्वता आती है, दूध के रासायनिक संगठन एवं स्वरूप में परिवर्तन होता जाता है।

• शिशु को माँ का दूध हर मौसम में उचित तापक्रम पर उपलब्ध रहता है।

• माँ का दूध साफ, स्वच्छ, कीटाणु-रोगाणु रहित होता है। इसे पिलाने के लिए किसी बोतल, बर्तन की आवश्यकता नहीं होती है। इसलिए इसमें किसी भी प्रकार के संक्रमण की कोई सम्भावना नहीं रहती है। अत: माँ का दूध पीने वाले बच्चे कम बीमार पड़ते हैं।

• छह माह तक के शिशु के पोषण के लिए माता का दूध पर्याप्त होता है।

• माँ का दूध पीने वाले बच्चों को कब्ज की शिकायत नहीं होती है।

• स्तनपान से शिशु में सुरक्षा का भाव आता है।

अभ्यास प्रश्न 3

बहुविकल्पीय प्रश्न

1.किशोरावस्था में गर्भवती होने पर किशोरी के लिए निम्नलिखित में से किसका जोखिम बढ़ जाता है:

(क) समय पूर्व प्रसव (ख) जटिलता

(ग) एनीमिया (घ) सभी

2.संतुलित आहार लेने के अतिरिक्त गर्भावस्था में कौन सी खनिज लवण गोलियाँ लेने का परामर्श दिया जाता है:

(क) पोटेशियम (ख) लौह लवण

(ग) आयोडीन (घ) जस्ता

3.माँ का दूध के विषय में कौन सा कथन सही है:

(क) माँ के दूध में पशु दूध से कम प्रोटीन होता है।

(ख) फॉर्मूला आहार से कम पौष्टिक होता है।

(ग) इससे शिशु को एलर्जी हो सकती है।

(घ) उपरोक्त सभी

4.गर्भावस्था के दौरान माता को .... नहीं करना चाहिए।

(क) सिगरेट पीना (ख) शराब सेवन

(ग) प्रोटीन प्रतिबन्ध (घ) उपरोक्त सभी

5.धात्रीवस्था के प्रथम छ: माह में साधारण क्रियाशील माँ की प्रोटीन आवश्यकता लगभग ....बढ़ जाती है।

(क) 22 ग्राम (ख) 30 ग्राम

(ग) 50 ग्राम (घ) 100 ग्राम

10.8 सारांश

शिशु का स्वास्थ्य माँ के स्वास्थ्य से सीधी तरह से जुड़ा होता है। शिशु के उत्तम स्वास्थ्य के लिए माँ की दो महत्वपूर्ण शारीरिक अवस्थाएँ; गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था पूर्ण रूप से जिम्मेदार हैं। एक स्वस्थ समाज की कल्पना के लिए माँ का स्वस्थ होना अति आवश्यक है। कुपोषित स्त्रियाँ कमजोर एवं कम वजन वाले शिशु को जन्म देती हैं। गर्भवती माँ का आहार ऐसा होना चाहिए जो उसके स्वयं के लिए तथा गर्भस्थ शिशु के लिए सभी पौष्टिक तत्वों से भरपूर हो। इसी प्रकार स्तनपान कराने वाली माता के स्वास्थ्य एवं पोषण का भी ध्यान रखना चाहिए क्योंकि इस अवस्था में माता का पोषण वास्तव में शिशु का पोषण है। गर्भावस्था में विभिन्न कारकों जैसे मातृ कुपोषण, हृदय रोग, मधुमेह, माता का सिगरेट, शराब का सेवन, एनीमिया, संक्रमण आदि के कारण अंतर्गर्भाशयी विकास प्रतिबन्ध जैसी समस्या हो सकती है। इस समस्या के कारण शिशु का समग्र विकास नहीं हो पाता है। ऐसे शिशु अन्य सामान्य शिशुओं से वजन में काफी कम रह जाते हैं। जैसे-जैसे वह बड़े होते हैं, वह स्वास्थ्य संबंधी कई जोखिमों का सामना करते हैं। उचित प्रसवपूर्व देखभाल एवं माता के पोषण से अंतर्गर्भाशयी विकास प्रतिबन्ध के प्रभाव को रोका जा सकता है। किशोरावस्था में गर्भाधान भी कई प्रकार की जटिलताओं का कारण होता है। कम आयु में गर्भधारण माँ एवं शिशु दोनों के लिए नुकसानदेह होता है।

10.9 पारिभाषिक शब्दावली

- भ्रूण: माँ के गर्भाशय में पलने वाला शिशु
- समय पूर्व शिशु: जो शिशु गर्भावस्था के 37 सप्ताह से पहले पैदा होते हैं।
- पूर्णावधि छोटे शिशु: जो शिशु गर्भावस्था के 37 हफ्तों बाद (Small for gestation age-SGA) पैदा होते हैं परन्तु उनका भार एवं लम्बाई कम होती है।
- न्यूरल ट्यूब दोष: स्पाइनल कॉर्ड (मेरुदण्ड) का दोषपूर्ण जुड़ाव या बिना जुड़ाव के रह जाना।
- Preeclampsia: गर्भावस्था में उच्च रक्त चाप, द्रव प्रतिधारण एवं मूत्र में प्रोटीन का निकलना।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सम्पूर्ण गर्भावस्था में स्त्री का लगभग 10 किलो वजन बढ़ना चाहिए।
2. गर्भावस्था में कम ऊर्जा सेवन के प्रभाव निम्न होते हैं:

गर्भधान से पूर्व	प्रथम त्रिमास	तृतीय त्रिमास

कम प्रजनन क्षमता न्यूरल ट्यूब दोष में वृद्धि	मृत जन्म में वृद्धि समय पूर्व जन्म में वृद्धि नवजात मृत्यु (0-7 दिन) में वृद्धि	जन्म के समय कम वजन में वृद्धि समय पूर्व जन्म में वृद्धि 0-3 माह के शिशु की मृत्यु में वृद्धि

3. गर्भावस्था में जल एवं तरल पदार्थों के उचित सेवन से रक्त की तरलता बनी रहती है तथा माता एवं भ्रूण में उत्पन्न हुए व्यर्थ पदार्थ पसीने एवं मूत्र के द्वारा उत्सर्जित कर दिए जाते हैं।

4. बहुविकल्पीय प्रश्न

a. 40 सप्ताह

b. तृतीय त्रिमास

c.फॉर्मूला दूध

5. सही अथवा गलत बताइए।

a. सही

b. गलत

c. सही

d. सही

e. सही

अभ्यास प्रश्न 2

1. इकाई का मूल भाग देखें।

2. हानिकारक जीवन शैली जैसे शराब, सिगरेट आदि के सेवन से बचना, सन्तुलित आहार का सेवन, प्रसव पूर्व उचित देखभाल, रक्त शर्करा एवं रक्तचाप के स्तर को सामान्य रखना, दवाओं का प्रयोग कम करना आदि कारक इसके जोखिम को कम करने में मदद कर सकते हैं। अंतर्गर्भाशयी वृद्धि अवरोध का जल्दी पता चलना भी इसके उपचार एवं प्रभावों को कम करने में मदद करता है।

3. सही अथवा गलत बताइए।

a. सही

b.सही

c. सही

अभ्यास प्रश्न 3

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. (घ) सभी

2. (ख) लौह लवण

3. (ख) फॉर्मूला आहार से कम पौष्टिक होता है।
4. (घ) उपरोक्त सभी
5. (क) 22 ग्राम

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- K.A. Meena. 2012. Donald School Manual of Practical Problems in obstetrics. Jaypee Medical Publishers. New Delhi. 480-485 pp.
- Bhat S.R. 2010. Achars Text book of Pediatrics. 4th ed. University Press New Delhi. 184-189 pp.
- इंटर्नेट स्रोत:
- www.iugr.blogspot.in

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गर्भावस्था एवं धात्रीवस्था की बढ़ी हुयी पोषण आवश्यकताओं का तुलनात्मक विवरण दीजिए।
2.अंतगर्भाशयी विकास प्रतिबंध के विभिन्न कारणों, लक्षण, उपचार एवं रोकथाम के उपायों की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. किशोर गर्भावस्था के नकारात्मक पहलुओं पर प्रकाश डालिए तथा इस समस्या से निपटने के उपाय बताइये।

इकाई 11: बाल्यावस्था और किशोरावस्था के लिए पोषण

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 बाल्यावस्था : विशेषताएं, शारीरिक परिवर्तन एवं पोषण आवश्यकता
11.4 किशोरावस्था : विशेषताएं, शारीरिक परिवर्तन एवं पोषण आवश्यकता
11.5 सारांश
11.6 पारिभाषिक शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में हमने 6-12 वर्ष के बालकों को विद्यालयी बालकों की श्रेणी में लिया है। इस अवस्था को उत्तर बाल्यायवस्था भी कहा जाता है। शालापूर्व अवस्थाक में बालक नर्सरी कक्षा में पाठशाला पढ़ने जाता है या घर पर ही माता पिता से खेल के माध्याम से शिक्षा ग्रहण करता है, किन्तु विद्यालयी अवस्था में बालक औपचारिक रूप से शिक्षा ग्रहण करने लगता है।

विद्यालयी अवस्था के दौरान बालकों की विकास दर धीमी एवं नियमित होती है परन्तुक जो कुछ विकास पूर्व अवस्था में हो जाता है उसे एक स्थायी रूप व आकार मिल जाता है। अत: इस अवस्था में शारीरिक एवं मानसिक क्षमताएं परिपक्व होने लगती हैं। इसलिए बालकों की इस आयु को "मिथ्या् परिपक्वीता की अवस्थाए" (Stage of pseudo maturity) भी कहते हैं। बच्चों के समग्र विकास के लिए पौष्टिक एवं उच्च प्रोटीन युक्त आहार खिलाना नितान्त आवश्यक होता है।

13-18 वर्ष की अवस्था को किशोरावस्था कहा जाता है। यह परिवर्तन की अवस्था होती है। इस आयु में व्यक्ति के शरीर में कई शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। 18 वर्ष की आयु तक पहुँचने पर बच्चे का वजन दोगुना हो जाता है। बालक अपनी पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेता है तथा बालक और बालिकाओं के मध्य स्पष्ट शारीरिक परिवर्तन दिखाई देने शुरु हो जाते हैं। दोनों ही लिंगों में पूर्ण यौन परिपक्वता देखी जाती है। इस अवस्था में शारीरिक वृद्धि की गति अत्यंत तीव्र होती है जिसके अंतर्गत अस्थियों का बढ़ना, मांसपेशियों में वृद्धि, लड़कों में कंधों का चौड़ा होना, शरीर में बालों का उगना, आवाज में भारीपन, लड़कियों में स्तनों का विकास, नितम्बों का बढ़ना,

मासिक धर्म की शुरुआत आदि परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस आयु में तेजी से हो रहे शारीरिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए किशोरों के पोषण पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था में होता है।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था की विशेषताएं तथा शारीरिक परिवर्तनों की जानकारी ले पाएंगे;
- बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में बालकों की पोषण आवश्यकताओं को जान पाएंगे; तथा
- बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में आहार नियोजन की जानकारी ग्रहण करेंगे।

11.3 बाल्यावस्था की विशेषताएं व शारीरिक परिवर्तन

इस आयु में अपनाई गई आदतें व व्यूवहार, किशोरावस्था की नींव बनती हैं। इस आयु में बच्चे समूह गतिविधियों में रुचि लेना आरम्भ कर देते हैं और उनका लगाव दोस्तों के प्रति बढ़ने लगता है। इस अवस्था के दौरान शारीरिक विकास की दर धीमी और स्थिर होती है। 5-8 वर्ष की आयु के दौरान बच्चे बड़ी माँसपेशियों को छोटी माँसपेशियों की तुलना में ज्यारदा अच्छे से नियंत्रित कर पाते हैं और 8-12 वर्ष की आयु में छोटी माँसपेशियों का विकास भी तेजी से होता है। किशोरावस्था तक पहुँचने पर बालक शारीरिक वृद्धि, मानसिक विकास तथा संवेगात्मक विशेषताओं से प्रभावित होने लगता है। साथ ही उसे परिवार तथा अपने साथियों के साथ सामंजस्य भी स्थापित करना पड़ता है जिसमें उसकी बहुत सी ऊर्जा व्यय होती है। यदि इस आयु में बालक को पौष्टिक आहार नहीं मिलता तो उसके शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं संवेगात्महक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

वजन एवं लम्बांई: इस आयु सीमा के बच्चों के बीच लम्बाई, वजन और निर्माण में काफी अंतर देखने को मिलता है। इसका कारण है कि आनुवंशिक पृष्ठंभूमि, पोषण और व्यायाम बच्चे के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। बालकों की ऊँचाई में 7 से 12 वर्ष तक की आयु में 5.2 से लेकर 6.0 से0मी0 तक की वृद्धि होती है जबकि बालिकाओं में इस दौरान 5.8 से लेकर 6.4 से0मी0 तक की वृद्धि होती है। वजन के मामले में बालकों में 7 से 8 वर्ष में 2.5 किलो, 8 से 9 वर्ष में 2.7 किलो, 9 से 10 वर्ष में 3.1 किलो की वृद्धि होती है जबकि बालिकाओं में 7 से 8 वर्ष में 2.6 किलो, 8से 9 वर्ष में 3.2 किलो और 9 से 10 वर्ष में 3.7 किलो की बढ़ोतरी होती है।

2. इस आयु में बालकों में क्रियाशीलता और आत्म निर्भरता दोनों ही बढ़ जाती है। वे अपना हर कार्य स्वयं करना चाहते हैं जैसे नहाना, वस्त्र पहनना, भोजन करना, अपनी वस्तुओं को यथा स्थान रखना आदि। दूसरों का हस्तक्षेप उन्हें पसन्द नहीं आता।

3. विद्यालयी बालकों में समूह भावना बहुत प्रबल होती है। वे अधिकांश समय अपने दोस्तों के साथ बिताना चाहते हैं जिसके कारण वो अपने भोजन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाते। समूह में रहकर बालक सामाजिक मान्यताओं एवं आचरणों को सीखता है।

4. बाल्यावस्था में बालक के हाथ पैरों का विकास शरीर की तुलना में अधिक तीव्रता से होता है जिससे उनकी टाँगें लम्बी प्रतीत होती हैं। अत: इस आयु को सारस अवस्था भी कहा जाता है।

5. इस आयु में बालक पर स्कूल की पढ़ाई, कक्षा में प्रतिस्पर्धा की भावना, सहपाठियों के साथ समायोजन में समस्या आदि कई तरह के दबाव होते हैं जिससे बालक तनाव में रहता है। यद्यपि इस आयु में बालक को अधिक भूख लगती है किन्तु विद्यालय के काम की अधिकता, गृहकार्य, खेलने से थकान आदि कारणों से वो भरपेट भोजन नहीं कर पाते।

6. इस आयु के बालक बहुत जिज्ञासु प्रवृत्ति के होते हैं। वे अपने सम्पर्क में आने वाली हर वस्तु के बारे में समुचित जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं।

7. इस आयु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है। फलत: वह परिवार, समूह, साथियों तथा विद्यालय व समाज के नियमों के अनुसार आचरण करने लगता है।

8. इस अवस्था के बालकों में किसी विशेष भोजन के प्रति रुचि बन जाती है और कुछ भोजन को वो बिल्कुल नहीं खाना चाहते।

10. इस आयु में हड्डियाँ परिपक्व हो जाती हैं। दूध के दाँत गिर जाते हैं और स्थायी दाँत आ जाते हैं। शरीर की वृद्धि के साथ खून की मात्रा का भी विस्तार होता है।

पोषक तत्वों की माँग

इस आयु के बच्चों के लिए पोषक तत्व बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। दिन भर के खेल कूद और विकास के लिए उन्हें पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की जरूरत होती है। इस आयु में उन्हें जितना अधिक पौष्टिक आहार मिलेगा उनका विकास उतना ही अच्छा होगा।

ऊर्जा: विद्यालयी बालक अत्याधिक क्रियाशील होते हैं जिसके कारण उन्हें अच्छी भूख लगती है। अधिक क्रियाशील होने की वजह से इन बच्चों को कैलोरीयुक्त आहार पर्याप्त मात्रा में देना अतिआवश्यक है अन्यथा उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरूद्ध हो सकता है। बढ़ती

आयु के साथ बच्चों में ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती है। 10 वर्ष के पश्चात बालिकाओं में यह आवश्यकता बालकों की अपेक्षा में थोड़ी कम होती है।

प्रोटीन: विद्यालयी बच्चों में वृद्धि, शक्ति और मांसपेशियों के रखरखाव के लिए प्रोटीन बहुत महत्वपूर्ण है। साथ ही नवीन कोशिकाओं के निर्माण तथा टूटी फूटी कोशिकाओं एवं तन्तुंओं के निर्माण के लिए प्रोटीन युक्त भोजन लेना आवश्यक होता है। प्रोटीन की पूर्ति हेतु बच्चों के आहार में पर्याप्त मात्रा में दूध, अंडा, मांस, मछली, सोयाबीन एवं दालों को सम्मिलित करें।

वसा: बच्चों में वसा, विशेष रूप से ओमेगा 3 -वसीय अम्ल संज्ञानात्मक विकास के लिए बहत महत्वपूर्ण है। बच्चों को प्रत्यक्ष वसा तेल, घी, मक्खन आदि के रूप में दी जा सकती है। इसके अलावा वसा घुलनशील विटामिनों जैसे विटामिन 'ए', 'डी', 'ई' एवं 'के' के संचरण के लिए भी आहारीय वसा आवश्यक है।

कैल्शियम: इस आयु के बच्चों में भी दाँतों एवं अस्थियों के विकास के लिए कैल्शियम आवश्यक है। इस आयु में बच्चों के दाँत टूट जाते हैं और उनके स्थान पर स्थायी दाँत उगते हैं। ऐसी परिस्थिति में उनके आहार में कैल्शियम पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। इसलिए इस आयु के बच्चों को दूध एवं दूध से बने उत्पाद अधिक मात्रा में खिलाने चाहिए। कैल्शियम के अवशोषण के लिए विटामिन 'डी' भी आवश्यक होता है। इस आयु में विटामिन 'डी' की माँग भोजन के माध्यम से कम हो जाती है क्योंकि बालक अपना अधिक समय घर से बाहर धूप में बिता लेता है। अत विटामिन :'डी' की पूर्ति सूर्य की रोशनी से पूरी हो जाती है।

लौह लवण: लौह लवण की कमी होने पर रक्ताल्पता, थकान और कमजोरी होने लगती है जिसकी वजह से बच्चे की शारीरिक क्रियाएं प्रभावित हो जाती हैं। इसके अलावा लोहे की कमी की वजह से बच्चे को ध्यान केन्द्रित करने में समस्या हो सकती है और उसका शैक्षणिक प्रदर्शन खराब हो सकता है। इसकी पूर्ति के लिए बच्चों के आहार में साबुत अनाज, फलियाँ, हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी, बथुआ आदि को सम्मिलित करना चाहिए। इस आयु के बच्चे हरी सब्जियाँ खाना पसन्द नहीं करते। ऐसे में उन्हें सब्जी की बजाय मेथी की पूरी, बथुआ के पराठे, पालक का सूप आदि बनाकर खिलाया जा सकता है। लौह लवण के अच्छे अवशोषण के लिए विटामिन सी से सम्पन्न स्रोतों जैसे खट्टे फल को भी आहार में शामिल करना चाहिए।

विटामिन 'ए': विटामिन 'ए' आँखों की रोशनी के लिए बहुत जरूरी है। साथ ही विटामिन 'ए' की कमी बच्चों में संक्रमण से लड़ने की क्षमता को भी कम कर देती है। अत: बच्चे के आहार में पर्याप्त मात्रा में गाजर, पपीता, आम एवं अन्य पीले फलों का समावेश करना चाहिए।

विटामिन 'बी' समूह: जैसे कि पहले भी बताया गया है कि थायमिन, राइबोफ्लेविन और नियासिन की दैनिक आवश्यकता बच्चों की आवश्यक कैलोरी की मांग पर निर्भर करती है। इसके अलावा शालापूर्व बच्चों की विटामिन बी समूह की दैनिक प्रस्तावति माँग की चर्चा करते समय सभी विटामिनों की कमी से होने वाली समस्याओं तथा स्रोतों के बारे में हम पहले ही बता चुके हैं। विद्यालयी बालकों में इन विटामिनों की मांग बढ़ती आयु के साथ बढ़ती है और बालिकाओं की अपेक्षा में बालकों में अधिक होती है। हालांकि पाइरीडॉक्सिन और फोलिक अम्ल की दैनिक माँग 10-12 वर्ष के दौरान बालक और बालिकाओं में समान होती है।

विटामिन 'सी': बच्चों को विभिन्न रोगों से बचाव तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'सी' की आवश्यकता होती है। इसके नियमिन सेवन से सर्दी, खांसी व अन्य तरह के संक्रमण का खतरा कम हो जाता है। साथ ही यह शरीर में विटामिन ई की आपूर्ति को पुनर्जीवित करता है और शरीर में लोहे की अवशोषण क्षमता को भी बढ़ाता है। यह एक ऐंटिएलर्जिक और एंटीआक्सिडेंट के रूप में भी काम करता है और दांत, मसूढ़ों व आँखों को भी स्वस्थ रखता है।

मैग्नीशियम एवं जिंक: मैग्नीशियम और जिंक दोनों की आवश्यकताएं बढ़ती आयु के साथ बढ़तीहैं।10-12 वर्षों के दौरान मैग्नीशियम की आवश्यकता बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में अधिक होती है जबकि जिंक की आवश्यकता दोनों में समान होती है। बच्चों में मैग्नीशियम और जिंक की कमी से होने वाले रोगों एवं इनके स्रोतों के बारे में विद्यालयी पूर्व बच्चों में "पोषक तत्वों की माँग" के अंतर्गत बताया जा चुका है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त् स्थानों की पूर्ति करें।

a.विद्यालयी बालकों की अवस्था को .... अवस्था भी कहा जाता है।

b.7 से 9 वर्ष के बच्चे के दाँतों एवं अस्थियों के विकास के लिए प्रतिदिन .... मि0ग्रा0 कैल्शियम की आवश्यचकता होती है।

c.विद्यालयी बालकों में .... भावना प्रबल होती है।

d.10 से 12 वर्ष के दौरान प्रोटीन की आवश्यकता बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में .... होती है।

e.10 वर्ष के बालक को प्रतिदिन .... किलो कैलोरी अपने आहार में लेनी चाहिए।

पोषण संबंधी समस्याएँ

आज के बच्चे ही कल के युवा बनते हैं और देश की प्रगति, सुरक्षा और संरक्षण का दायित्व इनके कंधों पर होता है। इसके लिए आवश्यक है कि ये बच्चे शारीरिक और मानसिक स्तर पर स्वस्थ व मजबूत हों। विद्यालयी बालकों की पोषण सम्बन्धी समस्याओं पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। नये तन्तुओं के निर्माण, ऊर्जा उत्पादन, क्षीण तन्तुओं की मरम्मत, संक्रमण से बचाव आदि के लिए पोषक तत्व आवश्यक होते हैं। अत: विद्यालयी बालकों का आहार नियोजन इस तरह होना चाहिए कि उन्हें सभी आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल सकें। आमतौर पर विद्यालयी बालकों में निम्नलिखित पोषण या भोजन संबंधी समस्याएं देखने को मिलती हैं:

1. भोजन से इनकार: इस आयु के बालक कोई विशेष भोजन में रुचि दिखाते हैं और उन्हें खाना पसन्द करते हैं। जो भोजन उन्हें पसन्द नहीं होता उसे वो छूते तक नहीं हैं। इस आयु के बच्चे हरी पत्ते दार सब्जियाँ और अन्य सब्जियाँ जैसे लौकी, तोरई, टिंडे, करेला, कद्दू आदि खाना कम पसन्द करते हैं। कई बार वो खेलने में इतने व्यस्त होते हैं कि भोजन को प्राथमिकता नहीं देते। इसी वजह से वो कई बार स्कूल में अपना टिफिन भी नहीं खोलते। इन सब का असर बालक के पोषण स्तर पर पड़ता है। उसमें एक या एक से अधिक पोषक तत्व की कमी हो जाती है। ऐसे में हर संभव कोशिश करनी चाहिए कि बालक हर तरह का भोजन ग्रहण करे, चाहे वह थोड़ी मात्रा में ले।

2. एलर्जी और खाद्य असहिष्णुता (Food Intolerance): विद्यालयी बालकों में अक्सर कुछ खाद्य पदार्थों खासकर अंडा, दूध और मूंगफली के प्रति एलर्जी देखी जाती है। इसके अलावा कुछ बालकों में गेहूँ में पाये जाने वाला प्रोटीन (ग्लूटन) और दूध में पाई जाने वाली लैक्टोस शर्करा के प्रति असहनीयता देखने को मिलती है। ऐसे में इन बालकों के आहार से इन भोज्य पदार्थों को पूरी तरह से हटाना पड़ता है जो उनके पोषण स्तर को प्रभावित कर सकता है। इस स्थिति में जरूरी है कि

बालक को जिस खाद्य पदार्थ से बालक को एलर्जी हो उसका खाद्य विकल्प बालक को दिया जाए या डॉक्टर से पूछकर बालक को पूरक दिये जाएं।

3. रक्ताल्पता: इस आयु के बालकों में लौह लवण की कमी से होने वाली रक्ताल्पता एक आम समस्या है। यह ज्यादातर 2 से 9 वर्ष के बालकों में देखने को मिलता है जिनका आहार ज्यादातर दूध व दूध से बने व्यंजन पर आधारित होता है और लौह लवण के स्रोत बहुत कम या न के बराबर आहार में सम्मिलित होते हैं। रक्ताल्पतता से पीड़ित बच्चे स्कूल में अच्छा शैक्षणिक प्रदर्शन नहीं कर पाते और अक्सर कमजोरी और थकान महसूस करते हैं। रक्ताल्पता से बचाव के लिए जरूरी है कि उनके आहार में लौह लवण के उत्तम स्रोत जैसे माँस, कलेजी, साबुत अनाज, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि सम्मिलित किये जाएं।

4. मोटापा: वर्तमान युग में विद्यालयी बालकों में मोटापा एक आम समस्या होती जा रही है। जब से हमारी जीवन शैली में टीवी, इंटरनेट, मोबाइल ने अपनी जगह बनाई है, धीरे-धीरे यह साधन बच्चों के जीवन में शारीरिक खेल कूद की जगह लेते जा रहे हैं। साथ ही अगर बालक जंक भोजन जैसे नूडल्स, बर्गर, पिज्जा, कोल्डस ड्रिंक आदि का शौकीन है तो वह बहुत ही कम आयु में मोटापे से ग्रस्त हो जाता है। बाल्यावस्था में मोटापा, वयस्क अवस्था में होने वाली कई बीमारियों जैसे मधुमेह, हृदय रोग, उच्च रक्तचाप आदि का कारण बनता है। मोटापे से बचाव के लिए जरूरी है कि बच्चों को जंक फूड के स्थान पर घर का बना साफ, स्वच्छ व पौष्टिक भोजन दिया जाए और उन्हें टीवी, इंटरनेट, मोबाइल के साथ अधिक वक्त बिताने की बजाय शारीरिक खेल कूद के लिए प्रेरित किया जाए।

5. आहार विकार: इस आयु में कुछ बालकों में ऐनोरक्सिया नर्वोसा, बुलीमिया नर्वोसा और बिंज ईटिंग विकार देखने को मिलते हैं। एनोरेक्सिया नर्वोसा से ग्रस्त बालक अपने शरीर के वजन व आकृति को लेकर संतुष्ट नहीं होते हैं और वजन घटाने के लिए भूखे रहते हैं जो स्वास्थ के लिए गंभीर समस्याएं पैदा कर देता है। बुलीनिया नर्वोसा से ग्रस्त बालक थोड़े समय में अधिक और बार-बार खाते हैं और फिर जबरदस्ती उल्टी करते हैं या अत्यधिक व्यायाम करते हैं। बिंज इंटीग विकार से ग्रस्त बालक रोजाना अधिक खाते हैं और भोजन पर नियंत्रण नहीं कर पाते। इसमें बालक भूख न होने पर भी खाते हैं और तब तक खाते रहते हैं जब तक उनको पेट भरने के बाद बेचैनी न महसूस हो। यह समस्याएँ बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में ज्यादा देखी जाती हैं। बच्चों में आहार विकार की

रोकथाम के लिए बच्चों के आस-पास डाइटिंग या आहार नियंत्रण की बात न करें और उनमें स्वस्थ शरीर की भावना पैदा करें।

6. दाँतों में सड़न: इस आयु के बच्चों में अक्सर दाँतों की सड़न की समस्या देखी जाती है जिसका मुख्य कारण अधिक मीठे व्यंजन, टॉफी, चॉकलेट, कोल्ड ड्रिंक आदि का सेवन है। इस तरह के भोजन अक्सर दाँतों में चिपक जाते हैं और दाँतों में सड़न को आमंत्रित करते हैं। अगर बच्चा नियमित रूप से अपने दाँतों की सफाई नहीं करता तो उसके दाँत सड़ जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि बच्चों को इस तरह के भोज्य पदार्थ सीमित मात्रा में दें तथा अपने दाँतों की साफ सफाई के प्रति सचेत रहने के लिए प्रेरित करें।

विद्यालयी बालकों में काफी मनोवैज्ञानिक व मानसिक तनाव होता है जिसकी वजह से उनके आहार की आवश्यकताएं बदल जाती हैं। बालक के आहार में विविधता लाने के लिए उसकी थाली में कम से कम एक प्रकार का दुग्ध उत्पाजद, एक प्रकार की सब्जी, 1 प्रकार का मांस/मछली/दाल, एक प्रकार का फल और एक प्रकार का अनाज होना चाहिए। बालक को हर तरह का भोजन लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके अलावा बालक में भोजन सम्बंधित अच्छी आदतों का निर्माण करने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:

- बालक को खाद्य पदार्थों के स्वास्थ्य लाभ और पोषण के महत्व के बारे में बताएं क्योंकि यह उसे किसी भोजन को पूर्ण रूप से अपनाने और खुश होकर खाने के लिए तैयार करेगा।
- रात का खाना खाने के बाद सुबह के नाश्ते के लिए एक लंबा अंतराल होता है, इसलिए बच्चे के अधिक भूखा होने की संभावना रहती है। किन्तु समय कम होने के कारण कई बार वो नाश्ता नहीं करते और धीरे-धीरे ये उनकी आदत बन जाती है। नाश्ता न करना स्कूल में उनके प्रदर्शन को नकारात्मक तरीके से प्रभावित कर सकता है। इसलिए बच्चों को नाश्ता करने के लिए जरूर प्रोत्साहित करें।
- बच्चे को सुबह जल्दी स्कूल जाना होता है। इसलिए सुबह का नाश्ता पूर्ण व पौष्टिक होना चाहिए जिसे खाने में कम समय लगे। अत: उन्हें दूध, अंडा या इनसे बना कोई व्यंजन दे सकते हैं।
- दोपहर का खाना बालक विद्यालय में अपने साथियों के साथ खाता है इसलिए जरूरी है कि उसका भोजन देखने में आकर्षक, खाने में स्वायदिष्टा व पोषण से भरपूर हो।

- बच्चों के आहार में फल व सब्जी अवश्य सम्मिलित करें ताकि उनकी विटामिन और खनिज लवण की जरूरत पूरी हो सकें।
- भोजन में नवीन भोज्य पदार्थों का समावेश इस तरह से करें कि बच्चे उस भोजन को उत्सुकता एवं प्रसन्नता से ग्रहण करें।
- यदि बालक कोई विशेष आहार को पसन्द नहीं करता तो उसके रूप, आकार एवं पकाने की विधि में परिवर्तन कर उसके सामने प्रस्तुत करें।
- स्नैक्स सक्रिय बच्चों के लिए एक स्वस्थ आहार का एक महत्वपूर्हिस्सा है। इसलिए पौष्टिकता के साथ-साथ उच्च ऊर्जा वाले नाश्ता बच्चे को दें।
- बच्चों को भोजन बनाने व भोजन बनाने की योजना में शामिल करें जिससे उनकी रुचि भोजन में बनी रहे।
- बच्चोंत को भोजन करने के लिए शांत, मधुर व प्रेम भरा वातावरण दें और उनको परिवार के साथ बैठकर भोजन करने के लिए प्रेरित करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।

a.बच्चों को लेक्टोज असहिष्णुता होने पर भी दूध देना बंद नहीं करना चाहिए अन्यथा उनमें कैल्शियम की कमी हो जाएगी।

b.विद्यालयी बालकों में रक्ताल्पता लौह लवण की कमी से होती है।

c.बुलीमिया से पीड़ित बच्चा वजन कम करने के लिए अपने को भूखा रखता है।

d.बाल्यावस्था में मोटापे का कारण अपने आहार में आवश्यकता से अधिक कैलोरी लेना है।

11.4 किशोरावस्था की विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन

किशोरावस्था तीव्र वृद्धि तथा परिवर्तनों की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों में कई विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं जो संक्षिप्त में निम्न वर्णित हैं।

शारीरिक परिवर्तन: इस अवस्था में मांसपेशियों तथा हड्डियों का आकार एवं कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है। किशोरावस्था वृद्धि स्फुरण (Growth Spurt)की अवस्था है जिसके दौरान

हृदय, फेफड़े, आमाशय, गुर्दे अपने पूर्ण आकार एवं क्रियाशीलता के स्तर पर पहुँच जाते हैं। इस अवस्था में किशोरों में कई लैंगिक यौन परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं :

लड़के पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेते हैं, उनमें दाढ़ी-मूँछ आना, आवाज में भारीपन, मांसपेशियों में दृढ़ता, अस्थियों का पूर्ण विकास, वृद्धिकारक हार्मोन द्वारा पुरुषोचित लैंगिक विकास देखा जाता है। सामान्यत: लड़कों की लम्बाई 12 से 13 वर्ष की आयु में शुरु होकर 18 से 19 वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाती है। शारीरिक भार में लम्बाई के अनुरूप वृद्धि होती है जो औसतन 18 से 22 किलो ग्राम तक होती है।

लड़कियों में मासिकधर्म का आरम्भ किशोरावस्था का प्रथम एवं अति महत्वपूर्ण लक्षण है। इसके अतिरिक्त लम्बाई में वृद्धि, वक्षस्थल का विकास, नितम्बों का चौड़ापन, शारीरिक सौंदर्य में वृद्धि आदि देखे जाते हैं। सामान्यत: लड़कियों की लम्बाई 10 से 11 वर्ष की आयु में शुरु होकर 17 से 18 वर्ष की आयु तक पूर्ण हो जाती है। लड़कियों के वजन में वृद्धि समान ही होती है। शरीर के कुछ भागों जैसे नितम्बों आदि पर अधिक वसा संग्रहित होती है

मानसिक परिवर्तन: किशोरावस्था में शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी अपने चरम पर होता है। किशोर इस अवस्था में अपने निर्णय स्वयं लेना पसंद करते हैं तथा किसी का दखल नहीं पसंद करते। उन पर अपने साथियों का अत्यधिक प्रभाव होता है। उनके सभी निर्णय तथा भोजन सम्बंधी सभी आदतें साथियों से प्रभावित होती हैं। किशोरावस्था के मानसिक विकास का एक मुख्य लक्षण है- मानसिक स्वतन्त्रता। वह रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और पुरानी परम्पराओं को अस्वीकार करके स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने का प्रयास करता है। किशोरावस्था में मानसिक योग्यताओं का स्वरूप निश्चित हो जाता है। उसमें सोचने, समझने, विचार करने, अन्तर करने और समस्या का समाधान करने की योग्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस अवस्था में ध्यान केन्द्रित तथा तर्क करने की क्षमता का पर्याप्त विकास हो जाता है। वह तर्क किए बिना किसी बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है।

कल्पना प्रचुरता की अवस्था: किशोर वास्तविक जगत में रहते हुए भी कल्पना के संसार में विचरण करता है। कल्पना के बाहुल्य के कारण उसमें दिन में ही स्वप्न देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में कल्पना शक्ति-अधिक होती है। काल्पनिक संसार में वे उन सब बातों को साकार कर लेते हैं जो वास्तविक संसार में सम्भव नहीं है। इस कारण से वे शांत और अंतर्मुखी हो जाते हैं।

भावनात्मक अस्थिरता: हार्मोनल परिवर्तनों के कारण किशोरों में मिजाज परिवर्तित होता रहता है और अक्सर उनका स्वभाव बदल जाता है। वे बच्चों या वयस्कों की तुलना में अधिक तीव्र और व्यापक भावनाएं रखते हैं और इसी कारण वे अपनी समस्याओं को भी बढ़ाते हैं। भावनात्मक अस्थिरता भूख या असामान्य अथवा लंबी नींद का कारण भी बन सकती है। भावनात्मक रूप से अस्थिर किशोर के अवसादग्रस्त होने की सम्भावना भी अधिक होती है।

किशोर लैंगिकता: यह मानव विकास का एक चरण है जिसमें किशोर यौन भावनाओं का अनुभव करते हैं और उनका अन्वेषण करते हैं। तरुणावस्था की शुरुआत में लैंगिकताकामुकता में रुचि तेज / हो जाती है। किशोरों में यौन रुचि बहुत भिन्न हो सकती है जो सांस्कृतिक मानदंडों, यौन शिक्षा, यौन अभिविन्यास और सामाजिक नियंत्रण से प्रभावित होती है।

किशोरावस्था में पोषक तत्वों की माँग

किशोरावस्था में तीव्र परिवर्तनों तथा संगत के प्रभाव से गलत आहार पद्धतियाँ विकसित हो सकती हैं। किशोरावस्था में उचित पोषण का असर उनके भावी जीवन पर दिखाई देता है। इस अवस्था में किशोर अपने शरीर के प्रति अत्यंत सजग रहते हैं तथा आकर्षक दिखना उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। किशोरियों में दुबला एवं छरहरा दिखने के प्रति अधिक रुझान रहता है जिस कारण वे अपने आहार में कमी करना शुरु कर देते हैं। यह उनके पोषण स्तर को विपरीत रूप से प्रभावित करता है।

पोषक तत्वों की माँग

ऊर्जा: किशोरावस्था में शारीरिक लम्बाई, भार, क्रियाशीलता एवं आधारीय चयापचय दर में वृद्धि होने के कारण ऊर्जा की माँग बढ़ जाती है। किशोरों में यह माँग किशोरियों से अधिक होती है क्योंकि उनकी रुचि बाह्य खेलों, व्यायामों आदि में अधिक रहती है।

प्रोटीन: इस अवस्था में शारीरिक विकास की गति अत्यंत तीव्र होने, मांसपेशियों के निर्माण, कोशिकाओं के क्षय तथा नई कोशिकाओं के निर्माण, हार्मोनों के निर्माण हेतु प्रोटीनयुक्त भोज्य पदार्थों का सेवन आवश्यक है। आहार में दालों, सोयाबीन, अण्डे, मांस, मछली,दूध एवं दुग्ध उत्पाद आवश्यक रूप से सम्मिलित करने चाहिए।

वसा: शारीरिक क्रियाशीलता अधिक होने के कारण इस अवस्था में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है जिस कारण आहार में वसा का होना अनिवार्य है। परंतु इसके अधिक सेवन से मोटापा होने

का भी खतरा रहता है, साथ ही कई अपक्षयी रोगों जैसे हृदय रोग तथा मधुमेह के होने की सम्भावना भी बढ़ जाती है।

लौह लवण: यद्यपि किशोरों एवं किशोरियों दोनों को ही आहारीय लौह लवण की आवश्यकता होती है। परंतु किशोरियों में इस अवस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण शरीर से रक्त की हानि अधिक होती है जिस कारण उन्हें रक्ताल्पता/एनीमिया रोग हो सकता है। इसलिए किशोरावस्था में आहार में लौह लवण के प्रचुर स्रोत जैसे हरी पत्तेदार सब्जियाँ, अण्डा, गुड़ आदि होने चाहिए। भारत में किशोरियों में एनीमिया की समस्या आम है जो एक चिंतनीय विषय है।

कैल्शियम: इस खनिज लवण की आवश्यकता हड्डियों एवं दाँतों के निर्माण एवं विकास हेतु आवश्यक है जो हमें आहारीय स्रोत जैसे दूध, दुग्ध उत्पादों, हरी पत्तेदार सब्जियाँ आदि से मिलता है।

विटामिन: आँखों के उत्तम स्वास्थ्य हेतु आहार में विटामिन ए के स्रोत जैसे हरी सब्जियाँ, पीले फल, गाजर, अण्डा, दूध आदि सम्मिलित करने चाहिए। थायमिन, राइबोफ्लेविन तथा नियासिन की दैनिक अनुशंसित मात्रा ऊर्जा की आवश्यकता पर आधारित होती है। इसलिए ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ने पर बीविटामिनों की आवश्यकता भी बढ़ जाती है। विटामिन सी शरीर की त्वचा - के उत्तम स्वास्थ्य, घावों के शीघ्र भरने तथा रोग प्रतिरोधक क्षमता के विकास के लिए आवश्यक है। इसके लिए आहार में खट्टे फलों, आँवला, अमरूद आदि का समावेश होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त भोजन में आयोडीन भी पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए। आयोडीन थायरॉक्सिन हार्मोन का अवयव है जो शरीर में आधारीय चयापचय दर को नियंत्रित करता है। साथ ही यह शारीरिक तथा मानसिक विकास हेतु भी अत्यावश्यक है। इसलिए आहार में आयोडीनयुक्त नमक का प्रयोग करना चाहिए।

किशोरावस्था में आहार नियोजन

इस अवस्था में आहार बहुत विविधतापूर्ण होता है। घर के अतिरिक्त किशोर अपना अधिकांश समय स्कूल तथा दोस्तों के साथ बिताते हैं जो उनकी आहार सम्बंधी आदतों को प्रभावित करता है। किशोर अक्सर अपना नियमित आहार छोड़कर ऐसे खाद्य पदार्थ खाना पसंद करते हैं जिनमें ऊर्जा की मात्रा अधिक तथा पोषक तत्व कम होते हैं जैसे नूडल्स, मोमो, पिज्जा, कोल्ड ड्रिंक्स, चॉकलेट

आदि। ऐसी स्थिति में घर का आहार पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा संतुलित होना चाहिए। किशोरों के लिए आहार नियोजन करते समय निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

- आहार में प्रत्येक खाद्य वर्ग से खाद्य पदार्थ सम्मिलित करने चाहिए।
- ऊर्जा, प्रोटीन, लौह लवण तथा कैल्शियम सम्पन्न स्रोतों पर विशेष बल देना चाहिए।
- किशोरों को अपनी शारीरिक दिखावट की सदैव चिंता रहती है। विशेषकर किशोरियाँ दुबला तथा आकर्षक दिखने की चाह में आहार बहुत कम या नहीं लेतीं तथा वजन कम करने के नित नए और आसान उपाय ढूँढती हैं। ऐसे भ्रामक कथनों तथा उपायों से किशोरों को बचना चाहिए तथा एक स्वस्थ जीवनशैली तथा संतुलित आहार लेना चाहिए।
- त्वरित वजन कम करने वाले तथा मांसपेशियों को उन्नत करने वाले आहारों से बचना चाहिए।
- वसा, शर्करा तथा परिष्कृत कार्बोहाइड्रेट युक्त तैयार एवं संसाधित भोजन से बचना चाहिए क्योंकि ऐसे भोज्य पदार्थ आवश्यक पोषक तत्व प्रदान नहीं करते। संतुलित भोजन को अधिक महत्व देना चाहिए।
- किशोरों को लोकप्रिय तथा अधिक स्वीकार्य भोजन घर पर ही तैयार कर खाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

किशोरावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं

मोटापा: इस अवस्था में अधिक ऊर्जायुक्त भोजन लेने से मोटापे की समस्या हो सकती है जिससे शरीर में वसा का संग्रहण होने लगता है। फलत: किशोर अन्य चयापचयी समस्याओं से ग्रस्त हो सकता है। किशोरावस्था में विकसित मोटापा जीवन के आगामी वर्षों में हृदय रोगों, मधुमेह आदि का कारण भी बन सकता है।

एनीमिया: किशोरावस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण शरीर से हर माह रक्त विसर्जित होता है जिससे रक्ताल्पता की समस्या हो सकती है। साथ ही किशोरियाँ पतला दिखने की चाह में उचित पौष्टिक भोजन ग्रहन नहीं करती हैं जिससे शरीर में कई पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।

अभ्यास प्रश्न 3

सही अथवा गलत बताइए।

a. किशोरावस्था में वृद्धि एवं परिवर्तन बहुत धीमी गति से होते हैं।
b. किशोरावस्था वृद्धि स्फुरण (Growth Spurt) की अवस्था है।

c. किशोरावस्था के मानसिक विकास का मुख्य लक्षण मानसिक स्वतन्त्रता है।

d. बच्चों या वयस्कों की तुलना में किशोर भावनात्मक रूप से अधिक स्थिर होते हैं।

e. किशोरियों में किशोरावस्था में मासिक धर्म की शुरुआत होने के कारण रक्ताल्पता/एनीमिया रोग हो सकता है।

11.5 सारांश

स्वस्थ रहने के लिए बच्चों को वयस्कों के समान पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है किन्तु विभिन्न मात्रा में। अधिक सक्रिय होने की वजह से बच्चे के शरीर को अधिक ईंधन की आवश्यकता होती है। बाल्यावस्था के दौरान बच्चों की लम्बाई एवं वजन में भी वृद्धि होती है जिसके लिए उन्हें अधिक प्रोटीन की आवश्यकता होती है। इसके साथ ही उन्हें विटामिन और खनिज लवण भी पर्याप्त मात्रा आवश्यक होते हैं क्योंकि इसी अवस्था में उनका मानसिक विकास, रोग प्रतिरोधक क्षमता, रक्त वाहिनियों एवं नाड़ी तन्तुओं आदि का विकास भी होता है। आयु बढ़ने के साथ इन पोषक तत्वों की जरूरत भी बढ़ती है। यदि आवश्यकता के अनुसार बच्चों को यह पोषक तत्व नहीं मिल पाते तो उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक विकास प्रभावित हो सकता है। उनमें पोषक तत्वों की हीनता से संबंधित रोग जैसे रतौंधी, रक्ताल्पता, घेंघा, प्रोटीन ऊर्जा कुपोषण आदि होने की संभावना बढ़ जाती है। इसलिए बच्चों को सभी पोषक तत्वों से भरपूर आहार देना चाहिए। बाल्यावस्था के दौरान, बच्चों का भोजन पौष्टिक होने के साथ साथ स्वादिष्ट एवं आकर्षक भी होना चाहिए ताकि वो भोजन सहर्ष स्वीकार करें।

किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति के शरीर में कई शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन होते हैं। इस अवस्था में शारीरिक वृद्धि की गति अत्यंत तीव्र होती है जिसके अंतर्गत अस्थियों का बढ़ना, मांसपेशियों में वृद्धि, लड़कों में कंधों का चौड़ा होना, शरीर में बालों का उगना, आवाज में भारीपन, लड़कियों में स्तनों का विकास, नितम्बों का बढ़ना, मासिक धर्म की शुरुआत आदि परिवर्तन दिखाई देते हैं। इस आयु में तेजी से हो रहे शारीरिक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए किशोरों के पोषण पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था में होता है। किशोरावस्था में शारीरिक विकास के साथ मानसिक विकास भी अपने चरम पर होता है। किशोर इस अवस्था में अपने निर्णय स्वयं लेना पसंद करते हैं तथा किसी का दखल नहीं पसंद करते। उन पर अपने साथियों का अत्यधिक प्रभाव होता है। किशोर वास्तविक जगत में रहते हुए भी कल्पना के संसार में विचरण करता है। कल्पना के बाहुल्य के कारण उसमें दिन

में ही स्वप्न देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। किशोरावस्था में तीव्र परिवर्तनों तथा संगत के प्रभाव से गलत आहार पद्धतियाँ विकसित हो सकती हैं। घर के अतिरिक्त किशोर अपना अधिकांश समय स्कूल तथा दोस्तों के साथ बिताते हैं जो उनकी आहार सम्बंधी आदतों को प्रभावित करता है। किशोर अक्सर अपना नियमित आहार छोड़कर ऐसे खाद्य पदार्थ खाना पसंद करते हैं जिनमें ऊर्जा की मात्रा अधिक तथा पोषक तत्व कम होते हैं। ऐसे स्थिति में घर का आहार पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा संतुलित होना चाहिए। किशोरावस्था में मोटापा तथा एनीमिया जैसी पोषण सम्बंधी समस्याएं देखी जाती हैं।

11.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **रक्ताल्पता:** खून में स्वस्थ लाल रक्त कोशिकाएं कम होने की स्थिति।
- **स्कर्वी:** विटामिन ‘सी’ की कमी से होने वाला रोग जिसमें मसूड़ों से खून आने लगता है व दाँत गिर जाते हैं।
- **घेंघा:** थायरॉइड के नीचे तितली के आकार की ग्रंथि की असमान्य वृद्धि।
- **बुलीनिया नर्वोसा:** बालक थोड़े समय में अधिक और बार बार खाते हैं और फिर जबरदस्ती- धिक व्यायाम करते हैं। करते हैं या अत्यउल्टी
- **बिंज इंटीग विकार:** बालक रोजाना अधिक खाते हैं और भोजन पर नियंत्रण नहीं कर पाते।
- **वृद्धि स्फुरण)Growth Spurt:(** कम समय में तीव्र एवं अचानक वृद्धि होना।
- **रक्ताल्पताएनीमिया/ (Anaemia):** रक्त में हीमोग्लोबिन का स्तर कम होने की स्थिति।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

a. सारस
b. 800
c. समूह
d. अधिक
e. 2010

अभ्यास प्रश्न 2

सत्य अथवा असत्य बताइए।

a. असत्य
b. सत्य
c. असत्य
d. सत्य
e. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3

सही अथवा गलत बताइए।

a. गलत
b. सही
c. सही
d. गलत
e. सही

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Dietary Guidelines for Indians- A manual, National Institute of Nutrition, Indian Council of Medical Research, Hyderabad, India, Second Edition, 2011.
2. सिंह वृंदा, आहार एवं पोषण विज्ञान (2016), चौदहवाँ संस्करण, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
3. डॉरीना खनूजा 0, आहार एवं पोषण विज्ञान (17/2016), अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
4. WHO 2006. WHO Child Growth Standards. Length/Height for age, Weight for age, weight for length, weight for height and body mass index for age. Methods and development. WHO press Geneva.
5. इंटेर्नेट स्रोत :https://www.who.int>growthref.

11.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यालयी बालकों की पोषक आवश्यकताओं के बारे में चर्चा करें।

2. विद्यालयी बालकों में किस तरह की पोषण संबंधी समस्याएं देखने को मिलती हैं, चर्चा कीजिए।
3. किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
4. किशोरावस्था में पोषक तत्वों की माँगों के बारे में चर्चा कीजिए।
5. किशोरों हेतु आहार नियोजन से पूर्व किन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है?

इकाई-12 प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में पोषण

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 प्रौढावस्था
12.4 वृद्धावस्था
12.5 सारांश
12.6 पारिभाषिक शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

मानव वृद्धि एवं विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया हैं। शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था क्रमशः मानव विकास की प्रक्रिया के विभिन्न चरण हैं। वृद्धावस्था का विभाजन तीन वर्गों में; युवा वृद्ध (65-74 वर्ष), प्रौढ़ वृद्ध (75-84 वर्ष) तथा अत्यधिक बूढ़े वृद्ध (85 वर्ष से अधिक) के बीच किया जाता है। आमतौर पर सेवानिवृत्ति की उम्र से वृद्धावस्था का प्रारम्भ माना जाता है। आजकल कुछ कारणों से जैसे औसत आयु में वृद्धि, उचित एवं स्वास्थ्यवर्धक आहार, रहन-सहन में सुधार आदि के कारण वृद्धावस्था के स्वरूप में भी काफी बदलाव देखा जा रहा है। आज अनेक ऐसे भी वृद्ध व्यक्ति हैं तो अधिक आयु होने के बाद भी सक्रिय, सृजनशील और ओजस्वी हैं।

इस इकाई में आप वृद्धावस्था से सम्बंधित समस्याओं एवं परिवर्तनों के विषय में ज्ञान अर्जित करेंगे। वृद्धावस्था में शारीरिक, मानसिक तथा हारमोन सम्बन्धी कई परिवर्तन होते हैं। वृद्धावस्था का स्वास्थ्य बहुत हद तक प्रौढ़ावस्था के स्वास्थ्य, भोजन, व्यायाम, क्रियाशीलता आदि पर निर्भर करता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप;

- प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को समझ सकेंगे;
- बता सकेंगे कि प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था की परेशानियां क्या हैं;
- प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धों की पोषण सम्बन्धी आवश्यकताओं के बारे में जान सकेंगे।
- वृद्धावस्था में देखभाल के तरीकों को समझ सकेंगे; तथा

12.3 प्रौढावस्था

12.3.1 विशेषताएं एवं शारीरिक परिवर्तन

प्रौढ़ावस्था या वयस्कावस्था किशोरावस्था के बाद आने वाली जीवन अवस्था है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक स्थिति में ठहराव आ जाता है। वयस्क व्यक्ति व्यवसाय में लिप्त होने तथा पारिवारिक, सामाजिक तथा अन्य दायित्वों के कारण दबाव की स्थिति का अनुभव करता है। इस अवस्था में शारीरिक आकार में पूर्ण वृद्धि हो चुकी होती है। अत: पोषक तत्वों की आवश्यकता केवल शारीरिक क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए होती है। आयु बढ़ने के साथ-साथ शरीर के ऊतकों की नवीनीकरण की क्षमता उनके टूट-फूट की अपेक्षा कम होती है। इस अवस्था को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था (20-25 वर्ष):** इस अवस्था में ऊतकों की टूट-फूट अधिक नहीं होती तथा शरीर में उनके क्षय की आपूर्ति की पर्याप्त क्षमता होती है।
2. **वृद्ध प्रौढ़ावस्था (25-45 वर्ष):** यह वयस्कावस्था का अंतिम चरण तथा वृद्धावस्था के शुरुआती चरण के निकट होता है। इसलिए इस चरण में शरीर के ऊतकों का क्षय अधिक होता है तथा इसकी आपूर्ति कम हो पाती है।

वयस्कावस्था में शारीरिक वृद्धि पूर्ण हो जाने पर लम्बाई तथा वजन में कोई बदलाव नहीं होता हालांकि शारीरिक वजन व्यक्ति की खान-पान सम्बंधी आदतों तथा शारीरिक क्रियाशीलता पर निर्भर करता है। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद द्वारा वयस्कों के लिए पोषक तत्वों की अनुशंसित मात्रा को शारीरिक क्रियाशीलता के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया गया है:

कम क्रियाशील: इस श्रेणी में अधिक मानसिक कार्य करने वाले वयस्क सम्मिलित हैं जैसे ऑफिस में काम करने वाले व्यक्ति, शिक्षक, सेवानिवृत्त व्यक्ति, गृहणी आदि।

मध्यम क्रियाशील: इस श्रेणी में मध्यम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति जैसे किसान, बढ़ई, कुली, औद्योगिक श्रमिक, घर पर काम करने वाले नौकर आदि सम्मिलित हैं।

अधिक क्रियाशील: इस श्रेणी में अत्यधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जैसे रिक्शा चालक, पत्थर तोड़ने वाले व्यक्ति, खदानों के श्रमिक, मजदूर आदि।

12.3.2 प्रौढ़ावस्था में पोषक तत्वों की माँग

जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि वयस्क के कार्य का स्वरूप उसकी पोषक तत्वों की माँग को प्रभावित करता है। आई0सी0एम0आर0 द्वारा दी गई पोषक तत्वों की दैनिक अनुशंसित मात्राएं संदर्भ पुरुष तथा संदर्भ महिला के आधार पर निर्धारित की जाती हैं। आइए जानें कि भारतीय संदर्भ पुरुष तथा संदर्भ स्त्री की परिभाषा क्या है?

भारतीय संदर्भ पुरुष 20- 39 आयु वर्ग का होता है जिसका शारीरिक भार 60 किलो होता है। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ, रोग-मुक्त तथा शारीरिक कार्यों को करने में सक्षम होता है। वह 8 घण्टे का मध्यम श्रम, 8 घण्टे की नींद, 4-6 घण्टे बैठकर तथा 2 घण्टे चलने, सक्रिय मनोरंजन तथा गृह कार्य में बिताता है।

भारतीय संदर्भ स्त्री 20-39 आयु वर्ग की होती है जिसका शारीरिक भार 55 किलो होता है। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ, रोग-मुक्त तथा शारीरिक कार्यों को करने में सक्षम होती है। वह 8 घण्टे का मध्यम श्रम अथवा घर के सामान्य कार्यों में, 8 घण्टे की नींद, 4-6 घण्टे बैठकर तथा 2 घण्टे चलने, सक्रिय मनोरंजन तथा गृह कार्य में बिताती है।

12.3.3 प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन

प्रौढ़ावस्था में आहार नियोजन से पूर्व निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिए :

- इस अवस्था में आहार नियोजन आयु, लिंग तथा सक्रियता के आधार पर किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक कि आहार नियोजन से पूर्व इन बातों को ध्यान में रखा जाए।
- आहार नियोजन प्रौढ़ावस्था के चरण पर आधारित होना चाहिए क्योंकि वृद्ध प्रौढ़ावस्था में शरीर के ऊतकों का क्षय अधिक होने के कारण प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है।
- कम तथा मध्यम क्रियाशील वयस्क को आहार में वसा की मात्रा सीमित रखनी चाहिए। संतृप्त वसा के स्थान पर सम्भव हो तो असंतृप्त वसा का सेवन करना चाहिए। अधिक मात्रा में वसा मोटापे, मधुमेह तथा हृदय रोगों का प्रमुख कारण बन सकता है।

- आहार में फलों तथा सब्जियों का पर्याप्त समावेश होना चाहिए।
- आहारीय रेशा व्यक्ति के पाचन स्वास्थ्य हेतु लाभकारी है। अतआहार में रेशे के उचित स्रोत : जैसे साबुत अनाज, साबुत दालें, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, फल इत्यादि प्रचुर मात्रा में लेने चाहिए।
- पानी का समुचित मात्रा में सेवन करना चाहिए।

एक मध्यम क्रियाशील वयस्क पुरुष के लिए एक दिन की आहार तालिका

आहार का समय	**भोजन सूची**	**मात्रा**
प्रातबजे 6 काल :	चाय	कप 1
सुबह का नाश्ता बजे 9:30	मिश्रित अनाज की रोटी हरी सब्जी दूध	2 कटोरी 1 कप 1
बजे 11	मौसमी फल अथवा फलों का रस	1 गिलास 1
बजे दोपहर का खाना 1	चावल मक्का रोटी/ सोयाबीन दाल आलू भिंडी की सब्जी दही अथवा रायता सलाद पापड़	2 / कटोरी 1या 3 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट 1 1
बजे शाम को 6	चाय बिस्कुटरस/	कप 1 2
बजे रात्रि में 9:30	रोटी सब्जी (लौकी आलू) दाल (मूंग /अरहर) फ्रूट कस्टर्ड सलाद	2 कटोरी 1 कटोरी 1 कटोरी 1 प्लेट 1
बजे सोने से पहले 10	दूध	गिलास 1

12.3.4 प्रौढ़ावस्था में पोषण सम्बंधी समस्याएं

इस अवस्था में कम क्रियाशीलता तथा अधिक ऊर्जा अंतर्ग्रहण के कारण मोटापा एक गम्भीर समस्या बन सकती है जो कई अपक्षयी रोगों जैसे मधुमेह, हृदय रोगों का कारण हो सकता है। प्रौढ़ावस्था के दूसरे चरण में शरीर के ऊतकों का अधिक क्षय होने लगता है तथा शरीर के विभिन्न तंत्रों की क्रियाशीलता में कमी आ जाती है। इस आयु में शरीर की हड्डियों की सघनता में कमी आने लगती है जिस कारण ऑस्टियोपोरोसिस और गठिया रोगों के होने की सम्भावना होती है। इस स्थिति में आहार में कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की मात्रा में वृद्धि करनी चाहिए। व्यक्ति का पाचन तन्त्र भी धीरेधीरे प्रभावितहोनेलगता है। इसलिए आहार संतुलित तथा रेशे से युक्त होना चाहिए। इस - अवस्था में व्यक्तिके आय सृजन में अत्यधिक व्यस्त होने के कारण शारीरिक क्रियाशीलता कम हो जाती है विशेषकर कम क्रियाशील व्यक्तियों में। ऐसी स्थिति में नियमित रूप से व्यायाम किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. .... में ऊतकों की टूट-फूट अधिक नहीं होती तथा शरीर में उनके क्षय की आपूर्ति की पर्याप्त क्षमता होती है।

b. रिक्शा चालक .... व्यक्तियों की श्रेणी में आते हैं।

c. .... व्यक्ति के पाचन स्वास्थ्य हेतु लाभकारी है।

d. प्रौढ़ावस्था में शरीर की हड्डियों की सघनता में कमी आने लगती है जिस कारण .... रोगों के होने की सम्भावना होती है।

12.4 वृद्धावस्था

12.4.1 वृद्धावस्था की परेशानियाँ

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि वृद्धावस्था में व्यक्ति की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में परिवर्तन होता है। अतः वृद्धावस्था में शारीरिक एवं मानसिक कारकों के साथ आर्थिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि कारक भी स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।

12.4.2 शारीरिक परिवर्तन

वृद्धावस्था में सर्वप्रथम शारीरिक परेशानियां आती हैं। वृद्धावस्था में शरीर के तन्तुओं एवं कोषों का अधिक क्षय होता है तथा निर्माण अत्यन्त अल्प होता है। शरीर की त्वचा में झुर्रियां उम्र बढ़ने का सबसे स्पष्ट संकेत हैं। उम्र बढ़ने के साथ त्वचा का लचीलापन कम हो जाता है। यह इसलिए क्योंकि वृद्धावस्था में शरीर की इलास्टिन एवं कोलेजन उत्पादन करने की प्राकृतिक क्षमता में कमी आ जाती है।

दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन है सफेद बाल। वृद्धावस्था में बाल सफेद होने लगते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि बालों की जड़ें प्राकृतिक रंग बनाए रखने के लिए जो मेलेनिन बनाती हैं, यह क्षमता धीरे-धीरे खो देती हैं।

जैसे-जैसे वृद्धावस्था में उम्र बढ़ती है, वैसे-वैसे व्यक्ति को सुनाई भी कम देने लगता है। यह इसलिए होता है क्योंकि auditory canals धीरे-धीरे पतली होने लगती हैं एवं कान का पर्दा मोटा होने लगता है।

नाखून, संयोज ऊतकों में रक्त प्रवाह की कमी के कारण मोटे एवं भंगुर हो जाते हैं। गर्मी, ठंड एवं चोट आदि उत्तेजनाओं के प्रति त्वचा की संवेदनशीलता भी कम हो जाती है।

वृद्धावस्था में इन्द्रियों की संवेदनशीलता भी कम हो जाती है। धीरे-धीरे उनकी दृष्टि क्षमता, श्रवण क्षमता, सूंघने की क्षमता, स्वाद एवं चीजों को छूकर समझने की क्षमता में भी कमी आ जाती है।

उम्र बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति कम क्रियाशील होता जाता है। उसकी शारीरिक गतिविधियां कम होती चली जाती हैं। शारीरिक गतिविधि के अभाव में भूख कम होने लगती है जिसके कारण पाचन संस्थान की कार्य करने की क्षमता भी कम होने लगती है। वृद्धावस्था में दांत और मसूड़े कमजोर हो जाते हैं। मसूड़े कमजोर होने से दांत गिरने लगते हैं। कई बार कृत्रिम दांत नहीं लगवाए जाते या कृत्रिम दांत मुंह में ठीक तरह से स्थापित नहीं हो पाते, इससे उन्हें भोजन ग्रहण करने में तथा चबाने में काफी परेशानी होती है। भोजन को ठीक प्रकार से न चबा पाने के कारण कुछ प्रकार की भोज्य वस्तुओं के प्रति उनकी सहनशीलता कम हो जाती है जिससे कब्ज एवं गैस की परेशानी होने लगती है। पूरी तरह से भोजन को न चबा पाने के कारण कुछ पोषक भोज्य पदार्थ जैसे सब्जियाँ आदि आहार में सम्मिलित नहीं हो पाते जिससे उनका पोषण स्तर प्रभावित होने लगता है। वृद्धावस्था में शारीरिक गतिविधियों में कमी के कारण ऐसे व्यक्ति घर तक ही सीमित रह जाते हैं जिससे उनका सामाजिक मेलजोल भी प्रभावित होता है।

आधारीय चयापचय दर में कमी: वृद्धावस्था में शरीर में निर्माणात्मक कार्य नहीं होता है और न ही नई कोशिकाओं एवं तन्तुओं का निर्माण होता है। वृद्धावस्था में शारीरिक क्रियाशीलता में कमी हो जाती है। इन सभी कारणों से आधारीय चयापचय दर (Basal Metabolic Rate) में कमी हो जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर की ऊर्जा की मांग 20-25 प्रतिशत तक कम हो जाती है।

सक्रिय तन्तुओं की संख्या में कमी: विभिन्न शोधों से ज्ञात हुआ है कि वृद्धावस्था में सक्रिय कोशिकाओं, तन्तुओं एवं ऊतकों की संख्या में काफी कमी हो जाती है। विशेषकर हृदय, मस्तिष्क, गुर्दे तथा अस्थि पेशियों की कोशिकाओं की संख्या में काफी कमी हो जाती है एवं उनका पुनः निर्माण भी नहीं हो पाता है।

चयापचय में बदलाव: वृद्धावस्था में कई कारणों के प्रभाव से प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं वसा के सामान्य चयापचय में बदलाव आने लगता है। इसका प्रभाव रक्त में कोलेस्ट्रॉल, यूरिक एसिड, यूरिया, नाइट्रोजन एवं उपवासीय रक्त शर्करा की मात्रा बढ़ने से दिखाई देता है।

भूख एवं पाचन क्रिया में बदलाव: जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है भूख एवं पानी की प्यास महसूस करने की क्षमता कम होने लगती है। देखने, सूंघने एवं स्वाद को महसूस करने की क्षमता कम होने से खाना खाने की इच्छा तथा उससे जुड़ा आनन्द कम होता जाता है। पाचन तन्त्र भी ढीला पड़ने लगता है। लार, अमाशय, अग्नाश्य एवं आँतों से स्रावित होने वाले एन्जाइमों की मात्रा कम होने लगती है। अमाशय में अमाशयिक रस का स्रावण कम होने लगता है तथा रस की सान्द्रता भी कम होने लगती है जिसके कारण भोजन का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। पाचन रसों के उचित प्रकार से कार्य न कर पाने के कारण कैल्शियम तथा लौह लवण का अवशोषण भी उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। आँतों की क्रियाशीलता भी कम हो जाती है जिसके कारण भोजन का पाचन सही प्रकार से नहीं हो पाता है। आँतों की क्रमाकुंचन गति (Peristaltic movement) में शिथिलता आ जाती है। इस कारण कब्ज की शिकायत हो जाती है। छोटी आँतों की दीवारों की पेशियाँ भी कमजोर हो जाती हैं जिसके कारण भोजन का अवशोषण भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। अतः शरीर में आवश्यक पौष्टिक तत्व नहीं पहुँच पाते हैं तथा शरीर में कई पौष्टिक तत्वों की कमी होने लगती है।

पाचन संस्थान में लाइपेज एन्जाइम एवं गॉल ब्लैडर से पित्त का स्रावण भी धीरे-धीरे कम होने लगता है। इसके कारण वसा का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। वसा के अधूरे पाचन से अपच एवं वसा में घुलनशील विटामिनों का ठीक प्रकार से अवशोषण नहीं हो पाता है।

अम्ल-क्षार असन्तुलन: शरीर में अम्ल-क्षार का सन्तुलन बिगड़ जाता है। सोडियम एवं कार्बोनेट की अधिकता के कारण रक्त में क्षार का रक्त बढ़ जाता है।

रोग-प्रतिरोधक क्षमता में कमी: वृद्धावस्था में शरीर की रोगों से लड़ने की शक्ति का ह्रास होता है। शरीर में प्रतिरक्षी (Antibody) कम होने के कारण वृद्ध व्यक्ति सर्दी, जुकाम तथा अन्य संक्रामक बीमारियों से जल्द ग्रस्त हो जाता है। वृद्धावस्था में रोग-प्रतिरोधक क्षमता में कमी पोषक तत्वों जैसे पायरेडॉक्सिन, फोलिक अम्ल, विटामिन 'ए', विटामिन 'सी', विटामिन 'ई', लौह लवण एवं जस्ता आदि की कमी से भी हो सकती है।

12.4.3 सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक मुद्दों का प्रभाव वृद्धों के जीवन के साथ उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। जैसे-जैसे वृद्धावस्था बढ़ती है, वृद्धजन सामाजिक अलगाव महसूस करने लगते हैं। एकल परिवार तथा कामकाजी संतान होने के कारण वे अकेलेपन का अनुभव करते हैं। वृद्धावस्था में धीरे-धीरे अनेक प्रकार के नुकसान जैसे नौकरी न होना, पैसे की कमी, परिवारजन एवं मित्रों की मृत्यु आदि सभी व्यक्ति के सामाजिक विकास में परिवर्तन पैदा करते हैं। भारतीय समाज में वृद्ध लोगों को विशिष्ट दृष्टि से देखा जाता है जिसमें उन्हें निष्क्रिय, बौद्धिक दृष्टि में ह्रास, संकीर्ण सोच तथा धर्म एवं अध्यात्मिकता को अधिक महत्व देने वाला समझा जाता है। वृद्धावस्था वास्तव में सामाजिक भूमिकाओं के बदलाव काल की स्थिति है। नई भूमिका में स्थिर होने के लिए वृद्धों को काफी समय लग जाता है।

जब वृद्धजन नौकरी से सेवानिवृत्त हो जाते हैं तो वह इस बात को गहराई से सोचने लगते हैं कि अब परिवार एवं समाज को उनकी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की सोच से वह सतत् तनाव, अवसाद, अकेलेपन एवं निष्क्रिय महसूस करने लगते हैं। यदि वह बच्चों पर आर्थिक रूप से निर्भर होते हैं तो समस्या और भी ज्यादा बढ़ जाती है। पैसे का अभाव एवं निरर्थकता की भावना वृद्धों को सामाजिक रूप से एकाकी बना देती है। उनके पास समय तो बहुत होता है परन्तु उस समय का उचित उपयोग न होने के कारण वह धीरे-धीरे कम गतिशील होने लगते हैं। इन सब सामाजिक कारणों का सीधा प्रभाव उनके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है।

12.4.4 मानसिक/मनोवैज्ञानिक परिवर्तन

अकेले रह रहे वृद्ध व्यक्ति अकेलापन एवं उपेक्षित महसूस करते हैं क्योंकि इस उम्र में उन्हें परिवार का साथ प्राप्त नहीं होता है। यदि जीवन साथी की मृत्यु हो जाती है तो उन्हें अकेलापन अधिक खलता है। अकेलेपन के कारण भोजन के लिए अरुचि एवं भावनात्मक अवसाद के कारण वृद्धजन पोषण सम्बन्धी समस्याओं से ग्रस्त होने लगते हैं।

वृद्धावस्था में आम मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं, विवशता की भावना, हीन भावना, अवसाद निरर्थकता, अकेलेपन और कम क्षमता की भावना आदि। आयु बढ़ने के साथ अवसाद एक सामान्य समस्या है। व्यक्ति निरन्तर उदास एवं चिन्तित रहने लगता है। इन सभी भावनाओं से उनके भोजन, स्वास्थ्य एवं आपसी सम्बंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इसलिए वृद्ध होने की प्रक्रिया में एक सकारात्मक मानसिक दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता होती है। मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण वृद्धावस्था में वृद्धों के व्यक्तित्व में बदलाव देखा जा सकता है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण वह विभिन्न मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक रोगों से पीड़ित रहने लगते हैं तथा परिवार के साथ सामंजस्य में उन्हें दिक्कत होने लगती है।

12.4.5 वृद्धावस्था में शरीर के विभिन्न संस्थानों में परिवर्तन

उम्र बढ़ने के साथ-साथ देखने, सुनने एवं सूंघने की इन्द्रियां कमजोर होती चली जाती हैं। स्वाद की अनुभूति भी कम होने लगती है जो बीमारी तथा सिगरेट आदि के प्रयोग से और बढ़ जाती है। वृद्धावस्था में विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं की दक्षता में निरन्तर और अपरिवर्तनीय गिरावट आती रहती है। वृद्धों के शरीर में उपस्थित संयोजी तन्तुओं में भी परिवर्तन हो जाता है। वे सख्त एवं कठोर होने लगते हैं। उनका लचीलापन समाप्त हो जाता है। कोलेजन जो शरीर के विभिन्न ऊतकों को जोड़ने का कार्य करता है की मात्रा घटने लगती है।

पाचन संस्थान में परिवर्तन: वृद्धावस्था में पाचन संस्थान भी कमजोर हो जाता है। भोजन देरी से पचता है। लार (saliva) का स्रवण भी कम होने लगता है। दाँतों का क्षय होने के कारण भोजन काटने, चबाने में काफी परेशानी होती है। अमाशय से भी अमाशयिक रस का स्राव कम होने लगता है जिसके कारण भोजन का पाचन ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। अमाशय की क्रियाशीलता भी कम हो जाती है जिसके कारण अपच, जलन, गैस आदि की समस्या रहने लगती है।

उत्सर्जी तंत्र में परिवर्तन: वृद्धावस्था में उत्सर्जी तंत्र के कार्य भी क्षीण होने लगते हैं। नेफ्रॉन की क्रियाशीलता तथा संख्या में लगातार कमी दिखाई देती है। इस कारण जो भी उपलब्ध नेफ्रॉन होते हैं उत्सर्जन का सारा कार्य उन्हीं के द्वारा होता है। फिर भी यह नेफ्रॉन शरीर से गन्दगी निकालने के लिए पर्याप्त होते हैं। उम्र बढ़ने के साथ-साथ गुर्दों में रक्त प्रवाह भी कम होने लगता है। मूत्र त्याग की इच्छा बार-बार होती रहती है।

हृदय एवं रक्त परिसंचरण तन्त्र में परिवर्तन: वृद्धावस्था में हृदय तथा रक्त परिसंचरण तंत्र में भी परिवर्तन हो जाता है। हृदय की पेशियाँ कमजोर एवं क्षीण हो जाती हैं। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट

होती है कि शारीरिक गतिविधि बढ़ाने से थकान बढ़ती है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ रक्तचाप भी बढ़ने लगता है। रक्त नलिकाओं की दीवारों में वसा का जमाव होने लगता है जिसके कारण रक्त नलिकाओं का व्यास छोटा हो जाता है। इस कारण हृदय रोग होने की सम्भावना बढ़ जाती है। बढ़ती उम्र के साथ प्रति लीटर रक्त में लाल रक्त कोशिकाओं की संख्या कम होती चली जाती है। परिधीय नसों में रक्त का थक्का जमने के कारण वह संकुचित हो जाती हैं। यदि हृदय के वाल्व प्रभावी ढंग से कार्य न कर रहे हों तो पैरों की नसों में रक्त इकट्ठा हो सकता है। हृदय को शरीर में ऑक्सीजन का स्तर बनाए रखने के लिए और अधिक कार्य करना पड़ता है।

श्वसन प्रणाली में परिवर्तन: वृद्धावस्था में धीरे-धीरे फेफड़ों के ऊतक कम लचीले होते जाते हैं। ऑक्सीजन अंतर्गहण एवं विनिमय में कमी आ जाती है। रिब केज की माँसपेशियों के कमजोर होने के कारण गहरी साँस, खाँसना एवं कार्बन डाइ ऑक्साइड निष्कासित करने की क्षमता कम हो जाती है। श्वसन प्रणाली में विभिन्न बदलावों के कारण साँस लेने में तकलीफ, श्वसन सम्बंधी बीमारियों एवं शीघ्र थकान का अनुभव होने लगता है।

पेशीय-कंकाल संस्थान में परिवर्तन: वृद्धावस्था में सामान्यतः सभी माँसपेशियों में क्षीणता आने लगती है। कुछ माँसपेशियों के ऊतकों का स्थान वसा ऊतक ले लेते हैं। इससे माँसपेशियों के रख-रखाव एवं मजबूती में कमी आने लगती है। माँसपेशियों की यह क्षीणता कब्ज एवं मूत्र-असंयम का कारण बनती है। वृद्धों के अस्थियों में पुन:शोषण होने लगता है जिसके कारण उनकी अस्थियाँ कमजोर होने लगती हैं। धीरे-धीरे हड्डियों का घनत्व कम हो जाता है जिसके कारण हड्डियों की वजन वहन करने की क्षमता कम हो जाती है तथा हड्डियों के सहज ही टूटने होने की संभावना बढ़ जाती है। मेरूदण्ड के अस्थि खण्ड भी कमजोर होने लगते हैं जिससे पीठ वक्र हो जाती है एवं ऊँचाई में कमी प्रतीत होने लगती है। शरीर के सभी जोड़ों में परिवर्तन आने लगता है। जोड़ों की बीमारी, गठिया वृद्धावस्था की आम बीमारियाँ हैं।

12.4.6 वृद्धावस्था में संवेदी परिवर्तन

वृद्धावस्था में इंद्रियों में संवेदी परिवर्तन आने शुरु हो जाते हैं।

दृष्टि में परिवर्तन: वृद्धावस्था के शुरु होने के साथ-साथ आँख की पुतली के आकार में कमी आने लगती है एवं प्रकाश के प्रति आँखों की प्रतिक्रिया में भी कमी आती है। इसी कारण वृद्धावस्था में लोगों को ठीक प्रकार से देखने के लिए तीन गुना अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है। पास की दृष्टि कमजोर होने के कारण छोटे अक्षर को पढ़ना कठिन हो जाता है। यह स्थिति चश्मा पहनने से ठीक हो जाती है। आँख का लेंस मोटा और पीला होता चला जाता है। वृद्धावस्था में वृद्धजन

मोतियाबिन्द (आँख का लैंस अपारदर्शी हो जाना), मधुमेह रेटिनोपैथी (मधुमेह के कारण आँखों में परिवर्तन), ग्लूकोमा (आँख के अन्दर का दबाव बढ़ना) आदि आँखों की परेशानियों का सामना करते हैं।

सुनने में परिवर्तनः सुनने की शक्ति में हानि वृद्धावस्था का स्वाभाविक परिणाम है। 30 से 40 साल की उम्र के पश्चात् व्यक्ति की सुनने की क्षमता कम होने लगती है। पचास साल की उम्र के पश्चात् शोर में साफ सुनाई नहीं देता है। जैसे-जैसे वृद्धावस्था बढ़ती है सुनने की शक्ति कम होती चली जाती है। 80 साल की उम्र तक 75 प्रतिशत सुनने की शक्ति में हानि हो जाती है। सुनने में हानि कान की हड्डियों में परिवर्तन तथा भीतरी कान की कोशिकाओं में परिवर्तन के कारण होती है।

स्वाद एवं गंध संवेदना में परिवर्तन: स्वाद और गन्ध इन्द्रियां आपस में सम्बंधित होती हैं। स्वाद ग्रन्थियों की संख्या में कमी के कारण वृद्धावस्था में स्वाद पहचानने की क्षमता में कमी आने लगती है।

अन्तःस्रावी ग्रंथियों से कम मात्रा में हारमोन स्रावण: वृद्धावस्था में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोनों की क्रियाशीलता में काफी कमी हो जाती है, जिसके कारण शरीर में हारमोन असन्तुलन हो जाता है। थायरॉइड तथा पैराथायरॉइड ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोन के असन्तुलन के कारण वृद्धों में अस्थि विकृति रोग 'ऑस्टियोपोरोसिस' हो जाता है, क्योंकि कैल्शियम का चयापचय ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। थॉयराइड ग्रंथि की क्रियाशीलता में कमी के कारण कैलोरी की आवश्यकता में कमी हो जाती है।

नाड़ी संस्थान में परिवर्तन: वृद्धावस्था में नाड़ी संस्थान में परिवर्तन आने लगते हैं। लगभग दो तिहाई वृद्धों को अंततः उम्र बढ़ने के परिणामस्वरूप मानसिक स्पष्टता में हानि का अनुभव होता है। यह इसलिए होता है क्योंकि नाड़ी संस्थान की तंत्रिका तन्तुएं कमजोर हो जाती हैं। साठ साल की उम्र के पश्चात् महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक गिरावट देखी जाती है। इसके अतिरिक्त याददाश्त, एकाग्रता विचारों की स्पष्टता एवं निर्णय लेने की क्षमता में भारी गिरावट आने लगती है।

शारीरिक संरचना में परिवर्तन: वृद्धावस्था में शारीरिक संरचना में आश्चर्यजनक ढंग से बदलाव आते हैं। शरीर में वसा की मात्रा बढ़ती रहती है तथा वसा रहित शरीर द्रव्यमान (Lean Body Mass) की मात्रा घटती रहती है। शरीर में 25 वर्ष की आयु में 19 प्रतिशत वसा होती है जो 65 साल की उम्र तक बढ़कर 35 प्रतिशत हो जाती है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ शरीर से पानी की मात्रा भी कम होने लगती है।

12.4.7 वृद्धावस्था में होने वाली बीमारियाँ

औद्योगीकरण, वर्धित आर्थिक शक्ति एवं विकसित चिकित्सा सेवाओं ने मानव जाति को लम्बे समय तक जीने में मदद की है। लम्बी जीवन अवधि तभी उत्तम एवं वांछनीय है जब वह रोग मुक्त हो। स्वस्थ जीवन प्रत्याशा को अपक्षयी रोगों की सीमित संख्या द्वारा निर्धारित किया जाता है जो कि वृद्धावस्था के साथ बढ़ते जाते हैं। वृद्धावस्था से सम्बंधित विभिन्न अपक्षयी रोग जैसे हृदय रोग, कैंसर, आघात, मधुमेह, संक्रमण आदि प्राण घातक हो सकते हैं। अपक्षयी रोग गैर-संचारी रोग होते हैं जो लम्बी समयावधि तक चलते रहते हैं। वृद्धावस्था में सुनने एवं देखने की क्षमता में कमी के साथ उनकी स्वास्थ्य स्थिति और भी जटिल हो जाती है। रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी एवं उम्र से सम्बंधित शारीरिक परिवर्तनों के कारण वृद्धों का स्वास्थ्य खतरे में रहता है। भारत सरकार के आँकड़ों के अनुसार वृद्धों में हृदय रोग मृत्यु का एक बड़ा (एक तिहाई) कारण है। साँस की बीमारियाँ एवं संक्रमण जैसे टीबी भी वृद्धों में मृत्यु के प्रमुख कारण हैं। कुपोषण, गुर्दे की विफलता, अवसाद आदि समस्याएं वृद्धों में आम हैं।

मोटापा: वृद्धावस्था में मोटापा कई जीर्ण रोगों जैसे हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रॉल स्तर एवं मधुमेह के लिए एक बड़ा जोखिम कारक है। वृद्धावस्था में मोटापा जीवन प्रत्याशा को कम कर देता है एवं विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों के लिए एक बड़ा खतरा है। यह क्रियाशीलता की कमी, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अस्वास्थ्यकर भोजन सम्बंधी आदतों से होता है। मोटापे के विषय में आप पूर्व की इकाइयों में पढ़ चुके हैं।

उच्च रक्तचाप: वृद्धावस्था में उच्च रक्तचाप सर्वाधिक प्रचलित समस्या है। विश्व भर में आधे से अधिक वृद्धजन उच्च रक्तचाप की समस्या से पीड़ित हैं। उच्च रक्तचाप के अनेक जोखिम कारक हैं। इनमें परिवार का इतिहास, धूम्रपान, निर्धारित वजन से अधिक वजन, शराब का सेवन तथा सामान्य नमक का अधिक सेवन प्रमुख हैं।

सतत् तनाव में रहने वाले लोग भी उच्च रक्तचाप से ग्रस्त रहते हैं। उच्च रक्तचाप में रक्तचाप का माप 120/80 mm Hg के सामान्य स्तर से बढ़ जाता है। यदि इसे नियन्त्रित करने के उपाय नहीं अपनाये जाते तो यह स्तर दिनों दिन बढ़ता रहता है। यह बीमारी शरीर के अन्य अंगों जैसे गुर्दे, हृदय, आँखों आदि को भी नुकसान पहुँचाती है। इसके सामान्य लक्षण हैं सिरदर्द, भ्रम, मतली, चक्कर आना, धुंधला दिखना आदि।

हृदय रोग: वृद्धावस्था में अनेक प्रकार के हृदय रोग हो सकते हैं। हृदय में रक्त के प्रभावी संचरण के अभाव से होने वाले हृदय रोग को हृदय में बाधित रक्त आपूर्ति रोग कहते हैं। हृदय के अन्य रोग जो

वृद्धावस्था में होते हैं, वे हैं एन्जाइना एवं हृदय आघात। एन्जाइना में छाती में सिकुड़न अथवा भारीपन लगता है। हृदय आघात में छाती में तीव्र दर्द का अनुभव होता है। वृद्धावस्था में हृदय का आकार बढ़ जाता है जिससे हृदय की रक्त को सारे शरीर में स्पंदित करने की शक्ति में कमी आ जाती है। इसके फलस्वरूप रक्त वाहिकाएं सख्त होकर कम लचीली हो जाती हैं और पैरों में सूजन, उच्च रक्तचाप एवं हृदय आघात का कारण बनती हैं।

मधुमेह: वृद्धावस्था में शरीर की ग्लूकोज को उपयोग करने की क्षमता कम हो जाती है जिससे वृद्ध मधुमेह से ग्रसित हो जाते हैं। अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि रक्त में ग्लूकोज की मात्रा सामान्य रूप से आयु के साथ बढ़ सकती है। वृद्धावस्था में मधुमेह होने के अनेक जोखिम कारक हैं। इनमें प्रमुख रूप से मोटापा, आहार में कम रेशायुक्त भोजन, उच्च वसायुक्त भोजन का प्रयोग, व्यस्कावस्था से कम क्रियाशीलता आदि बड़े कारक हैं।

मधुमेह से मस्तिष्क आघात, अंधता, हृदयरोग, गुर्दों का कार्य करना बन्द होना, गैंगरीन तथा शिरा क्षति जैसी अनेक दीर्घकालिक जटिलताएं पैदा हो जाती हैं। वृद्धावस्था में मधुमेह हृदय रोग का एक बड़ा कारक है। इसके आम लक्षण हैं: अत्यधिक प्यास, अधिक एवं बार-बार मूत्र त्याग की इच्छा, संक्रमण, अत्यधिक भूख, कमजोरी, चिड़चिड़ापन, मतली, वमन, थकान आदि।

रक्त में ग्लूकोज की अत्यधिक मात्रा या बहुत कम मात्रा, दोनों ही स्थितियाँ हानिकारक हैं। इसलिए दोनों ही स्थितियों को उत्पन्न होने से रोकना चाहिए। मधुमेह को पूरी तरह से ठीक नहीं किया जा सकता, लेकिन इसे नियंत्रित रखा जा सकता है। बेहतर नियंत्रण के अंतर्गत आहार, व्यायाम तथा दवाईयों द्वारा उपचार सम्मिलित है।

ऑस्टियोपोरोसिस: ऑस्टियोपोरोसिस वृद्धावस्था में कमजोर हड्डियों की सामान्य स्थिति है। जैसा कि आप पहले भी पढ़ चुके हैं कि वृद्धावस्था में हड्डियों का घनत्व कम हो जाता है जिससे हड्डियाँ दिनों दिन कमजोर होने लगती हैं। ऑस्यिोपोरोसिस में हड्डियों का द्रव्यमान घनत्व कम हो जाता है और वे भुरभुरी हो जाती हैं। इस बीमारी में दर्द के अलावा हड्डियों के फ्रैक्चर का खतरा बढ़ जाता है। वैसे तो ऑस्टियोपोरोसिस से सारी हड्डियां प्रभावित होती हैं परन्तु इसमें कूल्हे, रीढ़ तथा कलाई की हड्डी टूटने की संभावना सबसे अधिक होती है। महिलाओं में इस रोग का जोखिम अधिक होता है क्योंकि रजोनिवृत्ति के उपरान्त एस्ट्रोजन नामक हारमोन में कमी के कारण उनमें हड्डियों का क्षय तेजी से होता है। इस रोग के कारण हड्डियाँ नाजुक होकर जल्द टूटने वाली तो हो ही जाती हैं, साथ-साथ हड्डियों में निरंतर दर्द, कमर दर्द, चलने में परेशानी आदि परेशानियां भी होती हैं। इस रोग के मुख्य कारण शारीरिक गतिविधि में कमी, अधिक वजन, मोटापा, हारमोन

सम्बंधी परिवर्तन, चयापचयी समस्याएं जैसे हायपोथायरॉडिज्म, हाइपरथायरॉडिज्म, विटामिन-डी एवं कैल्शियम की कमी, तनाव तथा चिंता हैं।

ऑस्टियोआर्थराइटिस: ऑस्टियोआर्थराइटिस वृद्धावस्था में होने वाली एक और आम बीमारी है। यह हड्डियों के जोड़ों के उपास्थियों (Cartilage) के क्षय की बीमारी है। यह जोड़ों की उपरी सतह और हड्डी के अन्दर भी प्रभाव डालती है। इससे हड्डी पर दबाव पड़ने लगता है। उपास्थियों के अन्दर तरल एवं लचीले ऊतक होते हैं जिसे सिनोवियल द्रव कहते हैं। इसकी उपस्थिति में जोड़ों का उचित संचालन हो पाता है एवं उन्हें हिलाने-डुलाने से आपस में घर्षण नहीं होता है। जब यह सिनोवियल द्रव किसी कारणवश सूखने लगता है तो घर्षण के कारण उपास्थियों का क्षय होने लगता है। बढ़ती उम्र के साथ आर्थराइटिस के जोखिम भी बढ़ जाते हैं। मोटापा, अनुवंशिकता, त्वचा रोग, कम प्रतिरोधक क्षमता, विटामिन डी की कमी, शारीरिक गतिशीलता का अभाव, धूम्रपान, शराब, जंक फूड का अत्यधिक सेवन, व्यायाम की कमी आदि सभी आर्थराइटिस के कारण है।

इस रोग में जोड़ों में दर्द, अकड़न एवं सूजन हो जाती है। परिणामस्वरूप मरीज को चलने-फिरने में मुश्किल होती है, जोड़ का आकार बिगड़ जाता है, वह एक सीध में नहीं रहता और कई बार जोड़ पूरा ध्वस्त हो जाता है।

मोतियाबिंद: मोतियाबिंद आँखों का रोग है जो 50 से अधिक आयु वाले लोगों में विकसित होता है। जब किसी कारणवश आँख के लैंस की पारदर्शिता कम या समाप्त हो जाती है जिससे व्यक्ति को धुंधला दिखाई देने लगता है तो उस स्थिति को मोतियाबिंद कहते हैं। उम्र बढ़ने के साथ मोतियाबिंद के भी बढ़ने का खतरा बढ़ जाता है। जोखिम के अन्य कारक जैसे धूम्रपान, मधुमेह, शराब का सेवन एवं लम्बे समय तक धूप में रहना भी महत्वपूर्ण हैं। इस रोग में समय के साथ दृष्टि में क्रमिक गिरावट आने लगती है। नेत्र दृष्टि का धुंधलापन मोतियाबिंद का प्रारम्भिक लक्षण हो सकता है। बिना किसी परेशानी के धीरे-धीरे नजर कमजोर होती जाती है। धीरे-धीरे वस्तुएं विकृत या अस्पष्ट दिखाई देने लगती हैं। समय रहते इसका उपचार करवाना आवश्यक है।

फेफड़ों की बीमारी: वृद्ध फेफड़ों के रोगों से जल्दी प्रभावित होते हैं क्योंकि उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता की कमी होती है, इसलिए वह जल्दी ही संक्रमण की चपेट में आ जाते हैं। फेफड़ों की ज्यादातर बीमारियाँ उचित देखभाल एवं दवाओं के प्रयोग से ठीक हो जाती हैं। क्रोनिक ब्रोंकाइटिस वृद्धों में होने वाला आम फेफड़ों का रोग है। इस रोग में साँस नली में अवरोध आने लगता है। अनेक वर्षों तक धूम्रपान करने के कारण श्वसन कार्य में गैर लक्षणात्मक गिरावट का चरण आता है। इस रोग में जीर्ण खाँसी, घरघराहट, साँस लेने में तकलीफ आदि लक्षण दिखाई देते हैं। बाद में थकान,

रूग्णता, वजन तथा नींद में कमी आदि लक्षण भी दिखाई देते हैं। फेफड़ों से सम्बंधित अन्य रोग जो वृद्धावस्था में व्याप्त है, वह है क्षय रोग। युवाओं की तुलना में वृद्ध व्यक्तियों में क्षयरोग की व्याप्ति हमेशा से उच्च रही है। इसमें माइकोबैक्टिरियम ट्यूबरक्यूलोसिस से संक्रमण होता है। इसके लक्षणों में ज्वर, रात्रि कालीन पसीना एवं खाँसी तथा वजन में लगातार कमी सम्मलित हैं।

गुर्दे के रोग: जैसा कि आप पहले जान चुके हैं कि वृद्धावस्था में गुर्दे के कार्य करने को क्षमता में कमी आ जाती है। इसलिए वृद्धों में गुर्दे के रोग एवं विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह रोग वंशानुगत, शारीरिक, जन्मजात या अधिग्रहण किये हुए हो सकते हैं। यह गम्भीरता के अनुसार दीर्घकालीन या तीव्र प्रकार का हो सकता है। गुर्दे के विकारों के कारण वृद्धावस्था में गुर्दे की विफलता (kidney failure) एवं मृत्यु का जोखिम बना रहता है। इसके मुख्य कारण उच्च रक्तचाप, असामान्य वजन, निष्क्रिय जीवन शैली, धूम्रपान, तंबाकू चबाना आदि होते हैं।

अन्य बीमारियाँ: वृद्धावस्था में अन्य बीमारियाँ जैसे अपच, कब्ज, मानसिक समस्याएं, अल्जाइमर रोग, पार्किन्सन रोग, कैन्सर, त्वचा रोग आदि हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

1. वृद्धावस्था में मोटापे के कारण क्या परेशानियाँ हो सकती हैं?

   ....

   ....

2. वृद्धावस्था में होने वाले मानसिक/मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से वृद्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

   ....

   ....

12.4.8 वृद्धावस्था में पोषण आवश्यकताएं

जीवन में उच्च स्वास्थ्य या निरोग रहने के लिए पोषण सम्बंधी आवश्यकताएं जीवन भर बनी रहती हैं। वृद्धावस्था में पोषण सम्बंधी आवश्यकताएं उनकी आयु, लिंग, क्रियाशीलता, मानसिक एवं शारीरिक स्थिति आदि पर निर्भर करती हैं।

ऊर्जा: ऊर्जा का अंतर्ग्रहण उम्र के साथ उत्तरोत्तर कम होता चला जाता है। वृद्धावस्था में शरीर की कोशिकाओं, तन्तुओं एवं ऊतकों में टूट-फूट अधिक होती है तथा क्रिया न के बराबर होती है।

शारीरिक क्रियाशीलता एवं आधारीय चयापचय दर में भी काफी कमी आ जाती है। इसलिए वृद्धावस्था में ऊर्जा की माँग में कमी आ जाती है। अतः वृद्धावस्था में सामान्य से थोड़ी कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। वृद्धावस्था में यदि ऊर्जा अंतर्ग्रहण पर ध्यान नहीं दिया जाता तो अधिक वजन या मोटापे की समस्या हो सकती है। मोटापा अन्य बीमारियों के लिए स्वयं बड़ा जोखिम कारक है। आहार में ऊर्जा की मात्रा को कम करने के लिए वसा एवं चीनी का प्रयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए। ऊर्जा का अंतर्ग्रहण इतना भी कम नहीं होना चाहिए कि पोषण सम्बंधी कोई कमी उत्पन्न न हो जाए। वजन को सन्तुलित रखने के लिए वृद्धों को सन्तुलित आहार लेकर अपने आप को उचित रूप से क्रियाशील रखना चाहिए।

प्रोटीन: जैसा कि आप पूर्व में अध्ययन कर चुके हैं कि वृद्धावस्था में शरीर के तन्तुओं में टूट-फूट की क्रिया अधिक होती है। वृद्धावस्था में प्रोटीन की आवश्यकता कोशिकाओं के विकास, टूट-फूट की मरम्मत एवं शरीर के तरल पदार्थों जैसे रक्त के स्तर को उचित रखने के लिए होती है। शरीर में गतिशीलता होने के कारण प्रोटीन लगातार संश्लेषित एवं क्षतिग्रस्त होते रहते हैं। इसलिए वृद्धावस्था में भी प्रोटीन की आवश्यकता प्रतिदिन होती है जो आहार द्वारा पूरी होनी आवश्यक है। हालांकि वृद्धावस्था में शरीर की प्रोटीन की दैनिक माँग घट जाती है। प्रोटीन की माँग में कमी का बड़ा हिस्सा शरीर में माँसपेशियों की कमी की वजह से होता है। 25 से 70 वर्ष आयु के बीच 50 प्रतिशत माँसपेशियों की क्षय हो जाता है। शरीर को उचित अवस्था में रखने के लिए 50-60 ग्राम पोटीन प्रतिदिन उपयुक्त रहता है। वृद्धावस्था में गुर्दे का कार्य भी क्षीण पड़ने लगता है, इसलिए प्रोटीन सुपाच्य एवं उच्च जैविक मूल्य वाला होना चाहिए। पूर्णतः शाकाहारी वृद्धों को उपयुक्त मात्रा एवं गुणवत्ता का प्रोटीन ग्रहण करने का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

वसा: उम्र बढ़ने के साथ-साथ आहार में वसा का प्रयोग सीमित कर देना चाहिए। वसा की आवश्यकता वसा में घुलनशील विटामिनों के उचित अवशोषण के लिए होती है। सभी प्रकार के वसीय अम्ल आहार में संतुलित रूप से सम्मलित होने चाहिए। संतृप्त वसा, जो वनस्पति घी में उपस्थित होती है, का प्रयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए। वृद्धावस्था में असंतृप्त वसा (वनस्पति जन्य तेलों में उपस्थित) का ही उपयोग करना चाहिए। बहु असंतृप्त वसा तथा एकल असंतृप्त वसा का प्रयोग उचित अनुपात में करना चाहिए। आहार में ट्रांस वसीय अम्लों से बचा जाना चाहिए। हृदय रोग, उच्च रक्तचाप आदि से पीड़ित वृद्धों को ओमेगा-3 वसीय अम्लों (omega-3 fatty acids) का प्रयोग करना चाहिए। यह मछली, समुद्री भोजन, अलसी के बीज, अखरोट, तिल आदि में पाया

जाता है। यह वसा रक्त में कोलस्ट्रॉल का स्तर नियन्त्रित करने में मदद करती है जिससे बीमारियों का जोखिम कम हो सकता है।

आहारीय रेशा: जैसे कि आप जानते हैं कि वृद्धावस्था में पाचन संस्थान की क्रियाशीलता कम हो जाती है जिससे भोजन के पाचन में कमी आने लगती है। वृद्ध कब्ज, अपच, भूख न लगना आदि समस्याओं से पीड़ित रहते हैं। रेशा वृद्धावस्था में आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। भोज्य पदार्थों में उपस्थित रेशे को शरीर के एन्जाइम पचा नहीं पाते हैं। शरीर में पहुँचकर यह रेशा नमी को ग्रहण कर अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में मदद करता है। वृद्धावस्था में दिनभर में 40 ग्राम आहारीय रेशे का सेवन उपयुक्त रहता है। रेशा युक्त आहार विटामिन, खनिज लवणों से परिपूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त रेशे का सेवन कोलेस्ट्रॉल, रक्त शर्करा को नियन्त्रित करने में भी मदद करता है। आहारीय रेशे के लिए साबुत मोटे अनाज, दालों, फलियां, फल, सब्जियों एवं रेशे युक्त बीज जैसे अलसी के बीजों का प्रयोग आहार में भरपूर मात्रा में करना चाहिए।

विटामिन: वृद्धावस्था में शारीरिक क्रियाओं की जरूरतों को पूरा करने के लिए तथा शरीर को मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रखने के लिए विटामिनों का सेवन आवश्यक है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ विटामिन का अवशोषण एवं उपयोग कम होता चला जाता है। कुछ विटामिन शरीर में जाकर सक्रिय रूप में परिवर्तित होते हैं, वृद्धावस्था में यह क्रिया पहले की भाँति कुशलता से नहीं होती है। ऊर्जा की कम मात्रा के अंतर्ग्रहण के कारण वृद्धों में विटामिन की कमी हो सकती है। इससे बचने के लिए आहर में कम ऊर्जा एवं अधिक विटामिन वाले भोज्य पदार्थों का चुनाव उत्तम रहता है। हाल ही के शोधों से पता चला है कि वृद्धावस्था के परिवर्तनों को विटामिन के उचित अंतर्ग्रहण से रोका जा सकता है। यह विटामिन ए, ई, सी एवं बीटा कैरोटीन के एंटीऑक्सीडेंट गुणों के कारण हो सकता है। ये विटामिन रक्त वाहिकाओं, हृदय, जोड़ों एवं आँख के लैंस में नकारात्मक परिवर्तनों को रोकते हैं।

बी विटामिन: शरीर में विटामिन बी की कम मात्रा संगृहित होती है। कम ऊर्जा अंतर्ग्रहण के साथ आहर सम्बंधी बुरी आदतों के कारण वृद्धावस्था में विटामिन बी की कमी के लक्षण विकसित हो सकते हैं।

थायमिन: शरीर में थायमिन की आवश्यकता ऊर्जा की आवश्यकताओं से जुड़ी है। इसलिए वृद्धावस्था में थायमिन की दैनिक आवश्यकता कम होती जाती है। कम आवश्यकताओं के बावजूद इस विटामिन की आहार में कमी पायी जाती है। थायमिन विटामिन की आवश्यकता बुखार, कैन्सर, मूत्रवर्धक दवा के प्रयोग के साथ एवं उच्च कार्बोहाइड्रेट आहार के सेवन के साथ बढ़ जाती है।

राइबोफलेविन: उम्र बढ़ने के साथ राइबोफ्लेविन की आवश्यकता में कोई बदलाव नहीं आता है। जब अन्य सभी बी विटामिनों का अंतर्ग्रहण कम किया जाता है तो राइबोफ्लेविन की भी कमी होने लगती है। सामान्यतः इस विटामिन की कमी वृद्धावस्था में दिखाई नहीं देती है।

नियासिन: वृद्धावस्था में नायसिन की आवश्यकता में कोई बदलाव नहीं आता है।

पाइरिडॉक्सिन (विटामिन बी6): विटामिन बी-6 ऊतकों में जाकर पाइरिडॉक्सल-5-फॉस्फेट में बदलकर शरीर की विभिन्न क्रियाओं को सम्पादित करता है। वृद्धावस्था में पाइरिडॉक्सिन की आवश्यकता 30 प्रतिशत बढ़ जाती है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ रक्त में पाइरिडॉक्सिन की मात्रा घटती चली जाती है। इसी कारण शरीर में ट्रिप्टोफैन अमीनो अम्ल का नियासिन में परिवर्तित होना कम हो जाता है। उचित मात्रा में विटामिन बी-6 लेने के लिए सूखा खमीर, यकृत, चावल की भूसी, गेहूँ का चोकर, सम्पूर्ण अनाज आदि का प्रयोग उचित मात्रा में करना चाहिए।

विटामिन बी-12: शोधों से पता चला है कि वृद्धों के रक्त सीरम में विटामिन बी-12 की कमी से मानसिक विकार एवं भ्रम की स्थिति उत्पन्न होने लगती है। वृद्धावस्था में विटामिन बी-12 की आवश्यकता में कोई परिवर्तन नहीं आता है परन्तु इस अवस्था में खाद्य पदार्थों में उपस्थित विटामिन बी-12 का शरीर में अवशोषण कम हो जाता है। इसलिए वृद्धावस्था में विटामिन बी-12 से प्रबलीकृत भोज्य पदार्थों के उपयोग की सलाह दी जाती है।

फोलिक अम्ल: वृद्धावस्था में फोलिक अम्ल की कमी पायी जाती है। वैसे तो वृद्धावस्था में फोलिक अम्ल की आवश्यकता में कोई वृद्धि नहीं होती है। फिर भी फोलिक अम्ल युक्त भोज्य पदार्थों के कम अंतर्ग्रहण, वृद्धावस्था में फोलिक अम्ल का शरीर में जाकर सक्रिय फोलेसिन में न बदलना एवं आहार द्वारा कम फोलिक अम्ल के अवशोषित होने के कारण इसकी कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। कुछ वृद्धों में फोलिक अम्ल के निम्न अवशोषण के बाद भी रक्त सीरम में फोलिक अम्ल का स्तर उचित रहता है। कुछ मात्रा में फोलिक अम्ल आँतों में उपस्थित लाभकारी बैक्टीरिया द्वारा संश्लेषित किया जाता है।

विटामिन सी: बढ़ती उम्र के साथ शरीर में विटामिन-सी के स्तर में गिरावट आती है। यइ इसलिए क्योंकि जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है वैसे-वैसे शरीर में विटामिन-सी की खपत भी कम हो जाती है। विटामिन-सी के अभाव में वृद्धों की रोग प्रतिरोधी क्षमता में कमी आ जाती है। फलस्वरूप वे सर्दी, जुकाम, बुखार, फ्लू आदि बीमारियों से शीघ्रता से पीड़ित हो जाते हैं। अतः उनके आहार में विटामिन सी युक्त खाद्य पदार्थ जैसे नींबू, संतरा, अमरूद, आँवला आदि फलों का भरपूर समावेश होना चाहिए।

विटामिन एः वृद्धावस्था में जो लोग आहार में कम विटामिन ए लेते हैं वह नाड़ी संस्थान, परिसंचरण संस्थान एवं श्वसन सम्बंधी विभिन्न रोगों से पीड़ित रहते हैं। आँखों एवं त्वचा के उत्तम स्वास्थ्य के लिए उचित मात्रा में विटामिन ए या बीटा कैरोटीन लेना चाहिए। बीटा-कैरोटीन एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है जो कैन्सर जैसे रोग से शरीर को बचाता है। यह हृदय धमनियों की भी रक्षा करता है।

विटामिन डीः वृद्धावस्था में गुर्दों की क्रियाशीलता कम होती जाती है जिसके फलस्वरूप शरीर में विटामिन डी अपने सक्रिय रूप 25-हाइड्रॉक्सी कोलकैल्सीफरॉल, 1, 25 डाई-हाइड्रो कोलकैल्सीफरॉल में परिवर्तित नहीं हो पाता है। जब आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'डी' उपस्थित नहीं होता है तब कैल्शियम का अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। ऐसी स्थिति में ऑस्टियोपोरोसिस रोग हो जाता है। बढ़ती उम्र के साथ शरीर में सूर्य की किरणों की क्रिया से विटामिन डी विकसित होना भी कम हो जाता है। वृद्धावस्था में विटामिन डी की आवश्यकता 300 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। विटामिन डी का अच्छा स्रोत सूर्य की प्रातःकालीन किरणें हैं। यदि वृद्ध व्यक्ति चलने-फिरने, टहलने में अक्षम है तो आहार के माध्यम से उसे विटामिन डी दिया जाना चाहिए। मछली के यकृत का तेल विटामिन डी का उत्तम स्रोत है।

विटामिन ईः विटामिन ई एक शक्तिशाली एंटीऑक्सीडेंट है। वृद्धावस्था में विटामिन ई की आवश्यकता बढ़ जाती है।

खनिज लवण

वृद्धावस्था में खनिज लवण आवश्यक हैं क्योंकि खनिज लवण जैसे सोडियम, पोटेशियम एवं क्लोरीन शरीर में अम्ल-क्षार का सन्तुलन बनाए रखने में मदद करते हैं। वृद्ध व्यक्ति अम्ल-क्षार के असन्तुलन से कमजोर एवं थका हुआ महसूस करने लगते हैं।

लौह लवणः वृद्धावस्था में प्रायः लौह तत्व की कमी हो जाती है जिसके कारण उन्हें रक्ताल्पता या एनीमिया हो जाता है। शरीर में लौह तत्व की कमी या तो आयु सम्बंधित किसी रोग के कारण या लौह तत्व की कम अवशोषकता के कारण या आहार में लौह तत्व युक्त कम भोज्य पदार्थों के समावेश द्वारा हो सकती है। अतः आहार में लौह लवणयुक्त भोज्य पदार्थों को अवश्य सम्मलित किया जाना चाहिए। क्योंकि पूरे आहार से सिर्फ 2-5 प्रतिशत लौह लवण का ही अवशोषण हो पाता है इसलिए प्रतिदिन 20-30 मिलीग्राम लौह लवण अवश्य लेना चाहिए।

कैल्शियमः वृद्धावस्था में हड्डियों एवं दाँतों की शक्ति को बनाए रखने के लिए कैल्शियम की आवश्यकता पड़ती है। उम्र के साथ-साथ कैल्शियम का अवशोषण घटता चला जाता है। यदि

आहार द्वारा उचित मात्रा में कैल्शियम न लिया जाए तो शरीर आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हड्डियों से कैल्शियम लेने लगता है। अगर कैल्शियम की यह कमी लम्बे समय तक चलती रहती है तो वृद्धों को ऑस्टियोपोरोसिस रोग हो जाता है। शरीर में कैल्शियम की आवश्यकता फॉस्फोरस एवं विटामिन डी के अंतग्रर्हण पर निर्भर करती है। उच्च वसीय आहार, आहार में फाइटेट, ऑक्सलेट आदि की उपस्थिति से कैल्शियम का अवशोषण कम होता है। उच्च प्रोटीन आहार लेने पर अधिक मात्रा में कैल्शियम मूत्र द्वारा उत्सर्जित होने लगता है। फॉस्फोरस की कम मात्रा अंतग्रर्हण करने पर यह क्रिया और भी अधिक होती है। लैक्टोज की उपस्थिति में कैल्शियम का अवशोषण अच्छा होता है, इसीलिए दूध जिसमें लैक्टोज एवं कैल्शियम दोनों होते हैं, कैल्शियम का अच्छा स्रोत माना जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर में कैल्शियम की कमी से माँसपेशियों की क्रियाशीलता में शिथिलता आ जाती है। माँसपेशियों में संकुचन एवं प्रसारण की गति एकदम धीमी हो जाती है। रक्त का थक्का देर से जमता है।

वृद्धावस्था में कैल्शियम के कम अवशोषित होने कारण शरीर में कैल्शियम की माँग करीब 20 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। वृद्धों में कैल्शियम की आवश्यकता 0.9 से 1 मिलीग्राम तक होती है।

फॉस्फोरस: फॉस्फोरस ज्यादातर खाद्य पदार्थों में उपस्थित होता है। इसलिए सामान्यतः इसकी कमी नहीं होती है। परन्तु जो वृद्ध नियमित रूप से अमाशय की अम्लीयता (acidity) दूर करने के लिए अम्लरोधी दवाओं (antacid) का प्रयोग करते हैं, उनमें अत्यधिक फॉस्फोरस निष्कासित होने के कारण इसकी कमी हो सकती है।

पोटेशियम: वृद्धावस्था में रक्तचाप को सामान्य रखने में पोटेशियमयुक्त पदार्थ लाभदायी हैं। फलों और सब्जियों, खुबानी, आलूबुखारा, आड़ू, मुनक्का, खजूर, सूखे नारियल आदि में पोटेशियम समुचित मात्रा में मौजूद होता है।

वृद्धावस्था में अच्छे स्वास्थ्य के लिए, कुपोषण को रोकने, जीर्ण रोगों को प्रारम्भ होने से रोकने या विलम्ब करने के लिए कुछ आहार एवं जीवन-शैली सम्बंधी दिशा निर्देश नीचे दिए गए हैं जिन्हें अपनाकर वृद्ध व्यक्ति अपना जीवन रोग मुक्त एवं स्वस्थ रख सकते हैं।

खाद्यान्न समूह सम्बन्धी निर्देश

- भोजन में सभी खाद्यान्न समूहों से उचित मात्रा में कुछ न कुछ होना चाहिए।
- भिन्न-भिन्न प्रकार के साबुत अनाज, मोटे अनाज (ज्वार, बाजरा, रागी, कोदो) तथा दालों को दैनिक भोजन में शामिल किया जाना चाहिए।

- यदि भोजन की अधिक मात्रा न लेनी हो, तब भी प्रत्येक समूह से कुछ भोज्य पदार्थ लेकर सकल व्यंजन बनाया जा सकता है जैसे खिचड़ी दही, सब्जी परांठा आदि।
- आहार में विभिन्न प्रकार के भोजन सम्मिलित करने से खाना बहुत रुचिकर होता है तथा उसमें पोषक तत्व भी अधिक होते हैं।
- आहार में अनाजों के मिश्रण का प्रयोग करना चाहिए। इससे किसी एक पोषक तत्व की कमी नहीं होती है।
- वृद्धावस्था में दालों का उपयोग प्रचुर मात्रा में करना चाहिए। अंकुरित दालें सुपाच्य एवं पोषक तत्वों से भरपूर होती हैं।
- यदि किसी वृद्ध व्यक्ति को दालों के प्रयोग से अपच, गैस, अम्लीयता आदि होती है तो वह दालों का प्रयोग कम कर सकता है। ऐसी स्थिति में दाल पकाने की विधि में बदलाव की आवश्यकता हो सकती है। दाल को भिगोकर प्रैशर कुकर में ही पकाना चाहिए।
- दालों के स्थान पर मांसाहारी व्यक्ति माँस, मछली, अंडे का प्रयोग कर सकते हैं। वृद्धावस्था में हमेशा कम वसा वाले माँस जैसे चिकन, मछली, अंडे का सफेद भाग का ही प्रयोग करना चाहिए।
- वसा रहित दूध, दही, दूध से बने अन्य उत्पाद भी प्रोटीन के स्रोत के रूप में प्रयोग किये जा सकते हैं।
- प्रत्येक भोजन में कुछ सब्जियों का समावेश अवश्य होना चाहिए। कुछ सब्जियों को सलाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जैसे गाजर, खीरा आदि। यदि वृद्ध व्यक्ति के दाँत कमजोर हैं एवं चबाने में मुश्किल होती है तो सलाद को कद्दूकस कर पतला किया जा सकता है। प्रतिदिन कम से कम 400 ग्राम सब्जियों का उपयोग अवश्य करना चाहिए। सब्जियां रेशे, विटामिन तथा खनिज लवणों की उत्तम स्रोत होती हैं।
- आहार में फलों को प्रतिदिन सम्मिलित करना चाहिए। फल शरीर में प्रतिरोधक क्षमता तो बढ़ाते ही हैं। यह रेशे, विटामिन, खनिज लवण, एंटीऑक्सीडेंट के भी अच्छे स्रोत होते हैं। मधुमेह रोगियों को फलों का उपयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए। उन्हें खट्टे फल, पपीता आदि का उपयोग करना चाहिए।
- आहार में वसा की मात्रा सीमित होनी चाहिए। संतृप्त वसा एवं ट्रांस फैट का समावेश कम से कम होना चाहिए।
- भोजन में वसा की मात्रा 20 ग्राम से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा शुद्ध घी, मक्खन, वनस्पति घी से परहेज करना चाहिए।
- गहरे तले हुए भोज्य पदार्थों जैसे पूरी, समोसे आदि को दैनिक आहार का हिस्सा नहीं बनाना चाहिए।

- नमक एवं चीनी का प्रयोग सीमित मात्रा में करना चाहिए।
- मधुमेह से पीड़ित वृद्धों को चीनी, गुड़, शक्कर का प्रयोग कम करना चाहिए। उसके स्थान पर सीमित मात्रा में कृत्रिम शर्करा का उपयोग किया जा सकता है।
- प्रतिदिन कम से कम 8-10 गिलास पानी पीना चाहिए।
- वृद्धों को दिन भर में थोड़ी-थोड़ी देर में कुछ-कुछ खाते रहना चाहिए। इससे अपच, गैस आदि की परेशानी नहीं होती है।
- दिन भर में तीन मुख्य आहारों के मध्य पोषक नाश्ते जैसे फल, सूप, सलाद आदि का प्रयोग करना चाहिए।

भोजन पकाने सम्बन्धी निर्देश

- वृद्धों के लिए भोजन विविध एवं स्वादिष्ट होना चाहिए।
- भोजन परोसते एवं खाते समय आस-पास का वातावरण सकारात्मक होना चाहिए।
- खाना पकाने में साफ-सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए।
- बासी खाने के प्रयोग से बचना चाहिए।
- वृद्धों के लिए भोजन भली-भांति पका हुआ होना चाहिए ताकि उन्हें चबाने में कोई परेशानी न हो।
- भोजन पकाने से पूर्व भोज्य पदार्थों का चुनाव सोच समझकर करना चाहिए जिससे भोजन की कम मात्रा से अधिक पोषक तत्व प्राप्त हो सकें।
- पूर्ण शाकाहारी भोजन में दूध एवं दूध से बने पदार्थ अवश्य रूप में शामिल होने चाहिए।
- भोजन पकाने के लिए विभिन्न विधियों जैसे उबालना, भाप में पकाना, सेंकना, घी/तेल के कम प्रयोग में पकाना आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- भोजन को पौष्टिक एवं सुपाच्य बनाने के लिए अंकुरण, खमीरीकरण जैसी विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

वृद्धावस्था की बीमारियों में आहार निर्देश

आहार हमारे जीवन का मुख्य अंग है। यह हमारे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। जीवन की प्रत्येक अवस्था में आहार का अपना कार्य तथा महत्व है। बीमारी की अवस्था में आहार की महत्ता और भी बढ़ जाती है। वृद्धावस्था की विभिन्न बीमारियों के बारे में आप पढ़ चुके हैं। आइये अब इन बीमारियों में आहार संशोधन के विषय में चर्चा करें।

मोटापा: वृद्धावस्था में कम क्रियाशीलता के कारण मोटापा हो जाता है। वजन अधिक होने से स्वास्थ्य सम्बंधी अनेक परेशानियाँ हो सकती हैं। वृद्धावस्था में मोटापा हो तो सर्वप्रथम ऊर्जा का अंतर्ग्रहण कम कर देना चाहिए। इसके लिए आहार में वसा एवं चीनी युक्त भोज्य पदार्थों की मात्रा सीमित का देनी चाहिए। सामान्य भोजन में कटौती नहीं करनी चाहिए। आहार में अधिक रेशेयुक्त फलों एवं सब्जियों को सम्मलित करना चाहिए। शरीर के वजन को नियन्त्रण में रखने के लिए सक्रिय होना आवश्यक है। थोड़ा शारीरिक व्यायाम करना चाहिए। प्रतिदिन 20-30 मिनट टहलना चाहिए। बागवानी भी एक अच्छा व्यायाम है।

उच्च रक्त चाप: वृद्धावस्था में उच्च रक्तचाप कई बीमारियों के कारण हो सकता है या यह स्वयं कई बीमारियों का कारण बन जाता है। इसलिए उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित करना आवश्यक है। इसके लिए दवा तथा आराम के साथ-साथ आहार एवं व्यवहार में संशोधन भी आवश्यक है। आहार एवं व्यवहार में संशोधन से लम्बे समय तक स्वस्थ जीवन जिया जा सकता है।

उच्च रक्त चाप के लिए निम्नलिखित संशोधन करने चाहिए:

- अपनी उम्र, वजन एवं ऊँचाई के अनुसार ही ऊर्जा अंतर्ग्रहण करें।
- वृद्धावस्था में भी खुद को पर्याप्त रूप से क्रियाशील रखना चाहिए।
- आहार में संतृप्त वसा का प्रयोग कम से कम करना चाहिए।
- आहार में फल तथा सब्जियों की मात्रा को बढ़ाना चाहिए। इनमें उपस्थित घुलनशील रेशे रक्त में वसा के स्तर को कम करने में सहायता प्रदान करते हैं।
- नमक का प्रयोग कम करना चाहिए।
- सोडियम युक्त भोज्य पदार्थ जैसे केक, पेस्ट्री, बाजार के अचार, पापड़, सॉस आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा भोजन लेना चाहिए। इससे गैस विकार नहीं होता तथा हृदय पर दबाव नहीं पड़ता है।
- यदि रक्तचाप अधिक हो तो चाय, कॉफी बन्द कर देनी चाहिए। हालत में सुधार के साथ हल्की चाय, कॉफी दी जा सकती है।
- व्यवहार संशोधन के अन्तर्गत धूम्रपान छोड़ना, वजन घटाना, शारीरिक गतिविधियाँ बढ़ाना, शराब की मात्रा को कम या बन्द करना सम्मलित हैं।

हृदय रोग: हृदय रोग में हृदय, गुर्दे तथा मस्तिष्क को रक्त पहुँचाने वाली धमनियों में वसा जमने के कारण उनमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण शरीर के अंगों को पर्याप्त मात्रा में रक्त नहीं पहुँच पाता है। हृदय रोग में उच्च रक्त चाप की भाँति ही सभी निर्देशों का पालन करना चाहिए।

- सामान्य वजन बनाये रखने के लिए उचित ऊर्जा युक्त भोजन का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- रक्त में कोलेस्ट्रॉल के स्तर को कम करने के लिए आहार में वसा की मात्रा को सीमित रखना चाहिए।
- आहार में मुख्यतः वनस्पति तेलों का उपयोग करना चाहिए। सरसों का तेल, मूँगफली का तेल, सूरजमुखी का तेल, सोयाबीन का तेल आदि का सेवन करना उत्तम रहता है।
- आहार में कोलेस्ट्रॉल युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन कम-से-कम किया जाना चाहिए। जैसे घी, अण्डा, माँस आदि।
- अधिक चीनी युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।
- भोजन में नमक की मात्रा कम लेनी चाहिए।
- धूम्रपान एवं शराब के सेवन से परहेज करना चाहिए।

मधुमेह: मधुमेह की स्थिति में दीर्घकाल तक आहार की एक निश्चित एवं नियंत्रित मात्रा लेना आवश्यक है, तभी इस रोग पर अंकुश लगाया जा सकता है। वृद्धावस्था में मधुमेह की अवस्था में आहार नियोजन करते समय निम्नलिखित बातें ध्यान रखनी चाहिए:

- साबुत अनाज एवं साबुत दालों का प्रयोग करना चाहिए।
- मिठाई, चीनी, गुड़, शक्कर आदि का प्रयोग वर्जित होना चाहिए। कभी-कभी अति अल्प मात्रा में इन पदार्थों का उपयोग किया जा सकता है।
- अधिक शर्करा एवं स्टार्च युक्त फलों एवं सब्जियों जैसे आलू, शकरकंद, आम, केला आदि का प्रयोग अति सीमित होना चाहिए।
- दूध, चाय, कॉफी या अन्य पेय पदार्थों में चीनी का प्रयोग नहीं करना चाहिए। चीनी के बजाय कृत्रिम शर्करा का प्रयोग किया जा सकता है।
- आहार लेने का समय निश्चित होना चाहिए। आहार 4 से 5 घण्टे के अन्तराल पर लेना चाहिए तथा एक बार में बहुत अधिक नहीं खाना चाहिए।
- आहार में रेशेयुक्त पदार्थों की मात्रा बढ़ानी चाहिए।
- आहार में सोडियम की मात्रा कम होनी चाहिए।
- दिन भर में कोई भी भोजन छोड़ना नहीं चाहिए। उपवास एवं भोज दोनों ही नुकसान देह हो सकते हैं।

- उचित व्यायाम जैसे टहलना, योग करना आदि से शरीर को पर्याप्त क्रियाशील रखना चाहिए।
- शराब एवं धूम्रपान से परहेज करना चाहिए।

ऑस्टियोपोरोसिस: ऑस्टियोपोरोसिस में हड्डियाँ कमजोर होने लगती हैं। इसलिए इसकी रोकथाम का मुख्य उद्देश्य हड्डियों को मजबूत बनाना होता है। इसके लिए निम्नलिखित आहार संशोधन अपनाने चाहिए:

- आहार में कैल्शियम युक्त भोज्य पदार्थ जैसे वसा रहित दूध, वसा रहित दूध उत्पाद (दही, पनीर आदि), हरी पत्तेदार सब्जियाँ, रागी, रामदाना आदि का प्रयोग प्रतिदिन करना चाहिए।
- जो वृद्ध दूध नहीं पीते हैं, उन्हें दूध से बने उत्पादों का प्रयोग अवश्य रूप से करना चाहिए।
- भोजन में सोयाबीन, अलसी के बीज, तिल आदि का प्रयोग लाभदायक होता है क्योंकि इनमें फाइटोएस्ट्रोजन की प्रचुरता होती है, जो महिला हारमोन की तरह कार्य करते हैं। इससे रजोनिवृत महिलाओं में अस्थियों के स्वास्थ्य को सुधारने में मदद मिलती है।
- नियमित व्यायाम जैसे टहलना, घूमना, योगा आदि हड्डियों एवं माँसपेशियों के स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है। इसलिए प्रतिदिन कम से कम 30 मिनट हल्का व्यायाम आवश्यक है।
- विटामिन डी की उचित मात्रा के अंतर्ग्रहण हेतु प्रतिदिन सूर्य का प्रकाश लेना चाहिए। प्रतिदिन सूर्य के प्रकाश के सेवन से शरीर के अन्दर विटामिन डी के निर्माण में मदद मिलती है जिससे हड्डियों का द्रव्यमान बढ़ता है।
- धूम्रपान, तम्बाकू, शराब सभी से परहेज करना चाहिए क्योंकि इनसे हड्डियां कमजोर होती हैं।

आर्थराइटिस: आर्थराइटिस में हड्डियों के जोड़ों में दर्द एवं जकड़न परेशानी होती है। इसके नियन्त्रण एवं रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिए:

- वजन नियंत्रित रखना चाहिए। अन्य सभी पोषक तत्वों की उचित मात्रा रखते हुए आहार से ऊर्जा की मात्रा कम करके वजन कम किया जा सकता है।
- व्यायाम एवं सक्रिय जीवन शैली से भी आर्थराइटिस को नियन्त्रित करने में मदद करती है।
- विटामिन डी की उचित मात्रा, सूर्य की रोशनी से या दवा के रूप में लेनी चाहिए।
- आहार में दूध एवं दूध से बने उत्पाद (वसा रहित) अवश्य रूप से शामिल करने चाहिए।
- भोज्य पदार्थ जैसे लहसुन, सिरका, शहद, सेब आदि आर्थराइटिस में लाभप्रद माने जाते हैं।

गाउट: इस रोग में रक्त में यूरिक एसिड का स्तर बढ़ने से शरीर के छोटे जोड़ों में दर्द रहने लगता है। इस रोग के नियन्त्रण एवं बचाव के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाने चाहिएः

- अधिक मात्रा में पानी पीना चाहिए जिससे रक्त में उपस्थित अतिरिक्त यूरिक एसिड मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकल जाए।
- खान-पान में क्षारीय भोज्य पदार्थों जैसे फल, हरी सब्जियाँ, मूली का जूस, दूध का सेवन अधिक करना चाहिए।
- आहार में ऊर्जा, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन एवं खनिज लवणों आदि की मात्रा सन्तुलित एवं दैनिक मान के अनुसार होनी चाहिए।
- अत्यधिक उपवास नहीं रखने चाहिए।
- शाकाहारी भोजन का प्रयोग करना चाहिए।
- चाय, कॉफी सन्तुलित मात्रा में लेनी चाहिए।
- कार्बोनेटेड पेय पदार्थों से परहेज करना चाहिए।
- सुपाच्य प्रोटीन का सेवन करना चाहिए।

मोतियाबिंद: जो व्यक्ति लगातार स्वस्थ आहार लेते हैं, उन लोगों में मोतियाबिंद का खतरा कम होता है। फलों और सब्जियों में एंटीऑक्सीडेंट, विटामिन एवं फाइटोकैमिकल्स होते हैं जो मोतियाबिंद का खतरा कम करते हैं। इसमें विटामिन ए, विटामिन-सी, विटामिन ई शामिल हैं। ओमेगा-3 वसीय अम्ल से युक्त मछली का सेवन भी मोतियाबिंद या उसकी प्रगति के संभावित जोखिम को कम करता है। शोधों से ज्ञात हुआ है जो व्यक्ति व्यस्कावस्था में लम्बे समय तक उच्च कार्बोहाइड्रेट आहार का सेवन करते हैं उन्हें वृद्धावस्था में जल्द ही मोतियाबिंद हो जाता है। मोतियाबिंद के बचाव के लिए निम्नलिखित आहारीय संशोधन करने चाहिए:

- आहार में अधिकाधिक फल, सब्जियों का प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिए।
- प्रतिदिन कुल ऊर्जा का अंर्तग्रहण मानक आवश्यकता के अनुसार ही होना चाहिए।
- हरी सब्जियाँ एंटीऑक्सीडेंट का स्रोत होने के साथ साथ फोलिक अम्ल एवं कैल्शियम की भी अच्छी स्रोत होती हैं। यह दोनों पोषक तत्व भी मोतियांबिंद का जोखिम कम रखने में मदद करते हैं।
- आहार में तला हुआ भोजन, प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ, मीठे व्यंजन एवं कार्बोनेटड पेय पदार्थ सीमित मात्रा में या नहीं सम्मलित नहीं होने चाहिए।

श्वसन सम्बंधी रोग: श्वसन सम्बंधी रोगों से बचाव के लिए स्वस्थ आहार के साथ-साथ खान पान की अच्छी आदतें, साफ-सफाई आदि को भी अपनाना चाहिए। रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने के लिए सुपाच्य प्रोटीन एवं विटामिन-सी से युक्त भोज्य पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

कब्ज: वृद्धावस्था में शारीरिक गतिविधि में कमी, तरल पदार्थों का अपर्याप्त सेवन एवं कम रेशे युक्त भोजन से कब्ज की शिकायत हो सकती है। इसे दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं:

- आहार में रेशेयुक्त भोज्य पदार्थों का उचित मात्रा में उपयोग करने से कब्ज की समस्या दूर हो जाती है।
- प्रतिदिन 10-12 गिलास पानी अवश्य रूप से पीना चाहिए।
- आहार में विटामिन बी एवं सी की मात्रा बढ़ानी चाहिए। इन विटामिनों की कमी से भी कब्ज की समस्या हो सकती है।
- सक्रिय रहने के लिए व्यायाम, टहलना, घूमना, बागवानी आदि को दिनचर्या का हिस्सा बनाना चाहिए।

अतिसार: वृद्धावस्था में पाचन संस्थान कमजोर होने के कारण अतिसार हो जाता है। वृद्धावस्था में तीव्र अतिसार होने से निर्जलीकरण हो जाता है। अतिसार होने पर निम्न आहारीय संशोधन करने चाहिए:

- तीव्र अतिसार में ओरल रीहाइड्रेशन घोल देना चाहिए।
- जीवन रक्षक घोल को पानी में मिलाकर जल्दी-जल्दी पिलाना चाहिए।
- अतिसार की स्थिति में दूध नहीं पीना चाहिए।
- अतिसार होने पर सुपाच्य आहार लेना चाहिए।
- अतिसार में कम रेशेयुक्त, कम वसायुक्त आहार का ही सेवन करना चाहिए।
- साबुत अनाज, छिलके वाली दालें, रेशेदार सब्जियाँ, तले-भुने पदार्थ आहार में सम्मलित नहीं करने चाहिए।

कुपोषण: वृद्धावस्था में कुपोषण कम भोजन ग्रहण करने, बीमार रहने, अवशोषण अवरोध आदि के कारण हो सकता है। वृद्धों में कुपोषण दूर करने के लिए निम्नलिखित उपाय करने चाहिए:

- भोजन की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिए।
- भोजन को शान्त वातावरण में परोसें।
- वृद्धों की पसन्द-नापसन्द का ध्यान रखें।
- भोजन सुपाच्य होना चाहिए।
- भोजन के बीच उच्च ऊर्जा घनत्व वाले पेय पदार्थ दिये जाने चाहिए।

- मौसम के अनुसार फल देने चाहिए।
- यदि वृद्धों को चबाने में परेशानी होती है तो आहार का आकार बदलकर तरल या अर्द्ध ठोस आहार देना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. वृद्धावस्था में आधारभूत परिवर्तनों का कारण है:
      (क) चयापचय दर में वृद्धि
      (ख) धीरे-धीरे कार्य करने वाली कोशिकाओं का नष्ट होना जिसे कोशिका चयापचय में कमी होना
      (ग) पोषक तत्वों की अवशोषकता दर बढ़ना
      (घ) उपरोक्त सभी
   b. वृद्धावस्था में ऊर्जा की आवश्यकता कम हो जाती हैं क्योंकि;
      (क) वृद्धों की भूख कम होती है।
      (ख) शारीरिक क्रियाओं की गति कम हो जाती है।
      (ग) शरीर की चयापचय दर धीरे-धीरे कम होने लगती है।
      (घ) शरीर में टूट-फूट की मरम्मत की आवश्यकता नहीं रहती है।
   c. वृद्धों द्वारा उम्र के साथ .... कारण से नमक एवं चीनी प्रयोग बढ़ जाता है।
      (क) पसन्द के कारण
      (ख) आदतों के कारण
      (ग) क्योंकि ये दोनों चीजे महंगी नहीं होती हैं।
      (घ) स्वाद एवं सूंघने की क्षमता में कमी के कारण।
2. लघु उत्तरीय प्रश्न
   a. वृद्धावस्था में कैलोरी सेवन में कमी के दो मुख्य कारण क्या हैं?
      ....
      ....
   b. वृद्धावस्था में उच्च रक्तचाप से बचाव के लिए क्या करना चाहिए?
      ....
      ....

c. वृद्धों का आहार किस प्रकार का होना चाहिए?

....

....

3. सही अथवा गलत बताइए।

a. वृद्धावस्था में ऊर्जा सेवन उचित है या नहीं यह जानने के लिए सबसे अच्छा उपाय सामान्य वजन बनाये रखना है।

b. ज्यादातर वृद्धों को विटामिन एवं खनिज लवणों की दैनिक आवश्यकता की पूर्ति हेतु पूरक गोलियों की आवश्यकता होती है।

c. बढ़ती उम्र के साथ स्वाद लेने एवं सूंघने की क्षमता कम हो जाती है।

d. वृद्धावस्था में सब्जियों एवं फलों का भरपूर मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

12.5 सारांश

प्रौढ़ावस्था किशोरावस्था के पश्चात शुरु होने वाली अवस्था है। यह अवस्था शारीरिक वृद्धि की दृष्टि से जीवन की स्थाई अवस्था है जिसमें शरीर की पूर्ण वृद्धि हो गई होती है। इसलिए इस अवस्था में पोषक तत्वों की आवश्यकता शारीरिक वृद्धि के लिए न होकर शरीर की गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए होती है। यह अवस्था परिश्रम और व्यस्तता की अवस्था होती है। इस अवस्था को दो चरणों में विभाजित किया जा सकता हैप्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था तथा वृद्ध प्रौढ़ावस्था। इस अवस्था : में आहार नियोजन आयु, लिंग तथा सक्रियता के आधार पर किया जाता है। कम तथा मध्यम क्रियाशील वयस्क को आहार में वसा की मात्रा सीमित रखनी चाहिए। आहार में फलों तथा सब्जियों का पर्याप्त समावेश होना चाहिए तथा पानी का समुचित मात्रा में सेवन करना चाहिए।

साठ वर्ष के बाद की अवस्था को वृद्धावस्था माना जाता है। यह एक सतत् प्रक्रिया है। उम्र बढ़ने के साथ शरीर में कुछ परिवर्तन होने लगते हैं, जो शारीरिक, सांवेगिक, मानसिक या हारमोन सम्बन्धी हो सकते हैं। वृद्धावस्था में विभिन्न विकार उत्पन्न होने लगते हैं। शरीर की सभी इन्द्रियां धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लगती हैं। परिणामस्वरूप देखने, सुनने, स्वाद एवं महसूस करने आदि सभी क्रियाओं में कमी आ जाती है। पाचन प्रक्रिया भी पहले की अपेक्षा क्षीण हो जाती है। हृदय, गुर्दे, यकृत सभी की कार्य क्षमता घट जाती है। जोड़ों के दर्द के कारण चलना फिरना कठिन हो जाता है। अस्थियाँ कमजोर हो जाती हैं जिस कारण चोट लगने पर या गिरने पर हड्डियों में आसानी से फ्रेक्चर हो जाता है। वृद्धावस्था में विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों के कारण पोषण आवश्यकताएं भी प्रभावित होती हैं। आधारीय चयापचय दर तथा शारीरिक क्रियाशीलता कम होने के कारण ऊर्जा की आवश्यकता में

25 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। वृद्धावस्था में भोज्य पदार्थ खरीदने, खाद्य पदार्थ बनाने एवं बीमारियों से लड़ने के लिए उचित भोजन व्यवस्था की आवश्यकता होती है।

12.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **कोलेजन:** मुख्य संरचनात्मक प्रोटीन जो संयोजी ऊतक में पाया जाता है।
- **आधारीय चयापचय दर:** शरीर के जीवित रहने के लिए अनिवार्य न्यूनतम शक्ति या ऊर्जा प्रदान करने के लिए होने वाले चयापचय को आधारीय चयापचय (Basal Metabolism) कहा जाता है।
- **क्रमाकुंचन गति:** पेशियों में क्रम से संकुचन (contraction) एवं विश्रांति (relaxation) होती रहती है जो तरंग की तरह आगे बढती रहती है।
- **Cartilage:** कार्टिलेज एक लचीला और चिकना लोचदार ऊतक है जो जोड़ों पर लंबी हड्डियों के सिरों को संरक्षित करता है।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. प्रारम्भिक प्रौढ़ावस्था

b. अधिक क्रियाशील

c. आहारीय रेशा

d. ऑस्टियोपोरोसिस और गठिया

अभ्यास प्रश्न 2

1. वृद्धावस्था में मोटापा कई जीर्ण रोगों जैसे हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, उच्च कोलेस्ट्रॉल स्तर एवं मधुमेह के लिए एक बड़ा जोखिम कारक है। वृद्धावस्था में मोटापा जीवन प्रत्याशा को कम कर देता है एवं विभिन्न प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों के लिए एक बड़ा खतरा है।
2. वृद्धावस्था में आम मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं, विवशता की भावना, हीन भावना, अवसाद निरर्थकता, अकेलेपन और कम क्षमता की भावना आदि। आयु बढ़ने के साथ अवसाद एक सामान्य समस्या है। व्यक्ति निरन्तर उदास एवं चिन्तित रहने लगता है। इन सभी भावनाओं से उनके भोजन, स्वास्थ्य एवं आपसी सम्बंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के कारण वृद्धावस्था में वृद्धों के व्यक्तित्व में बदलाव देखा जा सकता है तथा परिवार के साथ सामंजस्य में उन्हें दिक्कत होने लगती है।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बहुविकल्पीय प्रश्न
   a. (ख) धीरे-धीरे कार्य करने वाली कोशिकाओं का नष्ट होना जिसे कोशिका चयापचय में कमी होना
   b. (ग) शरीर की चयापचय दर धीरे-धीरे कम होने लगती है।
   c. (घ) स्वाद एवं सूंघने की क्षमता में कमी के कारण।
3. लघु उत्तरीय प्रश्न
   a. चयापचय में कमी, शारीरिक क्रियाशीलता में कमी
   b. हल्का व्यायाम, फलों-सब्जियों का प्रयोग, वसा एवं नमक का सीमित सेवन
   c. सुपाच्य, मृदु, स्वाद से भरपूर
4. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सही
   b. गलत
   c. सही
   d. सही

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Sehgal, S. and Raghuvanshi R.S. (Eds). 2007. Text book of community nutrition. ICAR, New Delhi. 524p.
- Puri, S. Nutrition in old age. Booklet for helpage India.
- Swason, P. Adequacy in old age. Part-I: Role of Nutrition.
- अरूणा पल्टा. 1997. आहार एवं पोषण विज्ञान. साहित्य प्रकाशन आगरा 336 पेज.
- बृन्दा सिंह 2008 आहार एवं पोषण विज्ञान पंचशील प्रकाशन जयपुर 772 पेज

12.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रौढ़ावस्था में पोषक तत्वों की माँगों का उल्लेख कीजिए।
2. वृद्धावस्था में कौन-कौन से परिवर्तन भोजन के पाचन को प्रभावित करते हैं?
3. वृद्धावस्था में कौन-कौन से रोग हो सकते हैं? आहार द्वारा उनका उपचार कैसे किया जा सकता है?
4. वृद्धावस्था की पोषण आवश्यकताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।